प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर

णिग्गंथं पावयणं सच्चं
जो उवमिज्जइ सययं तं संघ गुणायरं वंदे
श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)

©: (01462) 251216, 257699, 250328

जीवाजीवाभिगम सूत्र

भाग १

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का १०६ वाँ रत्न

जीवाजीवाभिगम सूत्र

भाग-१

(प्रतिपत्ति १-३)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया
पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

[redacted]

✆ : (01462) 251216, 257699 Fax No. 250328

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ सिटी पुलिस, **जोधपुर** ✆ 2626145
२. **शाखा** - श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ,नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर**
३. **महाराष्ट्र शाखा** - माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेडकर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**
४. **कर्नाटक शाखा** - श्री सुधर्म जैन पौषधशाला भवन, ३८ अप्पुराव रोड़ छठा मेन रोड़ चामराजपेट, **बैंगलोर**- १८ ✆ : 25928439
५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो. बॉ. नं. २२१७, **बम्बई**-२
६. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊसिंग कॉ० सोसायटी ब्लॉक नं. १० स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)**
७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली**-६
८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद**
९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा (महा.)**
१०. प्रकाश पुस्तक मंदिर, रायजी मोंढा की गली, पुरानी धानमंडी, **भीलवाड़ा** ✆ 327788
११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**
१२. श्री विद्या प्रकाशन मंदिर, विद्या लोक ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)
१३. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ✆ : 25357775
१४. श्री संतोषकुमारजी जैन वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शापिंग सेन्टर, **कोटा** ✆ : 2360950

मूल्य : ३५-००

तृतीय आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३४
विक्रम संवत् २०६५
मई २००८

मुद्रक : स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ✆ : 2423295

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जैन दर्शन एवं इसकी संस्कृति का मूल आधार सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग प्रभु द्वारा कथित वाणी है। सर्वज्ञ अर्थात् पूर्णरूपेण आत्मद्रष्टा। सम्पूर्ण रूप से आत्म दर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं, जो समग्र जानते हैं, वे ही तत्त्वज्ञान का यथार्थ निरूपण कर सकते हैं। अन्य दर्शनों की अपेक्षा जैन दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यही तो है कि इस दर्शन के प्रणेता सामान्य व्यक्ति न होकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु हैं, जो अट्ठारह दोष रहित एवं बारह गुण सहित होते हैं। यानी सम्पूर्णता प्राप्त करने के पश्चात् ही वाणी की वागरणा करते हैं, अतएव उनके द्वारा फरमाई गई वाणी न तो पूर्वापर विरोधी होती है, न हीं युक्ति बाधक। उनके द्वारा कथित वाणी जिसे सिद्धान्त कहने में आता है, वे सिद्धान्त अटल, ध्रुव, नित्य, सत्य, शाश्वत एवं त्रिकाल अबाधित एवं जगत के समस्त जीवों के लिए हितकर, सुखकर, उपकारक, रक्षक रूप होते हैं, जैन दर्शन का हार्द निम्न आगम वाक्य में निहित है -

सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं। पेच्चाभाविय आगमेसिभद्द सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अनुत्तरं सव्वदुक्खपावाण विउसमणं॥

भावार्थ - समस्त जगत के जीवों की रक्षा रूप दया के लिए भगवान् ने यह प्रवचन फरमाय है। भगवान् का यह प्रवचन अपनी आत्मा के लिए तथा समस्त जीवों के लिए हितकारी है जन्मान्तर के शुभ फल का दाता है, भविष्य में कल्याण का हेतु है। इतना ही नहीं वरन् यह प्रवचन शुद्ध न्याय युक्त मोक्ष के प्रति सरल प्रधान और समस्त दुःखों तथा पापों को शान्त करने वाला है।

सर्वज्ञों द्वारा कथित तत्त्व ज्ञान, आत्म ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध आगम, शास्त्र अथवा सूत्र के रूप में प्रसिद्ध है। जिसे तीर्थंकर भगवन्त अर्थ रूप में फरमाते हैं। उस अर्थ रूप में फरमाई गई वाणी को महान् प्रज्ञावान गणधर भगवन्त सूत्र रूप में गुन्थित करके व्यवस्थित आगम का रूप देते हैं। इसीलिए कहा गया है **"अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।"** आगम साहित्य की प्रमाणिकता केवल गणधर कृत होने से ही नहीं, किन्तु अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर प्रभु की वीतरागता और सर्वज्ञता के कारण है। गणधर केवल द्वादशांगी की रचन करते हैं। अंग बाह्य आगमों की रचना स्थविर भगवन्त करते हैं। स्थविर भगवन्त जो सूत्र की रचन करते हैं, वे दश पूर्वी अथवा उससे अधिक पूर्व के ज्ञाता होते हैं। इसलिए वे सूत्र और अर्थ की दृष्टि से अंग साहित्य के पारंगत होते हैं। अतएव वे जो भी रचना करते हैं, उसमें किंचित् मात्र भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विरोध नहीं होता है। जो बात तीर्थंकर भगवंत फरमाते हैं, उसको श्रुतकेवली (स्थविर भगवन्त) भी उसी रूप में कह सकते हैं। दोनों में अन्तर इतना ही है कि केवली सम्पूर्ण तत्त्व को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं, तो श्रुतकेवली, श्रुतज्ञान के द्वारा परोक्ष रूप में जानते हैं। उनके वचन इसलिए भी प्रामाणिक होते हैं, क्योंकि वे नियमतः सम्यग्दृष्टि होते हैं। वे हमेशा निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे रखकर ही चलते है। उनका उद्घोष होता है **"णिग्गंथं पावयणं अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे"** निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ रूप, परमार्थ रूप है, शेष सभी अनर्थ रूप हैं। अतएव उनके द्वारा रचित आगम ग्रन्थ भी उतने ही प्रामाणिक माने जा रहे हैं जितने गणधर कृत अंग सूत्र।

जैनागमों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है। समवायांग सूत्र में इनका वर्गीकरण पूर्व और अंग के रूप में मिलता है, दूसरा वर्गीकरण अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य के रूप में किया गया है, तीसरा और सबसे अर्वाचीन वर्गीकरण अंग, उपांग, मूल और छेद रूप में है, जो वर्तमान में प्रचलित है।

११ अंग :- आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अन्तकृतदशा, अनुत्तरौपपातिक, प्रश्नव्याकरण एवं विपाक सूत्र।

१२ उपांग :- औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, निरियावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा सूत्र।

४ छेद :- दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथ सूत्र।

४ मूल :- उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोग द्वार सूत्र।

१ आवश्यक :-

कुल ३२

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम जो उपांग का तीसरा सूत्र है, इसके रचयिता स्थविर भगवन्त हैं, इसके लिए सूत्र के प्रारम्भ में स्थविर भगवन्तों का उल्लेख करते हुए कहा गया है -

"इह खलु जिणमयं जिणाणुमयं जिणाणुलोमं जिणप्पणीतं जिणपरूवियं जिणक्खायं जिणाणुचिण्णं जिणपण्णत्तं जिणदेसियं जिणपसत्थं अणुव्वीइय तं सद्दहमाणा तं पत्तियमाणा तं रोयमाणा थेरा भगवंतो जीवाजीवाभिगम णामज्झयणं पण्णवइंसु।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवार्थ - जैन प्रवचन में तीर्थंकर परमात्मा के सिद्धान्त रूप द्वादशांग गणिपिटक का, जो अन्य सब तीर्थंकरों द्वारा अनुमत है, जिनानुकूल है, जिन प्रणीत है, जिन प्ररूपित है, जिनाख्यात है, जिनानुचीर्ण है, जिन प्रज्ञप्त है, जिन देशित है, जिन प्रशस्त है, पर्यालोचन कर उस पर श्रद्धा करते हुए, उस पर प्रतीति करते हुए, उस पर रुचि रखते हुए स्थविर भगवन्तों ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन प्ररूपित किया है।

प्रस्तुत सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है, इससे स्पष्ट ध्वनित है कि इसमें जीव और अजीव का वर्णन है। परन्तु अजीव का तो बहुत ही संक्षेप में वर्णन है, विस्तृत रूप से तो इसमें जीव का ही वर्णन है। इसमें नौ प्रतिपत्तियाँ (प्रकरण) हैं। प्रथम प्रतिपत्ति में जीवाभिगम और अजीवाभिगम का निरूपण किया गया है। जबकि शेष आठ प्रतिपत्तियों में जीवों का ही निरूपण किया गया है।

इस समस्त लोक में जो भी चराचर या दृश्य अदृश्य पदार्थ या सद्रूप वस्तु विशेष है वह सब जीव या अजीव इस दो पदों में समाविष्ट है। मूलभूत तत्त्व जीव और अजीव हैं, शेष पुण्य पाप आस्रव संवर बंध और मोक्ष-ये सब इन दो तत्त्वों के सम्मिलन और वियोग परिणति मात्र है। जैन दर्शन में आत्मतत्त्व का बहुत ही सूक्ष्मता के साथ विस्तृत विवेचन किया है। जैन चिंतन की धारा का उद्गम आत्मा से होता है और अन्त मोक्ष प्राप्ति से। आचारांग सूत्र का आरम्भ ही आत्म जिज्ञासा से हुआ है, उनके आदि वाक्य में ही कहा गया है-इस संसार में कई जीवों को यह ज्ञान और भान नहीं होता कि उनकी आत्मा किस दिशा से आयी है और कहाँ जावेगी? वे यह भी नहीं जानते कि उनकी आत्मा जन्मान्तर में संचरण करने वाली है या नहीं? मैं पूर्व जन्म में कौन था और यहाँ से मरकर दूसरे जन्म में क्या होऊँगा-? यह भी वे नहीं जानते। किन्तु विशेष ज्ञान (जातिस्मरण ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यव ज्ञान, केवल ज्ञान) से जब जीव यह जान लेता है कि इन विभिन्न दिशा-विदिशाओं में जन्म मरण करने वाली मेरी आत्मा ही है। जो पुरुष आत्मा के इस स्वरूप को जानता है, ज्ञानियों ने उसे आत्मवादी कहा है। जो आत्मवादी है, वही लोकवादी अर्थात् लोक का यथार्थ स्वरूप जानने वाला है। जो आत्मवादी और लोकवादी है, वही कर्मवादी अर्थात् कर्मों का यथार्थ स्वरूप जानने वाला होता है और वही क्रियावादी है। यानी कर्मबंध के कारण भूत क्रिया को जानने वाला होता है।

जीवात्मा जब तक विभावदशा में रहता है, तब तक अजीव पुद्गलात्मक कर्मवर्गणाओं से आबद्ध होता है। फलस्वरूप उसे शरीर के बंधन से बंधना पड़ता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना पड़ता है। इस प्रकार शरीर धारण करने और छोड़ने की परम्परा चलती रहती है। यह परम्परा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही जन्म मरण है इस जन्म-मरण के चक्र में परिभ्रमण आत्मा का विभावदशापन करता है। यही संसार है। इस जन्म-मरण की परम्परा को तोड़ने के लिए ही भव्यात्माओं के सारे धार्मिक और आध्यात्मिक प्रयास होते हैं।

संसारी जीवों के विभिन्न भेद प्रभेद, विभिन्न अवस्थाएं, गति जाति, इन्द्रिय, काय, योग, उपयोग आदि की अपेक्षा से प्रस्तुत सूत्र में नौ प्रतिपत्तियों के माध्यम से स्वरूप बतलाया गया है।

प्रथम प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के त्रस और स्थावर दो भेद कर उनका कथन किया गया है। स्थावर के तीन भेद किए हैं, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक। त्रस के भी तीन भेद बतलाएं हैं - तेजस्कायिक, वायुकायिक और उदारत्रस। यद्यपि स्थावर के रूप में पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति पांच माने गए हैं। आचारांगादि सूत्रों में पांच ही स्थावर का कथन है। किन्तु यहाँ गति को लक्ष्य में रख कर तेजस और वायु को भी त्रस कहा गया है। क्योंकि अग्नि का ऊर्ध्व गमन और वायु का तिर्यक् गमन प्रसिद्ध है। दोनों कथनों का सामंजस्य स्थापित करते हुए त्रस जीव दो प्रकार के कहे गये हैं, गति त्रस और लब्धि त्रस। तेजस और वायु, केवल गति त्रस है, लब्धि त्रस नहीं जिसके त्रस नामकर्म रूपी लब्धि का उदय है, वे ही लब्धि त्रस है। यानी बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक।

इन पांच स्थावर काय की संचेतना जो तीर्थंकर भगवन्तों ने अपने विमल एवं निर्मल केवल ज्ञान में देखी, उसी के अनुसार उनका निरूपण किया। जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी भी दर्शन में स्थावर काय में जीवों का निरूपण नहीं मिलता है। एक मात्र जैन दर्शन ही ऐसा दर्शन है जो स्थावर काय का निरूपण कर उन्हें सजीव बतलाता है तथा अपने सर्व विरति अहिंसक साधक (श्रमण) को इन स्थावर जीवों की भी वैसी ही रक्षा करने की आज्ञा प्रदान की है जैसी की अन्य चलते-फिरते जीवों की। प्रश्न हो सकता है कि पांच स्थावर काय जीवों के कान, नेत्र, नाक, जीभ, वाणी और मन तो होता नहीं तो फिर वे दुःख का अनुभव कैसे करते हैं? इसका समाधान आगमकार उदाहरण देकर फरमाते हैं कि जैसे कोई व्यक्ति जो जन्म से अंधा, लूला, लगंड़ा, बहरा, अवयवहीन है, कोई व्यक्ति यदि शस्त्र से उसके अंगों का छेदन भेदन करे तो उसे वेदना होती है। किन्तु वह अवयवहीन होने से वेदना को व्यक्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक आदि जीवों के कान, नेत्र, जीभ, वाणी और मन न होते हुए भी उन को अव्यक्त वेदना होती है।

स्थावर और त्रस का स्वरूप बताकर आगे इस प्रतिपत्ति में चौबीस ही दण्डकों के जीवों के शरीर, अवगाहना, संहनन, संस्थान, कषाय, संज्ञा, लेश्या, इन्द्रियां, समुद्घात, संज्ञी, असंज्ञी, वेद, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, योग, उपयोग, आहार, उत्पात, स्थिति, मरण, च्यवन गति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगति आदि २३ द्वारों का निरूपण कर उनका स्वरूप बतलाया गया है। यानी लघुदण्डक के लगभग समस्त द्वारों का निरूपण इसी प्रतिपत्ति में किया गया है।

द्वितीय प्रतिपत्ति - द्वितीय प्रतिपत्ति में समस्त संसारी जीवों को वेद की अपेक्षा से तीन विभागों में विभक्त किया-स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद। इसके पश्चात् तिर्यंच योनिक स्त्रियों मनुष्य योनिक, देवयोनिक स्त्रियों के भेद, उनकी स्थिति, संचिट्ठणकाल, अन्तरद्वार, अल्पबहुत्व, स्थिति, बंध आदि का विस्तार से निरूपण किया गया है। स्त्रीवेद के कथन के अनन्तर पुरुष वेद का निरूपण किया है। पुरुष के भेद प्रभेदों का वर्णन करके उनकी स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर पुरुष वेद की बंध स्थिति, अबाधाकाल और कर्मनिषेक बताकर पुरुषवेद को दावाग्नि ज्वाला के समान निरूपित किया है।

तत्पश्चात् नपुंसक वेद का निरूपण हुआ है जिसके अन्तर्गत नैरयिक नपुंसक, तिर्यक् योनिक, नपुंसक और मनुष्य योनिक नपुंसक का वर्णन है। देवयोनिक नपुंसक नहीं होते हैं। अतएव उनका वर्णन नहीं है। नपुंसक योनिक के भेद-प्रभेद का निरूपण के पश्चात् स्त्री वेद और पुरुष वेद की भांति नपुंसक योनिक की भी स्थिति संचिट्ठणा, अन्तर, अल्पबहुत्व, बंध स्थिति अबाधाकाल आदि का प्रतिपादन किया है। नपुंसक वेद को महानगरदाह के समान बताया है। तीनों वेदों के बाद आठ प्रकार के वेदों के अल्प बहुत्व का निरूपण इस प्रतिपत्ति में किया गया है।

तृतीय प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को चार भागों में, नैरयिक, तिर्यक् योनिक, मनुष्य और देव में विभाजित कर उनका विस्तार से निरूपण किया गया है। सर्व प्रथम सातों नरक पृथ्वियों की मोटाई, उनके पाथड़े, आंतरे नरकावासों की संख्या, रत्न प्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन के ऊपर के क्षेत्र में भवनवासी देवों के भवनों का वर्णन, इसके अलावा नरकावासों के संस्थान, आयाम-विष्कंभ, वर्ण, गंध रस स्पर्श उनकी अशुभना का चित्रण किया गया है।

चारों गतियों की अपेक्षा नरक गति के जीवों के वेदना, लेश्या, नाम गोत्र, अरति, भय, शोक, भूख, प्यास, व्याधि, उच्छ्वास, क्रोध, मान, माया, लोभ, आहार भय मैथुन-परिग्रहादि संज्ञा आदि अशुभ एवं अनिष्ट होते, इसका दिग्दर्शन इस प्रतिपत्ति में कराया है। नारकी जीवों को वहाँ क्षण मात्र भी सुख नहीं, हमेशा अति शीत, अग्नि, उष्ण, अतितृष्णा, अतिक्षुधा और अति भय से संतप्त रहते हैं। इन सब का अति विस्तार से इसमें वर्णन किया गया है।

तिर्यक् योनिक जीवों के अन्तर्गत एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के विभिन्न भेद-प्रभेदों, इन जीवों के लेश्या दृष्टि, ज्ञान-अज्ञान, योग उपयोग, आगति, गति, स्थिति, समुद्घात, कुलकोड़ी का कथन किया गया है। तदनन्तर मनुष्याधिकार में कर्मभूमि, अकर्मभूमि, अन्तरद्वीपक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य का बहुत ही विस्तार से इसमें वर्णन किया गया है। मनुष्यों के वर्णन के पश्चात् चार प्रकार के देवों भवनपति, व्याणव्यंतर, ज्योतिषक और वैमानिक का कथन किया गया है, उनके आवास, परिषद, इन्द्र, सामानिक आदि का उल्लेख किया गया।

देवों के वर्णन के पश्चात द्वीप-समुद्रों का वर्णन किया गया है, जिसके अन्तगत जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकी खण्ड, कालोद समुद्र, पुष्करवरद्वीप, मानुषोत्तर पर्वत, के अतिरिक्त वरुणवरद्वीप, वरुणवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप, क्षीरोदसागर, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, क्षोदवर द्वीप, क्षोदवर समुद्र, नंदीश्वर द्वीप, नंदीश्व समुद्र आदि का नामोल्लेख पूर्वक वर्णन कर आगे असंख्यात द्वीप समुद्र के पश्चात् अन्त में असंख्यात योजन विस्तृत वाला स्वयंभूरमण समुद्र है ऐसा कथन किया है। सभी प्रतिपत्तियों में यह तीसरी प्रतिपत्ति सबसे बड़ी एवं विस्तृत है।

चतुर्थ प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को पांच भागों एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय में विभक्त कर उनके जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति संस्थित काल और अल्पबहुत्व बतलाये गए हैं।

पंचम प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को पृथ्वीकाय, अपकाय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय इन छह भावों में विभक्त कर उनके स्थिति, संचिट्ठण, अन्तर और अल्पबहुत्व बतलाया गया है। तदनन्तर इसमें निगोद का वर्णन, स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का भी कथन है।

षष्ठ प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को सात भागों में नैरियक, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य-मनुष्यनी, देव-देवी में विभक्त कर। इनकी स्थिति, संस्थिति, अन्तर और अल्प बहुत्व बतलाये गये हैं।

सप्तम प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को आठ भागों में प्रथम समय नैरियक, अप्रथम समय नैरियक, प्रथम समय तिर्यंच, अप्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव, अप्रथम समय देव कर इनकी स्थिति, संस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन किया गया है।

अष्टम प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को पृथ्वीकायिक आदि पांच स्थावर एवं बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय नौ भागों में विभक्त कर उनकी स्थिति संस्थिति अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन किया है।

नौवीं प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को प्रथम समय एकेन्द्रिय से लेकर प्रथम पंचेन्द्रिय तक पांच और अप्रथम समय एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक पांच इस प्रकार दस भागों में विभक्त कर, इनकी स्थिति संस्थिति, अन्तर और अल्प बहुत्व का कथन किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार प्रस्तुत आगम को चौबीस ही दण्डकों के जीवों के भेद-प्रभेद के साथ उनकी विभिन्न स्थितियों का कोष कहा जा सकता है। क्योंकि चौबीस दण्डकों के जीवों का विशद् वर्णन जैसा इस आगम है, वैसा अन्य किसी आगम में नहीं है। इसके अध्ययन से जीव को सम्पूर्ण संसार के संस्थिति का पूर्णरूपेण अनुभव हो जाता है। फलस्वरूप वह अपनी भूतकालीन चारों गतियों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन कर अपने वर्तमान जीवन को आध्यात्मिक मार्ग में जो पुनः उन गतियों के परिभ्रमण से बच सकता है उसमें जोड़ सकता है। इस आगम की महत्ता बताते हुए आचार्य भगवन्त फरमाते हैं कि जीवाजीवाभिगम नामक उपांग राग रूपी विष को उतारने के लिए श्रेष्ठ मंत्र के समान है। द्वेष रूपी आग को शान्त करने हेतु जलपूर के समान है। अज्ञान तिमिर को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है। संसार रूपी समुद्र को तिरने के लिए सेतु के समान है। बहुत प्रयत्न द्वारा ज्ञेय है एवं मोक्ष को प्राप्त कराने की अबोध शक्ति युक्त है। आचार्य भगवन्तों के उक्त विशेषणों से प्रस्तुत आगम का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अर्न्तगत इस सूत्रराज का प्रथम प्रकाशन किया जा रहा है। इसके हिन्दी अनुवाद एवं विवेचन का आधार प्राचीन टीकाओं के अलावा आचार्य मलयगिरि की वृत्ति प्रमुख रही है एवं मूल पाठ के लिए संघ द्वारा प्रकाशित सुत्तागमे का सहारा लिया गया है। टीका का हिन्दी अनुवाद श्रीमान् पारसमल जी चण्डालिया ने किया। इसके बाद उस अनुवाद को मैंने देखा। तत्पश्चात् हमारे अनुनय विनय पूर्वक निवेदन पर ध्यान देकर पूज्य गुरुदेव श्री श्रुतधरजी म. सा. ने पूज्य पण्डित रत्न श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. को इसे सुनने की आज्ञा फरमाई। तदनुसार सेवाभावी श्रावक रत्न श्री प्रकाशचन्द जी सा. चपलोत सनवाड़ वालों ने पूज्य लक्ष्मीमुनिजी म. सा. को सनवाड़ सुनाया। पूज्य गुरुभगवन्तों ने जहाँ भी आवश्यकता समझी संशोधन कराने की महती कृपा की। अतएव संघ पूज्य गुरु भगवन्तों एवं सुश्रावक श्री प्रकाशचन्दजी सा. चपलोत का हृदय से आभार व्यक्त करता है।

अवलोकित प्रति का प्रेस कापी तैयार होने से पूर्व हमारे द्वारा पुनः अवलोकन किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र के प्रकाशन से पूर्व हमारे द्वारा पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी बरती गई है। बावजूद हमारी अल्पज्ञता के कारण कही भी त्रुटि रह सकती है। अतएव तत्त्वज्ञ मनीषियों से निवेदन है कि इस प्रकाशन में कही कोई गलती दृष्टिगोचर हो तो कृपा करके हमें सूचित करने की कृपा करावें। हम उनके अनुगृहित होंगे। वस्तुतः वही सत्य एवं प्रामाणिक है जो सर्वज्ञ कथित आशय को उद्घाटित करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत सूत्र पर विवेचन एवं व्याख्या बहुत विस्तृत होने से इस सूत्रराज का कलेवर काफी बढ़ गया। इसकी सामग्री लगभग आठ सौ पेज हो गई। पाठक बंधु इसका सुगमता से अध्ययन, अनुशीलन कर सके, इसके लिए इसका प्रकाशन दो भागों में किया जा रहा है। पहले भाग में प्रथम तीसरी प्रतिपत्ति का तक का विवेचन लिया गया है। शेष तीसरी एवं छह प्रतिपत्तियों का विवेचन दूसरे भाग में लिया गया है।

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन में आदरणीय **श्री जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** निवासी का मुख्य सहयोग रहा है। आप एवं आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबेन शाह** की सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार में गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा प्रकाशित सभी आगम **अर्द्ध मूल्य** में पाठकों को उपलब्ध हो तदनुसार आप इस योजना के अन्तर्गत सहयोग प्रदान करते रहे हैं। अतः संघ आपका आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपके पुत्र रत्न **मयंकभाई शाह** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग १ की प्रथम आवृत्ति का सितम्बर २००२ एवं द्वितीय आवृत्ति का अक्टूबर २००६ में प्रकाशन किया गया जो अल्प समय में ही अप्राप्य हो गयी। अब इसकी तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन किया जा रहा है। आए दिन कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस आवृत्ति में जो कागज काम में लिया गया वह उत्तम किस्म का मेपलिथो है। बाईडिंग पक्की तथा सेक्शन है। बावजूद इसके आदरणीय शाह परिवार के आर्थिक सहयोग के कारण प्रथम भाग का **मूल्य मात्र ३५)** ही रखा गया है, जो अन्यत्र से प्रकाशित आगमों से बहुत अल्प है। सुज्ञ पाठक बंधु संघ के इस नूतन आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें।

इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.) — **संघ सेवक**

दिनांकः २१-५-२००८ — **नेमीचन्द बांठिया**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह *	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

---

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण- खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण- खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर, जब तक नया राजा घोषित न हो

१९. युद्ध स्थान के निकट जब तक युद्ध चले

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो, जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन,
कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा दिन रात

२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा- दिन रात

२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि-
इन चार सन्धिकालों में- १-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग १

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	द्विविधाख्या प्रथम प्रतिपत्ति	
१.	प्रस्तावना	१-२
२.	जीवाजीवाभिगम का स्वरूप	४
३.	अजीवाभिगम का स्वरूप	५
४.	जीवाभिगम का स्वरूप	९
५.	असंसार समापन्नक जीवाभिगम	९
६.	संसार समापन्नक जीवाभिगम	१२
७.	संसारी जीवों के दो भेद	१३
८.	स्थावर के भेद	१४
९.	सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के २३ द्वारों का निरूपण	
	१. शरीर द्वार	१७
	२. अवगाहना द्वार	१९
	३. संहनन द्वार	१९
	४. संस्थान द्वार	२०
	५. कषाय द्वार	२१
	६. संज्ञा द्वार	२२
	७. लेश्या द्वार	२२
	८. इन्द्रिय द्वार	२२
	९. समुद्घात द्वार	२३
	१०. संज्ञी द्वार	२४
	११. वेद द्वार	२५
	१२. पर्याप्ति द्वार	२५
	१३. दृष्टि द्वार	२६
	१४. दर्शन द्वार	२६
	१५. ज्ञान द्वार	२७
	१६. योग द्वार	२८
	१७. उपयोग द्वार	२९
	१८. आहार द्वार	२९
	१९. उपपात द्वार	३६
	२०. स्थिति द्वार	३७
	२१. समवहत असमवहत द्वार	३७
	२२. च्यवन द्वार	३८
	२३. गति आगति द्वार	३९
१०.	बादर पृथ्वीकायिक जीवों का वर्णन	३९
११.	अप्कायिक जीवों का वर्णन	४२
१२.	वनस्पतिकायिक जीवों का वर्णन	४४
१३.	त्रस के भेद	५२
१४.	तेजस्कायिक जीवों का वर्णन	५३
१५.	वायुकायिक जीवों का वर्णन	५५
१६.	औदारिक त्रस के भेद	५८
१७.	बेइन्द्रिय जीवों का वर्णन	५९
१८.	तेइन्द्रिय जीवों का वर्णन	६३
१९.	चउरिन्द्रिय जीवों का वर्णन	६४
२०.	पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन	६५-१०५
	१. नैरयिक जीवों का वर्णन	६५-७०
	२. तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन	७०-९१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	१. संमूर्च्छिम तिर्यंच पं० जीव	७७-८२
	२. गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय	८३-९१
	३. मनुष्यों का वर्णन	९१-९९
	१. सम्मूर्च्छिम मनुष्य	९२-९३
	२. गर्भज मनुष्य	९३-९९
	४. देवों का वर्णन	९९-१०५
२१.	त्रस-स्थावर की भवस्थिति	१०६
२२.	त्रस-स्थावर की कायस्थिति	१०६
२३.	त्रस-स्थावर का अंतर	१०७
२४.	त्रस-स्थावर का अल्पबहुत्व	१०८

त्रिविधाख्या द्वितीय प्रतिपत्ति

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
२५.	तीन प्रकार के संसारी जीव	१०७
२६.	स्त्रियों के भेद-प्रभेद	१०९-११३
	१. तिर्यंच स्त्रियों के भेद	११०
	२. मनुष्य स्त्रियों के भेद	११२
	३. देव स्त्रियों के भेद	११३
२७.	स्त्रियों की स्थिति	११५-१२४
	१. तिर्यंच स्त्रियों की स्थिति	११६
	२. मनुष्य स्त्रियों की स्थिति	११७
	३. देवस्त्रियों की स्थिति	१२१
२८.	स्त्रियों की कायस्थिति	१२४-१३२
	१. तिर्यंच स्त्री की कायस्थिति	१२७
	२. मनुष्य स्त्री की कायस्थिति	१२८
	३. देव स्त्री की कायस्थिति	१३२
२९.	स्त्रियों का अन्तर	१३२
३०.	स्त्रियों का अल्पबहुत्व	१३५
३१.	स्त्रीवेद कर्म की बंध स्थिति	१३९
३२.	स्त्री वेद का स्वभाव	१४१
३३.	पुरुष के भेद	१४१
३४.	पुरुष वेद की स्थिति	१४२
३५.	पुरुष की कायस्थिति	१४५
३६.	पुरुषों का अंतर	१४८
३७.	पुरुषों का अल्पबहुत्व	१५१
३८.	पुरुषवेद की बंध स्थिति	१५६
३९.	पुरुष वेद का स्वभाव	१५७
४०.	नपुंसक के भेद	१५७
४१.	नपुंसक की स्थिति	१६०
४२.	नपुंसक की कायस्थिति	१६३
४३.	नपुंसकों का अंतर	१६६
४४.	नपुंसकों का अल्पबहुत्व	१७०
४५.	नपुंसकवेद की बंध स्थिति	१७५
४६.	नपुंसक वेद का स्वभाव	१७६
४७.	नवविध अल्पबहुत्व	१७७
४८.	स्त्री-पुरुष-नपुंसक की स्थिति	१८६
४९.	पुरुषों से स्त्रियों की अधिकता	१८६

चतुर्विधाख्या तृतीय प्रतिपत्ति

प्रथम नैरयिक उद्देशक

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
५०.	चार प्रकार के संसारी जीव	१८८
५१.	नैरयिक जीवों के भेद	१८८
५२.	सात पृथ्वियों के नाम और गोत्र	१८९
५३.	नरक पृथ्वियों का बाहल्य	१९०
५४.	रत्नप्रभा पृथ्वी के भेद-प्रभेद	१९१
५५.	शर्कराप्रभा आदि के भेद	१९२
५६.	नरकावासों की संख्या	१९३
५७.	रत्नादि कांडों की मोटाई	१९६
५८.	रत्न प्रभा आदि में द्रव्यों की सत्ता	१९८
५९.	नरकों का संस्थान	२०१
६०.	सातों पृथ्वियों की अलोक से दूरी	२०२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
६१.	घनोदधि आदि वलयों की मोटाई	२०४
६२.	सर्व जीव पुद्गलों का उत्पाद	२०९
६३.	रत्नप्रभा आदि शाश्वत या अशाश्वत	२११
६४.	पृथ्वियों का अंतर	२१२
६५.	बाहल्य की अपेक्षा तुल्यता आदि	२१५
	द्वितीय नैरयिक उद्देशक	
६६.	नरकावास कहाँ हैं?	२१८
६७.	नरकावास कैसे हैं?	२१९
६८.	नरकावासों का आकार	२२१
६९.	नरकावासों की मोटाई आदि	२२२
७०.	नरकावासों के वर्ण, गंध आदि	२२५
७१.	नरकावासों का विस्तार	२२७
७२.	नरकावास किसके बने हुए हैं?	२२९
७३.	नरकों का उपपात	२३०
७४.	नैरयिकों की संख्या	२३१
७५.	नैरयिक जीवों की अवगाहना	२३१
७६.	नैरयिकों में संहनन	२३३
७७.	नैरयिकों में संस्थान	२३४
७८.	नैरयिकों के शरीर के वर्णादि	२३४
७९.	नैरयिकों का श्वासोच्छ्वास व आहार आदि	२३५
८०.	नैरयिकों में लेश्याएं	२३६
८१.	नैरयिकों में दृष्टि	२३७
८२.	नैरयिकों में ज्ञानी-अज्ञानी	२३८
८३.	नैरयिकों में योग उपयोग	२३८
८४.	नैरयिकों में समुद्घात	२४०
८५.	नैरयिकों की भूख प्यास	२४०
८६.	नैरयिकों की विकुर्वणा	२४१
८७.	नरकों में शीत उष्ण वेदना	२४३-२५१
	१. नरकों की उष्ण वेदना	२४५
	२. नरकों में शीत वेदना	२५०
८८.	नैरयिकों की स्थिति	२५१
८९.	नैरयिकों की उद्वर्तना	२५२
९०.	नरकों में पृथ्वी आदि का स्पर्श	२५२
९१.	नरक पृथ्वियों की अपेक्षा से मोटाई	२५३
९२.	नरकों में उपपात	२५४
	तृतीय नैरयिक उद्देशक	
९३.	नैरयिकों में पुद्गल परिणमन	२५८
९४.	सातवीं पृथ्वी में जाने वाले जीव	२५८
९५.	नैरयिकों का विकुर्वणा काल	२५९
९६.	नैरयिकों का आहार	२६०
९७.	नैरयिकों की अशुभ विक्रिया	२६०
९८.	नैरयिकों को होने वाली क्षणिक साता	२६१
९९.	नैरयिकों का दुःख से उछलना	२६२
१००.	जीव के द्वारा छोड़े गये शरीर	२६२
१०१.	नैरयिकों के दुःख	२६३
	प्रथम तिर्यंच योनिक उद्देशक	
१०२.	तिर्यंच योनिकों के भेद	२६४
१०३.	एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेद	२६४
१०४.	बेइन्द्रिय आदि तिर्यंच जीव	२६६
१०५.	पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक के भेद	२६६
१०६.	जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक	२६६
१०७.	स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक	२६७
१०८.	खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक	२६९
१०९.	खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का योनि संग्रह	२६९
११०.	द्वार प्ररूपणा	२७०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक विषय	पृष्ठ संख्या
१११. गंध और गंधशत	२७५
११२. वल्लियाँ और वल्लिशत	२७६
११३. लताएं और लताशत	२७६
११४. हरितकाय और हरितकायशत	२७७
११५. विमानों के नाम	२७८
११६. विमानों की महत्ता	२७९
द्वितीय तिर्यंचयोनिक उद्देशक	
११७. पृथ्वीकायिक आदि जीव	२८२
११८. त्रसकायिक जीव	२८३
११९. पृथ्वीकायिकों का वर्णन	२८४
१२०. अविशुद्ध लेशी विशुद्धलेशी अनगार	२८९
१२१. अन्यतीर्थिक और क्रिया प्ररूपणा	२९२
मनुष्य उद्देशक	
१२२. मनुष्य के भेद	२९४
१२३. एकोरुक द्वीप का वर्णन	२९६
१२४. दस वृक्षों का वर्णन	३००
१२५. एकोरुक द्वीप के मनुष्यों का वर्णन	३१२
१२६. एकोरुक मनुष्य स्त्रियों का वर्णन	३२०
१२७. मनुष्यों का आहार	३२५
१२८. पृथ्वी का स्वाद	३२५
१२९. पुष्पों और फलों का स्वाद	३२६
१३०. वृक्षों का संस्थान	३२७
१३१. एकोरुक द्वीप में घर आदि	३२८
१३२. एकोरुक द्वीप में ग्राम आदि	३२८
१३३. एकोरुक द्वीप में असि आदि	३२८
१३४. एकोरुक द्वीप में हिरण्य आदि	३२९
१३५. एकोरुक द्वीप में राजा आदि	३२९
१३६. एकोरुक द्वीप में नौकर आदि	३३०
१३७. एकोरुक द्वीप में माता आदि	३३०
१३८. एकोरुक द्वीप में अरि आदि	३३०
१३९. एकोरुक द्वीप में मित्र आदि	३३१
१४०. एकोरुक द्वीप में विवाह आदि	३३१
१४१. एकोरुक द्वीप में महोत्सव	३३२
१४२. एकोरुक द्वीप में खेल आदि	३३२
१४३. एकोरुक द्वीप में वाहन	३३३
१४४. एकोरुक द्वीप में पशु आदि	३३३
१४५. एकोरुक द्वीप में धान्य आदि	३३४
१४६. एकोरुक द्वीप में गड्ढे आदि	३३४
१४७. एकोरुक द्वीप में कांटे आदि	३३५
१४८. एकोरुक द्वीप में डांस आदि	३३५
१४९. एकोरुक द्वीप में सर्प आदि	३३६
१५०. एकोरुक द्वीप में उपद्रव आदि	३३६
१५१. एकोरुक द्वीप में युद्ध रोग आदि	३३८
१५२. एकोरुक द्वीप में जल के उपद्रव आदि	३३९
१५३. एकोरुक द्वीप में खानें आदि	३३९
१५४. एकोरुक द्वीप में मनुष्य स्थिति	३४१
१५५. एकोरुक द्वीप में मनुष्यों का उपपात	३४१
१५६. आभाषिक द्वीप के मनुष्य	३४२
१५७. नांगोलिक द्वीप के मनुष्य	३४२
१५८. वैषाणिक द्वीप के मनुष्य	३४२
१५९. हयकर्ण द्वीप के मनुष्य	३४३
१६०. गजकर्ण द्वीप के मनुष्य	३४३
१६१. शष्कुलि कर्णद्वीप के मनुष्य	३४४
१६२. शेष द्वीपों के मनुष्य	३४५
१६३. उत्तरदिशा के मनुष्य	३४६
१६४. अकर्म भूमिज और कर्म भूमिज मनुष्य	३४९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

卐 णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

जीवाजीवाभिगम सूत्र

(मूलपाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन सहित)

प्रस्तावना

अनादिकाल से कालचक्र चलता आ रहा है। उसका एक चक्र का समय बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। उसके दो विभाग होते हैं - १. उत्सर्पिणी काल और २. अवसर्पिणी काल। उत्सर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है और इसी तरह अवसर्पिणी काल भी दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में तरेसट-तरेसट (६३-६३) श्लाघ्य (शलाका) पुरुष होते हैं यथा - चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव।

तीर्थंकर राजपाट आदि ऋद्धि सम्पदा को छोड़कर दीक्षित होते हैं। दीक्षा लेकर तप संयम के द्वारा घाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान प्राप्ति के बाद साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध श्रमण संघ की स्थापना करते हैं। जिस तीर्थंकर के जितने गणधर होने होते हैं उतने गणधर प्रथम देशना में हो जाते हैं। फिर तीर्थंकर भगवान् अर्थ रूप से द्वादशाङ्ग की प्ररूपणा करते हैं और गणधर उस अर्थ को सूत्र रूप में गून्थन करते हैं-

यथा - **अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा णिउणं।**
सासणस्स हियट्ठयाए, तओ तित्थं पवत्तइ॥

अर्थ - तीर्थंकर भगवान् अर्थ फरमाते हैं और गणधर भगवान् शासन के हित के लिए सूत्र रूप से उसे गून्थन करते हैं। जिससे तीर्थंकर का शासन चलता रहता है।

जिस प्रकार पञ्चास्तिकाय (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय) भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्यत्काल में भी रहेगी। इसी तरह यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वादशांग वाणी भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्यत् काल में भी रहेगी। अतएव यह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है। नंदी सूत्र में भी कहा है -

"एयं दुवालसंगं गणिपिडगं ण कया वि णासी, ण कयाइ वि ण भवइ, ण कया वि ण भविस्सइ। धुवं णिच्चं सासयं।"

- यह द्वादशांग गणिपिटक पूर्वकाल में नहीं था, ऐसा नहीं; वर्तमानकाल में नहीं है ऐसा भी नहीं; भविष्य में नहीं होगा, ऐसा भी नहीं। यह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है।

द्वादशांग का अर्थ है - बारह अंग सूत्र। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. आचाराङ्ग २. सूयगडाङ्ग ३. ठाणाङ्ग ४. समवायाङ्ग ५. भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) ६. ज्ञाताधर्म कथा ७. उपासकदशाङ्ग ८. अन्तगडदशाङ्ग ९. अनुत्तरोववाई १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक सूत्र १२. दृष्टिवाद। इन बारह अंगों में दृष्टिवाद बहुत विशाल है अथवा यों कहना चाहिये कि दृष्टिवाद, ज्ञान का खजाना है अथाह और अपार सागर है। इस पांचवें आरे में दृष्टिवाद का ज्ञान नहीं है अर्थात् सम्पूर्ण दृष्टिवाद का विच्छेद हो चुका है। अब तो ग्यारह अंग सूत्र ही उपलब्ध होते हैं।

अंगों की तरह उपांगों की संख्या भी बारह है। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. उववाई २. रायपसेणी ३. जीवाजीवाभिगम ४. पण्णवणा ५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ६. चन्द्र प्रज्ञप्ति ७. सूर्य प्रज्ञप्ति ८. निरयावलिया ९. कप्पवडंसिया १०. पुप्फिया ११. पुप्फचूलिया और १२. वण्हिदसा सूत्र।

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम तृतीय उपांग है। यह स्थानांग नामक तीसरे अंग का उपांग है। यह श्रुत स्थविरों द्वारा रचित है अतः अनंगप्रविष्ट श्रुत है। जो श्रुत अस्वाध्याय को टाल कर दिन-रात के चारों प्रहर में पढ़े जा सकते हैं वे उत्कालिक हैं जैसे - दशवैकालिक आदि और जो श्रुत दिन और रात्रि के प्रथम और अंतिम प्रहर में ही पढ़े जाते हैं वे कालिक श्रुत हैं जैसे उत्तराध्ययन आदि। प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम सूत्र उत्कालिक सूत्र है।

प्रस्तुत सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है। अभिगम का अर्थ ज्ञान है। जिसमें जीव और अजीव का ज्ञान है वह जीवाजीवाभिगम है। मुख्य रूप से जीव का प्रतिपादन होने से अथवा संक्षेप दृष्टि से यह सूत्र 'जीवाभिगम' के नाम से भी जाना जाता है। प्रस्तुत आगम में नौ प्रतिपत्तियाँ (प्रकरण) हैं। प्रथम प्रतिपत्ति में जीव और अजीव का निरूपण किया गया है। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमा दुविह पडिवत्ती

द्विविधाख्या प्रथम प्रतिपत्ति

इह खलु जिणमयं, जिणाणुमयं, जिणाणुलोमं, जिणप्पणीयं, जिणपरूवियं, जिणक्खायं, जिणाणुचिण्णं, जिणपण्णत्तं, जिणदेसियं, जिणपसत्थं अणुव्वीइय तं सद्दहमाणा, तं पत्तियमाणा, तं रोएमाणा थेरा भगवंतो जीवाजीवाभिगमं णाममज्झयणं पण्णवइंसु॥ १॥

कठिन शब्दार्थ - जिणमयं - जिनमत-जिन अर्थात् वर्तमान तीर्थंकर (शासनाधिपति) वर्धमान स्वामी का मत अर्थात् आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक समस्त द्वादशांग रूप गणिपिटक, **जिणाणुमयं** - जिनानुमत-सभी तीर्थंकरों द्वारा अनुमत, **जिणाणुलोमं** - जिनानुलोम अर्थात् जिनों के लिए अनुकूल, **जिणप्पणीयं** - जिन प्रणीत, **जिणपरूवियं** - जिनेश्वरों द्वारा प्ररूपित, **जिणक्खायं** - जिनाख्यात-जिनेश्वर द्वारा साक्षात् वचन योग द्वारा कहा हुआ, **जिणाणुचिण्णं** - जिनानुचीर्ण-गणधरों द्वारा आसेवित, **जिणपण्णत्तं** - जिनप्रज्ञप्त-गणधरों द्वारा रचित, **जिणदेसियं** - जिनदेशित, **जिणपसत्थं** - जिन प्रशस्त, **अणुव्वीइय** - पर्यालोचन (विचार) कर, **सद्दहमाणा** - श्रद्धा करते हुए, **पत्तियमाणा** - प्रतीति करते हुए, **रोएमाणा** - रुचि रखते हुए, **पण्णवइंसु** - प्ररूपित किया।

भावार्थ - इस मनुष्य लोक में अथवा जिन प्रवचन में जिनमत-तीर्थंकर भगवान् के सिद्धान्त रूप द्वादशांग गणिपिटक का जो जिनानुमत-अन्य सब तीर्थंकरों द्वारा अनुमत है, जिनानुलोम-जिनों (अवधि जिन, मनःपर्याय जिन और केवलजिन) के लिए अनुकूल है, जिन प्रणीत है, जिन प्ररूपित है, जिनाख्यात है, जिनानुचीर्ण है, जिनप्रज्ञप्त है, जिनदेशित है, जिनप्रशस्त है, पर्यालोचन कर उस पर श्रद्धा करते हुए, उस पर प्रतीति करते हुए, उस पर रुचि रखते हुए स्थविर भगवंतों ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन प्ररूपित किया है।

विवेचन - जीवों और अजीवों का अभिगम अर्थात् परिच्छेद-ज्ञान जिसमें हो या जिसके द्वारा हो वह जीवाजीवाभिगम है। अर्थ की अपेक्षा तीर्थंकर परमात्मा ने जीवाजीवाभिगम कहा है और सूत्र की अपेक्षा गणधरों ने कहा है। इसके पश्चात् भव्य जीवों के हित के लिये अतिशय ज्ञान वाले चतुर्दश पूर्वधरों ने स्थानांग नामक तीसरे अंग से लेकर पृथक् अध्ययन के रूप में इस जीवाजीवाभिगम का कथन किया अतः यह तीसरा उपांग कहा गया है। स्थविर भगवंतों द्वारा प्ररूपित होने के कारण प्रस्तुत सूत्र में **"थेरा भगवंतो पण्णवइंसु"** कहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत अध्ययन सम्यग्ज्ञान का हेतु होने से तथा परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला होने से स्वयमेव मंगलरूप है तथापि **'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'** के अनुसार विघ्नों की उपशांति के लिए तथा शिष्य की बुद्धि में मांगलिकता का ग्रहण कराने के लिए शास्त्र में मंगल करने की परिपाटी है। इस शिष्टाचार के पालन में ग्रंथ के आदि, मध्य और अंत में मंगलाचरण किया जाता है। आदि मंगल का उद्देश्य ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति और शास्त्रार्थ में होने वाले विघ्नों से पार होना है। मध्य मंगल उसकी स्थिरता के लिए है तथा शिष्य-प्रशिष्य परम्परा तक ग्रंथ का विच्छेद न हो, इसलिए अंतिम मंगल किया जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन में **'इह खलु जिणमयं'** आदि मंगल है। प्रथम सूत्र में आया हुआ **जिणमयं** - जैन सिद्धांत पद विशेष्य है और **जिणाणुमयं** से लगा कर **जिणपसत्थं** तक के पद **जिणमयं** - जिनमत के विशेषण है। इन विशेषणों द्वारा जैनमत की महिमा एवं गरिमा का वर्णन किया गया है। इन विशेषणों से विशिष्ट 'जिनमत' की औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों द्वारा सम्यक् पर्यालोचन करके उस पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि रखने वाले स्थविर भगवंतों ने 'जीवाजीवाभिगम' इस सार्थक नाम वाले अध्ययन का प्ररूपण किया है। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में मंगलाचरण की शिष्य परिपाटी का निर्वाह करते हुए ग्रंथ की प्रस्तावना बताई गई है।

जीवाजीवाभिगम का स्वरूप

से किं तं जीवाजीवाभिगमे?

जीवाजीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा - जीवाभिगमे य अजीवाभिगमे य।। २ ।।

भावार्थ - जीवाजीवाभिगम क्या है?

जीवाजीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. जीवाभिगम और २. अजीवाभिगम।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीवाजीवाभिगम का स्वरूप बतलाया गया है। जीवाजीवाभिगम, जीवाभिगम और अजीवाभिगम स्वरूप वाला है। अभिगम का अर्थ है - बोध या ज्ञान। जीव द्रव्य का ज्ञान जीवाभिगम है और अजीव द्रव्य का ज्ञान अजीवाभिगम है। इस संसार में मुख्यतः दो ही तत्त्व हैं- जीव तत्त्व और अजीव तत्त्व। शेष तत्त्व इन दो ही तत्त्वों का विस्तार हैं। अतः शास्त्रों में जीव और अजीव के स्वरूप के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। जीव और अजीव के भेद ज्ञान से ही सम्यग्दर्शन होता है और सम्यग्दर्शन के पश्चात् सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र से मुक्ति होती है अतः जीवाभिगम और अजीवाभिगम परम्परा से मुक्ति का कारण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अजीवाभिगम का स्वरूप

से किं तं अजीवाभिगमे?

अजीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा - रूवि अजीवाभिगमे य अरूवि अजीवाभिगमे य॥ ३॥

भावार्थ - अजीवाभिगम क्या है?

अजीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. रूपी-अजीवाभिगम और २. अरूपी-अजीवाभिगम।

विवेचन - सूत्रकार ने पहले जीवाभिगम कहा और बाद में अजीवाभिगम कहा है। **'यथोद्देशस्तथा निर्देशः'** अर्थात् उद्देश के अनुसार ही निर्देश-कथन करना चाहिये-इस न्याय से पहले जीवाभिगम के विषय में प्रश्नोत्तर किये जाने चाहिये थे परन्तु ऐसा नहीं करते हुए पहले अजीवाभिगम के विषय में प्रश्नोत्तर किये गये हैं। इसका कारण यह है कि जीवाभिगम में वक्तव्य विषय बहुत है और अजीवाभिगम में अल्प वक्तव्यता है। अतः **'सूचि कटाह'** न्याय के अनुसार पहले अजीवाभिगम के विषय में प्रश्नोत्तर किये गये हैं।

अजीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है - १. रूपी-अजीवाभिगम और २. अरूपी-अजीवाभिगम। सामान्यतया जिसमें रूप पाया जाता है उसे रूपी कहते हैं परन्तु यहां रूपी से तात्पर्य रूप, रस, गंध और स्पर्श चारों से है। अर्थात् रूप, रस, गंध स्पर्श वाले रूपी अजीव हैं और जिनमें रूप, रस, गंध और स्पर्श नहीं है वे अरूपी अजीव हैं। रूपी-अजीव का ज्ञान रूपी-अजीवाभिगम और अरूपी-अजीव का ज्ञान अरूपी अजीवाभिगम है।

से किं तं अरूवि अजीवाभिगमे?

अरूवि अजीवाभिगमे दसविहे पण्णत्ते, तं जहा - धम्मत्थिकाए एवं जहा पण्णवणाए जाव से त्तं अरूवि अजीवाभिगमे।

भावार्थ - अरूपी अजीवाभिगम क्या है?

अरूपी अजीवाभिगम दस प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - धर्मास्तिकाय से लेकर अद्धा समय पर्यन्त जैसा कि प्रज्ञापना सूत्र के पांचवें पद में कहा गया है। यह अरूपी अजीवाभिगम का वर्णन हुआ।

विवेचन - अरूपी अजीव के दस भेद इस प्रकार हैं - १. धर्मास्तिकाय २. धर्मास्तिकाय का देश ३. धर्मास्तिकाय का प्रदेश ४. अधर्मास्तिकाय ५. अधर्मास्तिकाय का देश ६. अधर्मास्तिकाय का प्रदेश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. आकाशास्तिकाय ८. आकाशास्तिकाय का देश ९. आकाशास्तिकाय का प्रदेश और १०. अद्धा समय (काल)। इन दस भेदों का विशेष वर्णन प्रज्ञापना सूत्र से जानना चाहिये।

१. धर्मास्तिकाय - जीवों और पुद्गलों को गति करने में जो सहायक होता है वह धर्मास्तिकाय है। जिस प्रकार मछली को तैरने में जल सहायक होता है उसी प्रकार जीव और पुद्गलों की गति में निमित्त कारण के रूप में धर्मास्तिकाय सहायक होता है।

२. धर्मास्तिकाय का देश - धर्मास्तिकाय के द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि बुद्धिकल्पित विभाग को धर्मास्तिकाय का देश कहते हैं। वास्तव में तो धर्मास्तिकाय एक अखण्ड द्रव्य है।

३. धर्मास्तिकाय का प्रदेश - 'प्रदेशा निर्विभागा भागाः' - स्कन्ध के ऐसे सूक्ष्म भाग को जिसका फिर अंश न हो सके, प्रदेश कहते हैं। धर्मास्तिकाय के अविभाज्य निरंश अंश धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं। ये भी मात्र बुद्धि से कल्पित ही है।

४. अधर्मास्तिकाय - 'अहम्मो ठिइ लक्खणो' अर्थात् जो स्थिर परिणाम वाले जीव और पुद्गलों को स्थिति में सहायक हो उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं। जैसे वृक्ष की छाया पथिक के लिए ठहरने में निमित्त कारण बनती है उसी तरह जीव और पुद्गलों की स्थिति में अधर्मास्तिकाय सहायक होता है।

५. अधर्मास्तिकाय का देश - अधर्मास्तिकाय के बुद्धि कल्पित द्विप्रदेशात्मक त्रिप्रदेशात्मक आदि विभाग को अधर्मास्तिकाय का देश कहते हैं।

६. अधर्मास्तिकाय का प्रदेश - वस्तु से मिले हुए सबसे छोटे अंश को-जिनका फिर भाग न हो सके-प्रदेश कहते हैं। अधर्मास्तिकाय के अविभाज्य निरंश अंश, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं।

७. आकाशास्तिकाय - 'अवगाहो आगासं' अर्थात् जीव और पुद्गलों को रहने के लिए जो अवकाश देवे, वह आकाशास्तिकाय है। अवगाह प्रदान करना-स्थान देना आकाश का लक्षण है। जैसे दूध शक्कर को अवगाह देता है, भींत खूंटी को स्थान देती है। आकाश द्रव्य सब द्रव्यों का आधार है। अन्य सब द्रव्य इसके आधेय हैं। आकाशास्तिकाय लोकालोक व्यापी है और अनन्त प्रदेशी है।

८-९. आकाशास्तिकाय के देश, प्रदेश - आकाशास्तिकाय का बुद्धिकल्पित अंश आकाशास्तिकाय का देश है। आकाश द्रव्य के अविभाज्य निरंश अंश को आकाशास्तिकाय का प्रदेश कहते हैं।

१०. अद्धा-समय - अद्धा का अर्थ होता है-काल। वह समय आदि रूप होने से अद्धा-समय कहा जाता है। अथवा काल का जो सूक्ष्मतम निर्विभाग भाग है, वह अद्धा-समय है। **'वर्तना लक्षणः कालः'** - अर्थात् जो वर्ते उसे काल कहते हैं। जो जीव और पुद्गलों की पर्यायों को बदलने में निमित्त हो उसे काल कहते हैं। वर्तमान का एक समय जो अढ़ाई द्वीपवर्ती जीवों और पुद्गलों के द्रव्य, प्रदेश और पर्यायों पर वर्तता है, वे सब वर्तना लक्षण रूप पर्यायें अद्धा-समय कही जाती है।

शंका - काल को अस्तिकाय क्यों नहीं माना गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं। काल कभी समूह रूप नहीं बनता क्योंकि चालू समय रहते अगले समय आते ही नहीं, इसलिये अस्तिकाय नहीं कहा गया है। काल के तीन भेद हैं - भूतकाल, भविष्यत् काल और वर्तमान काल। इनमें से भूतकाल तो नष्ट हो चुका और भविष्यत् काल आने वाला है, अभी आया नहीं है। इसलिये ये दोनों वर्तमान रूप में नहीं है। अतः सिर्फ 'वर्तमान' एक ही समय है। अर्थात् भूत और भविष्य असत् है केवल वर्तमान क्षण ही सत् है। एक समय रूप होने से इसका कोई समूह नहीं बनता, इसलिये इसके देश-प्रदेश की कल्पना नहीं होती।

इस प्रकार धर्मास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश; अधर्मास्तिकाय के स्कंध, देश, प्रदेश और आकाशास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश तथा अद्धा समय-ये दस भेद अरूपी अजीव के भेद समझने चाहिये।

से किं तं रूवि अजीवाभिगमे?

रूवि अजीवाभिगमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा - खंधा, खंधदेसा, खंधप्पएसा परमाणुपोग्गला, ते समासओ पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा - वण्ण परिणया, गंध परिणया, रस परिणया, फास परिणया, संठाण परिणया, एवं ते जहा पण्णवणाए, से त्तं रूवि अजीवाभिगमे, से त्तं अजीवाभिगमे॥ ५॥

भावार्थ - रूपी अजीवाभिगम क्या है?

रूपी-अजीवाभिगम चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - स्कंध, स्कंध का देश, स्कंध का प्रदेश और परमाणु पुद्गल। वे संक्षेप से पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. वर्ण परिणत २. गंध परिणत ३. रस परिणत ४. स्पर्श परिणत और ५. संस्थान परिणत। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापना सूत्र में कहा गया है उसी प्रकार यहां भी समझना चाहिये। यह रूपी अजीव का वर्णन हुआ। यह अजीवाभिगम का वर्णन हुआ।

विवेचन - रूपी अजीव के चार भेद बताये हैं - १. स्कंध २. स्कंध देश ३. स्कंध प्रदेश और ४. परमाणु पुद्गल।

अल्पज्ञ एवं छद्मस्थ जीवों की दृष्टि से अगोचर, अति सूक्ष्म पदार्थ को 'अणु' कहते हैं। दो अणु मिल कर द्वय-अणुक बनता है और तीन अणु मिल कर त्रय-अणुक बनता है। इस तरह अनन्त अणु समुदाय को एक **'स्कंध'** कहते हैं। स्कन्ध के बुद्धि कल्पित भाग को **'देश'** कहते हैं। स्कन्ध या देश में मिले हुए अति सूक्ष्म भाग को **'प्रदेश'** कहते हैं। वही प्रदेश भाग जब स्कंध से अलग हो जाता है तब उसको **'परमाणु'** कहते हैं। पुद्गल का सबसे सूक्ष्म अंश परमाणु है। जिसके फिर दो विभाग नहीं हो सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल स्कन्धों की अनन्तता के कारण मूल पाठ में बहुवचन का प्रयोग हुआ है। एक मात्र पुद्गल द्रव्य ही रूपी अजीव है। ये पुद्गल पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श और पांच संस्थान के रूप में परिणत होते हैं। प्रज्ञापना सूत्र में इन वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान के पारस्परिक संबंध से बनने वाले विकल्पों (भंगों) का वर्णन किया गया है। रूपी अजीव के ५३० भेद इस प्रकार हैं -

परिमण्डल, वट्ट (वृत्त), त्र्यस्र (त्रिकोण), चतुरस्र (चतुष्कोण) और आयत, इन पांच संस्थानों के पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श, इन बीस की अपेक्षा प्रत्येक के २०-२० भेद हो जाते हैं। इस प्रकार संस्थान के १०० भेद (५×२०=१००) होते हैं।

काला, नीला, लाल, पीला और सफेद, इन पांच वर्णों के १०० भेद होते हैं। काला, नीला आदि प्रत्येक वर्ण में पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श और पांच संस्थान ये बीस-बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार पांच वर्णों के (५×२०=१००) सौ भेद होते हैं।

सुरभिगंध (सुगंध) और दुरभिगंध (दुर्गन्ध) इन दो गंधों के ४६ भेद होते हैं। प्रत्येक गंध में ५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान, २३-२३ बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार दो गंधों के ४६ भेद होते हैं।

तिक्त (तीखा), कटु (कड़वा), कषाय (कषैला), खट्टा और मीठा, इन पांच रसों में प्रत्येक में ५ वर्ण, २ गंध, ८ स्पर्श और ५ संस्थान, ये बीस-बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार पांच रसों के (५×२०=१००) सौ भेद होते हैं।

कर्कश (कठोर), मृदु (कोमल), हल्का, भारी, शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष (रूखा) इन आठ स्पर्शों के १८४ भेद होते हैं। प्रत्येक स्पर्श में ५ वर्ण, ५ रस, २ गंध, ६ स्पर्श (आठ में से एक स्वयं और एक विरोधी स्पर्श को छोड़कर) और ५ संस्थान ये २३-२३ बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार आठ स्पर्शों के (८×२३=१८४) एक सौ चौरासी भेद होते हैं।

इस प्रकार संस्थान के १००, वर्ण के १००, गंध के ४६, रस के १०० और स्पर्श के १८४। ये सब मिला कर रूपी अजीव के ५३० भेद होते हैं।

अरूपी अजीव के ३० भेद इस प्रकार हैं - धर्मास्तिकाय आदि के स्कंध, देश, प्रदेश आदि १० भेद पूर्व में बताये हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल इन चारों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण इन पांच की अपेक्षा पहचाना जाता है। इसलिये इन प्रत्येक के ५-५ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार इन चारों के बीस भेद होते हैं। उपरोक्त दस और ये बीस भेद मिला कर अरूपी अजीव के ३० भेद हो जाते हैं।

रूपी अजीव के ५३० और अरूपी अजीव के ३० भेद मिला कर अजीवाभिगम के ५६० भेद होते हैं। इस प्रकार अजीवाभिगम का वर्णन हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवाभिगम का स्वरूप

से किं तं जीवाभिगमे?

जीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा - संसारसमावण्णग-जीवाभिगमे य असंसारसमावण्णग-जीवाभिगमे य।। ६ ॥

भावार्थ - जीवाभिगम क्या है?

जीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. संसार समापन्नक जीवाभिगम और २. असंसार समापन्नक जीवाभिगम।

विवेचन - जीवाभिगम क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में जीव के दो भेद बता कर उसका स्वरूप कथन किया गया है। जीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है - १. संसार समापन्नक जीवाभिगम अर्थात् संसारवर्ती जीवों का ज्ञान और २. असंसार समापन्नक जीवाभिगम अर्थात् संसार मुक्त जीवों का ज्ञान। नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव रूप संसार में जो भ्रमण कर रहे हैं वे संसार समापन्नक जीव हैं। ऐसे संसारी जीवों का जो अभिगम है वह संसार समापन्नक जीवाभिगम है।

"**न संसारोऽसंसारः**" - चतुर्गति रूप संसार से जो प्रतिपक्ष है अर्थात् मोक्ष है वह असंसार है। मोक्ष रूप असंसार को प्राप्त जीव असंसारसमापन्नक हैं और ऐसे मुक्त जीवों का ज्ञान असंसारसमापन्नक जीवाभिगम है।

अल्पवक्तव्यता होने के कारण पहले असंसारसमापन्नक जीवों का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं -

असंसार समापन्नक जीवाभिगम

से किं तं असंसार समावण्णग जीवाभिगमे?

असंसार समावण्णग जीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा - अणंतरसिद्धासंसार समावण्णग जीवाभिगमे य परंपरसिद्धासंसार समावण्णग जीवाभिगमे य।

से किं तं अणंतरसिद्धासंसार समावण्णग जीवाभिगमे?

अणंतरसिद्धासंसार समावण्णग जीवाभिगमे पण्णरसविहे पण्णत्ते, तं जहा - तित्थसिद्धा जाव अणेगसिद्धा, से त्तं अणंतरसिद्धासंसार समावण्णग जीवाभिगमे।

से किं तं परंपरसिद्धासंसार समावण्णग जीवाभिगमे?

परंपरसिद्धासंसार समावण्णग जीवाभिगमे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपढमसमयसिद्धा दुसमयसिद्धा जाव अणंतसमयसिद्धा, से त्तं परंपरसिद्धासंसार समावण्णग जीवाभिगमे, से त्तं असंसार समावण्णग जीवाभिगमे॥ ७॥

कठिन शब्दार्थ - अणंतरसिद्धासंसारसमावण्णग जीवाभिगमे - अनन्तर सिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम, **परंपरसिद्धासंसारसमावण्णग जीवाभिगमे** - परम्परसिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम।

भावार्थ - असंसार समापन्नक जीवाभिगम क्या है?

असंसार समापन्नक जीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है। यथा - १. अनन्तर सिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम और २. परम्परसिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम।

अनन्तरसिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम क्या है?

अनन्तरसिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम पन्द्रह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - तीर्थसिद्ध यावत् अनेक सिद्ध। यह अनन्तरसिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम का वर्णन हुआ।

परम्परसिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम क्या है?

परम्परसिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम अनेक प्रकार का कहा गया है। यथा - अप्रथमसमय सिद्ध, द्वितीय समय सिद्ध यावत् अनन्त समय सिद्ध। यह परम्परसिद्ध असंसार समापन्नक जीवाभिगम का वर्णन हुआ। यह असंसार समापन्नक जीवाभिगम का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन - असंसार समापन्नक यानी मुक्त जीव दो प्रकार के हैं - **१. अनन्तर सिद्ध** - जिनके सिद्धत्व में समय का अन्तर नहीं है अर्थात् सिद्धत्व के प्रथम समय में विद्यमान सिद्ध अनन्तरसिद्ध हैं। **२. परम्परसिद्ध** - जिन्हें सिद्ध हुए दो तीन यावत् अनन्त समय हो चुका है वे परम्परसिद्ध कहलाते हैं।

अनन्तरसिद्धों के पन्द्रह भेद इस प्रकार हैं - १. तीर्थसिद्ध २. अतीर्थसिद्ध ३. तीर्थंकरसिद्ध ४. अतीर्थंकरसिद्ध ५. स्वयंबुद्धसिद्ध ६. प्रत्येकबुद्धसिद्ध ७. बुद्धबोधितसिद्ध ८. स्त्रीलिंगसिद्ध ९. पुरुषलिंगसिद्ध १०. नपुंसकलिंगसिद्ध ११. स्वलिंगसिद्ध १२. अन्यलिंगसिद्ध १३. गृहस्थलिंगसिद्ध १४. एकसिद्ध और १५. अनेकसिद्ध।

१. तीर्थ सिद्ध - जिससे समुद्र तिरा जाय वह तीर्थ कहलाता है अर्थात् जीवाजीवादि पदार्थों की प्ररूपणा करने वाले तीर्थंकर भगवान् के वचन और उन वचनों को धारण करने वाला चतुर्विध संघ (साधु साध्वी श्रावक श्राविका) तथा प्रथम गणधर तीर्थ कहलाते हैं। इस प्रकार के तीर्थ की मौजूदगी में जो सिद्ध होते हैं वे तीर्थसिद्ध कहलाते हैं। जैसे - गौतम स्वामी आदि।

२. अतीर्थ सिद्ध - तीर्थ की स्थापना होने से पहले अथवा बीच में तीर्थ का विच्छेद होने पर जो सिद्ध होते हैं वे अतीर्थसिद्ध कहलाते हैं। जैसे - मरुदेवी माता आदि। मरुदेवी माता तीर्थ की स्थापना होने से पहले ही मोक्ष गई थी। भगवान् सुविधिनाथ से लेकर भगवान् शांतिनाथ तक आठ तीर्थंकरों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीच सात अन्तरों में तीर्थ का विच्छेद हो गया था। इस विच्छेद काल में जो जीव मोक्ष गये, वे अतीर्थसिद्ध कहलाते हैं।

३. **तीर्थंकर सिद्ध** - तीर्थंकर पद को प्राप्त करके मोक्ष जाने वाले तीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - भगवान् ऋषभदेव आदि।

४. **अतीर्थंकर सिद्ध** - सामान्य केवली होकर मोक्ष जाने वाले जीव अतीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - गौतमस्वामी, पुण्डरीक आदि।

५. **स्वयंबुद्ध सिद्ध** - दूसरे के उपदेश के बिना स्वयमेव बोध प्राप्त कर मोक्ष जाने वाले स्वयंबुद्ध सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - कपिल आदि।

६. **प्रत्येकबुद्ध सिद्ध** - जो किसी के उपदेश के बिना ही किसी एक पदार्थ को देख कर वैराग्य को प्राप्त होते हैं और दीक्षा धारण करके मोक्ष जाते हैं वे प्रत्येकबुद्ध सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - करकण्डू, नमिराज ऋषि आदि।

७. **बुद्धबोधित सिद्ध** - आचार्य आदि के उपदेश से बोध प्राप्त कर मोक्ष जाने वाले बुद्धबोधित सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - जम्बूस्वामी आदि।

८. **स्त्रीलिङ्ग सिद्ध** - स्त्रीलिंग से अर्थात् स्त्री की आकृति रहते हुए मोक्ष जाने वाले स्त्रीलिंग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे चन्दनबाला आदि।

९. **पुरुषलिंग सिद्ध** - पुरुष की आकृति में रहते हुए मोक्ष में जाने वाले पुरुषलिंग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - गौतम स्वामी आदि।

१०. **नपुंसकलिंग सिद्ध** - नपुंसक की आकृति में रहते हुए मोक्ष जाने वाले नपुंसकलिंग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे गांगेय अनगार आदि।

११. **स्वलिंग सिद्ध** - साधुवेश (रजोहरण) मुखवस्त्रिका आदि में रहते हुए मोक्ष जाने वाले स्वलिंग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे जैन साधु आदि।

१२. **अन्यलिंग सिद्ध** - परिव्राजक आदि के वल्कल, गेरुएं वस्त्र आदि द्रव्य लिंग में रह कर मोक्ष जाने वाले अन्य लिंग सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - वल्कलचीरी आदि।

१३. **गृहस्थलिंगसिद्ध** - गृहस्थ के वेश में मोक्ष जाने वाले गृहस्थलिंग (गृहीलिङ्ग) सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - मरुदेवी माता आदि।

१४. **एक सिद्ध** - एक समय में एक मोक्ष जाने वाले जीव एक सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - भगवान् महावीर स्वामी आदि।

१५. **अनेक सिद्ध** - एक समय में अनेक (एक से अधिक) मोक्ष जाने वाले अनेक सिद्ध कहलाते हैं। जैसे - भगवान् ऋषभदेव आदि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परम्परसिद्ध - परम्परसिद्ध अनेक प्रकार के कहे गये हैं जैसे - अप्रथम समयसिद्ध, द्वितीय समय सिद्ध, तृतीय समय सिद्ध यावत् अनन्तसमय सिद्ध। सिद्धत्व के द्वितीय आदि समय में स्थित परम्परसिद्ध होते हैं अतः जिन्हें सिद्ध हुए दो समय हुए वे अप्रथम समय परम्परसिद्ध हैं। जिन्हें सिद्ध हुए तीन समय हुए हैं वे द्वितीय समय सिद्ध हैं इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिये। परम्पर सिद्ध के भेदों में पहले भेद 'प्रथम समय सिद्ध' के स्थान पर 'अप्रथम समय सिद्ध' कहना ज्यादा उचित लगता है क्योंकि जिन्हें सिद्ध हुए द्वितीय आदि समय हुए हों अर्थात् प्रथम समय (विग्रह गति-वाटे बहते) के सिद्धों के सिवाय शेष सभी सिद्ध अप्रथम समय वाले कहे जाते हैं। अनन्तर सिद्ध के १५ भेदों को ही प्रथम समय के सिद्ध कहा जाता है। प्रज्ञापना टीका में किये हुए अप्रथम समय सिद्धों के अर्थ उचित नहीं लगते हैं। अतः नंदी सूत्र के अनुसार अर्थ समझना चाहिये।

संसार समापन्नक जीवाभिगम

से किं तं संसार समावण्णग जीवाभिगमे?

संसारसमावण्णएसु णं जीवेसु इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति, तं जहा- एगे एवमाहंसु-दुविहा संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु-तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु-चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु-पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, एएणं अभिलावेणं जाव दसविहा संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ ८॥

कठिन शब्दार्थ - पडिवत्तीओ - प्रतिपत्तियाँ (जानकारियां), **एवं आहंसु** - ऐसा कहते हैं।

भावार्थ - वह संसारसमापन्नक जीवाभिगम क्या है?

संसार समापन्नक जीवों की नौ प्रतिप्रत्तियाँ इस प्रकार कही गई हैं - १. कोई ऐसा कहते हैं कि - संसार समापन्नक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। २. कोई ऐसा (आचार्य नय विशेष का आश्रय लेकर विवक्षा से) कहते हैं कि - संसार समापन्नक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। ३. कोई ऐसा कहते हैं कि संसार समापन्नक जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। ४. कोई ऐसा कहते हैं कि - संसार समापन्नक जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं। इस अभिलाप से - इस प्रकार से यावत् दस प्रकार तक संसार समापन्नक जीव कहे गये हैं।

विवेचन - संसारी जीवों के भेदों के कथन से प्रस्तुत सूत्र में नौ प्रतिप्रत्तियाँ (अपेक्षा भेद से मान्यताएं) कही गयी है यानी नौ प्रकार से जीवों का कथन किया गया है। जैसे कि - कोई आचार्य (नय विशेष का आश्रय लेकर विवक्षा से) संसारी जीवों के दो भेद कहते हैं। कोई आचार्य संसारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवों के तीन प्रकार कहते हैं इसी प्रकार कोई कोई आचार्य चार, पांच, छह यावत् दस भेद संसारवर्ती जीवों के कहते हैं। दो से लगा कर दस प्रकार के संसारी जीव कहे गये हैं - ये नौ प्रतिप्रत्तियाँ हुई। जीवों के ये नौ ही प्रकार के प्रतिपादन (कथन) परस्पर भिन्न होते हुए भी विरोधी नहीं है। अपेक्षा भेद से ये सभी भेद सही हैं। क्योंकि विवक्षा के भेद से कथनों में भेद होता है, विरोध नहीं होता। टीकाकार ने '**प्रतिपत्ति**' शब्द के संदर्भ में कहा है कि प्रतिपत्ति केवल शब्द रूप ही नहीं है अपितु शब्द के माध्यम से अर्थ में प्रवृत्ति कराने वाली है।

संसारी जीवों के दो भेद

तत्थ णं जे एवमाहंसु 'दुविहा संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता' ते एवमाहंसु तं जहा - तसा चेव थावरा चेव॥ ९॥

भावार्थ - उन नौ प्रतिपत्तियों में जो दो प्रकार से संसार समापन्नक जीवों का कथन करते हैं वे कहते हैं कि त्रस और स्थावर के भेद से जीव दो प्रकार के हैं।

विवेचन - संसार समापन्नक जीवों की नौ प्रतिप्रत्तियों में से प्रथम प्रतिपत्ति का निरूपण करते हुए सूत्रकार ने संसारी जीवों के दो भेद कहे हैं - १. त्रस और २. स्थावर।

१. **त्रस** - '**त्रसन्ति-उष्णाद्यभितप्ताः सन्तो विवक्षितस्थानादुद्विजन्ति गच्छन्ति च छायाद्या सेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः**' - गर्मी आदि से तप्त होकर एक स्थान से छाया आदि का सेवन करने के लिये दूसरे स्थान पर जाते हैं वे त्रस जीव हैं। इस प्रकार त्रस नाम कर्म के उदय वाले जीव त्रस कहे गये हैं। अथवा '**त्रसन्ति-ऊर्ध्वमधस्तिर्यग् चलन्तीति त्रसाः**' - ऊंचे, नीचे और तिरछे जो चलते हैं वे त्रस जीव हैं। इस प्रकार के कथन से तेउकाय, वायुकाय और बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव त्रस हैं। आगम में तेजस्काय और वायुकाय को भी त्रस के अन्तर्गत माना है-

"तसा तिविहा पण्णत्ता तं जहा - तेउकाइया वाउकाइया ओराला तसा पाणा"

अर्थात् - त्रस जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा तेजस्काय, वायुकाय और औदारिक त्रस प्राणी।

तत्त्वार्थ सूत्र में भी कहा है - "**तेजो वायुद्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः**" (अ० २ सूत्र १४) तेजस्काय, वायुकाय और बेइन्द्रिय आदि त्रस हैं। त्रस जीवों की उपरोक्त दोनों परिभाषाओं के अनुसार त्रस नाम कर्म के उदय वाले जीव "लब्धि त्रस" कहलाते हैं इसमें बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव आते हैं। जबकि गति करने वाले जीवों को "गति त्रस" कहा जाता है इसमें तेउकाय, वायुकाय और बेइन्द्रिय आदि सभी त्रस जीवों का समावेश हो जाता है क्योंकि तेउकाय और वायुकाय को गति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की अपेक्षा से ही त्रस गिना जाता है उनके त्रस नाम कर्म का उदय नहीं है। अतः दोनों प्रकार के कथन में विसंगति नहीं समझनी चाहिये।

२. स्थावर - 'उष्णाद्यभितापेऽपि तत्स्थानपरिहारासमर्थाः सन्तस्तिष्ठन्ती त्येवंशीलाः स्थावराः' अर्थात् - उष्णादि से तप्त होने पर भी जो उस स्थान को छोड़ने में असमर्थ हैं वहीं स्थित रहते हैं, ऐसे जीव स्थावर कहलाते हैं।

त्रस और स्थावर इन दो भेदों में सभी संसारवर्ती जीवों का समावेश हो जाता है। त्रस जीवों की अपेक्षा स्थावर जीवों में वक्तव्यता अल्प होने से पहले स्थावर जीवों का प्रतिपादन करने के लिये सूत्रकार कहते हैं -

स्थावर के भेद

से किं तं थावरा?

थावरा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - १ पुढविकाइया २ आउकाइया ३ वणस्सइकाइया॥ १०॥

भावार्थ - स्थावर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

स्थावर तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. पृथ्वीकायिक २. अप्कायिक और ३. वनस्पतिकायिक।

विवेचन - यहां स्थावर जीवों के तीन भेद बताये गये हैं - १. पृथ्वीकायिक २. अप्कायिक और ३. वनस्पतिकायिक।

१. पृथ्वीकायिक - पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है वे पृथ्वीकायिक जीव हैं।

२. अप्कायिक - जल ही जिन जीवों का शरीर है वे अप्कायिक जीव हैं।

३. वनस्पतिकायिक - वनस्पति ही जिनका शरीर है वे वनस्पतिकायिक जीव हैं।

समस्त भूतों का आधार पृथ्वी है इसलिये सबसे पहले पृथ्वीकायिकों का ग्रहण किया गया है। इसके बाद पृथ्वी प्रतिष्ठित अप्कायिकों का और **'जत्थ जलं तत्थ वणं'** - जहाँ जल होता है वहां वन होता है इस सैद्धांतिक कथन के प्रतिपादन के निमित्त वनस्पतिकायिकों का वर्णन किया गया है।

यद्यपि तेजस्कायिक और वायुकायिक भी लब्धि की अपेक्षा स्थावर हैं किन्तु उन्हें गति त्रस माना गया है अतः उनकी यहां विवक्षा नहीं की गयी है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी स्थावर के तीन ही भेद कहे हैं - **"पृथिव्यम्बुवनस्पतयेः स्थावराः"** (तत्त्वार्थ सूत्र अ० २ सूत्र १३) - पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय स्थावर हैं।

से किं तं पुढविकाइया?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सुहुमपुढविकाइया य बायरपुढविकाइया य।। ११ ॥

भावार्थ - पृथ्वीकायिक क्या है?

पृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और २. बादर पृथ्वीकायिक।

विवेचन - पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जीव सूक्ष्म और बादर नामकर्म के उदय से जीव बादर कहलाता है। जीवों में सूक्ष्मता और बादरता कर्मोदयजनित है। बेर और आंवले की तरह सूक्ष्मता और बादरता यहां अपेक्षित नहीं है। सूक्ष्म नाम कर्म के उदय वाले जो पृथ्वीकायिक हैं वे सूक्ष्मपृथ्वीकायिक कहलाते हैं और बादर नामकर्म के उदय वाले जो पृथ्वीकायिक हैं वे बादर पृथ्वीकायिक हैं। सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव सारे लोक में व्याप्त हैं जबकि बादर पृथ्वीकायिक जीव लोक के एकदेशवर्ती होते हैं।

से किं तं सुहुम पुढविकाइया?

सुहुम पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।। १२ ॥

(संगहणीगाहा -सरीरोगाहणसंघयणसंठाण कसाय तह य हुंति सण्णाओ
लेसिंदियसमुग्घाओ, सण्णी वेए य पज्जत्ति ॥ १ ॥
दिट्ठी दंसणणाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।
उववायठिई समुग्घाय चवणगइरागई चेव ॥ २ ॥)

भावार्थ - सूक्ष्म पृथ्वीकायिक क्या है?

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

संग्रहणी गाथाओं का अर्थ - १. शरीर २. अवगाहना ३. संहनन ४. संस्थान ५. कषाय ६. संज्ञा ७. लेश्या ८. इन्द्रिय ९. समुद्घात १०. संज्ञी ११. वेद १२. पर्याप्ति १३. दृष्टि १४. दर्शन १५. ज्ञान १६. योग १७. उपयोग १८. आहार १९. उपपात २०. स्थिति २१. समुद्घात-समवहत असमवहत मरण २२. च्यवन और २३. गति आगति। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों का इन २३ द्वारों से निरूपण किया जायेगा।

विवेचन - सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं - १. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक। स्वयोग्य पर्याप्तियों को जो पूर्ण करे वह पर्याप्तक जीव हैं और जो स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण न करे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह अपर्याप्तक जीव है। आहारादि के पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें शरीर आदि रूप परिणत करने की आत्मा की शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्तियाँ छह प्रकार की होती है। यथा -

१. आहार पर्याप्ति - जिस शक्ति से जीव आहार को ग्रहण कर उसे रस और खल भाग में परिणत करता है, उसे आहार पर्याप्ति कहते हैं।

२. शरीर पर्याप्ति - जिस शक्ति से जीव रस रूप परिणत आहार को रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य रूप सात धातुओं में परिणत करता है उसे शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

३. इन्द्रिय पर्याप्ति - जिस शक्ति से जीव इन्द्रिय योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें इन्द्रिय रूप में परिणत करता है उसे इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति - जिस शक्ति से जीव श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके श्वास और उच्छ्वास रूप में परिणत करता है उसे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

५. भाषा पर्याप्ति - जिस शक्ति से जीव भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा रूप में परिणत करता है वह भाषा पर्याप्ति है।

६. मनः पर्याप्ति - जिस शक्ति के द्वारा जीव मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें मन रूप में परिणत करता है उसे मनः पर्याप्ति कहते हैं।

इन छहों पर्याप्तियों का आरंभ एक साथ होता है किंतु उनकी पूर्णता अलग अलग समय में होती है। सबसे पहले आहार पर्याप्ति एक समय में पूर्ण होती है। इस बात को समझाने के लिये प्रज्ञापना सूत्र के आहार पद के द्वितीय उद्देशक में इस प्रकार कहा गया है -

प्रश्न - आहारपज्जत्तीए अपज्जत्तए णं भंते! किं आहारए अणाहारए?

उत्तर - गोयमा! णो आहारए अणाहारए।

अर्थात् - हे भगवन्! आहार पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव आहारक है या अनाहारक? हे गौतम! आहारक नहीं अनाहारक है।

आहार पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव विग्रह गति में ही होता है, उपपात क्षेत्र में आया हुआ नहीं। उपपात क्षेत्र में आया हुआ जीव प्रथम समय में ही आहारक होता है। इससे आहारक पर्याप्ति का काल एक समय का सिद्ध होता है। यदि उपपात क्षेत्र में आने के बाद भी आहारपर्याप्ति से अपर्याप्त होता तो प्रज्ञापना सूत्र में **'सिय आहारए सिय अणाहारए'** - कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक ऐसा उत्तर दिया गया होता। जैसा कि शरीर आदि पर्याप्तियों में दिया गया है। आहार पर्याप्ति के अलावा शरीर आदि पर्याप्तियां अलग अलग एक एक अन्तर्मुहूर्त्त में पूरी होती है। सभी पर्याप्तियों का समाप्तिकाल भी अंतर्मुहूर्त्त ही होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त्त अनेक प्रकार का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिय जीवों में चार पर्याप्तियां होती है - आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में पांच पर्याप्तियाँ (उपरोक्त चार और पांचवीं भाषा पर्याप्ति) होती है और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में छहों पर्याप्तियां होती है। जिस जीव में जितनी पर्याप्तियां संभव है वह जीव जब उतनी पर्याप्तियां पूरी कर लेता है तब वह पर्याप्तक कहलाता है। एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य चार पर्याप्तियां बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय पांच पर्याप्तियां और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव छहों पर्याप्तियाँ पूरी करने पर पर्याप्तक कहे जाते हैं।

जो जीव जब तक स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूरी नहीं बांध लेता है तब तक वह अपर्याप्तक कहा जाता है। जीव तीन पर्याप्तियाँ (आहार, शरीर, इन्द्रिय) पूर्ण करके चौथी के अधूरे रहने पर मरते हैं, पहले नहीं क्योंकि जीव आगामी भव की आयु बाँध कर ही मृत्यु प्राप्त करते हैं और आयु का बन्ध उन्हीं जीवों को होता है जिन्होंने आहार, शरीर और इन्द्रिय ये तीन पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली हैं।

यहाँ पर्याप्तक का आशय लब्धि पर्याप्तक (पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले) और अपर्याप्तक का आशय लब्धि अपर्याप्तक (अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले) अर्थात् - अपर्याप्त अवस्था में काल करने वाले समझना चाहिये।

इस प्रकार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याप्तक, अपर्याप्तक दो भेद हुए। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में शेष वक्तव्यता कहने के लिए दो संग्रहणी गाथाएं दी गई है जिनमें २३ द्वारों के नाम दिये हैं। आगे के सूत्रों में क्रमशः शरीर आदि द्वारों का कथन किया जाता है -

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के २३ द्वारों का निरूपण

१. शरीरद्वार

तेसिं णं भंते! जीवाणं कइ सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता, तं जहा - ओरालिए, तेयए, कम्मए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन (सूक्ष्म पृथ्वीकायिक) जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं। यथा - १. औदारिक २. तैजस और ३. कार्मण।

विवेचन - जो प्रतिक्षण जीर्ण शीर्ण होता रहता है उसे शरीर कहते हैं। शरीर पांच प्रकार का कहा गया है - १. औदारिक २. वैक्रिय ३. आहारक ४. तैजस और ५. कार्मण।

१. औदारिक शरीर - उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलों से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। तीर्थंकर भगवान् का शरीर सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रधान पुद्गलों से बनता है और सर्वसाधारण का शरीर स्थूल असार पुद्गलों से बना हुआ होता है। अथवा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदार अर्थात् दूसरे शरीरों की अपेक्षा विशाल अर्थात् बड़े परिमाण वाला होने से यह औदारिक शरीर कहा जाता है। वनस्पतिकाय की अपेक्षा औदारिक शरीर की अवस्थित अवगाहना एक हजार योजन झाझेरी (कुछ अधिक) है। अन्य सभी शरीरों की अवस्थित अवगाहना इससे कम हैं। अथवा - अन्य शरीरों की अपेक्षा अल्प प्रदेश परिमाण में बड़ा होने से यह शरीर औदारिक शरीर कहलाता है। अथवा -

हाड़ मांस लोही आदि से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथ्वीकाय आदि का शरीर औदारिक है।

२. वैक्रिय शरीर - जिस शरीर से विविध अर्थात् नाना रूप और आकार बनाने की क्रियाएं अथवा विशिष्ट क्रियाएं होती है वह वैक्रिय शरीर कहलाता है। जैसे - एक रूप होकर अनेक रूप धारण करना, अनेक रूप होकर एक रूप धारण करना, छोटे शरीर से बड़ा शरीर बनाना और बड़े शरीर से छोटा शरीर बनाना, पृथ्वी और आकाश में चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य अदृश्य रूप बनाना आदि। यह शरीर हाड़, मांस, रक्त, मज्जा आदि सात धातुओं से रहित होता है।

वैक्रिय शरीर दो प्रकार का है - १. औपपातिक वैक्रिय शरीर और २. लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर। जो वैक्रिय शरीर जन्म से ही मिलता है वह औपपातिक वैक्रिय शरीर है। सभी देवता और नारकी जीव जन्म से ही वैक्रिय शरीरधारी होते हैं। जो वैक्रिय शरीर तप आदि द्वारा प्राप्त लब्धि विशेष से मिलता है वह लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर है। तिर्यंच और मनुष्य में लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है।

३. आहारक शरीर - प्राणी दया के लिए, दूसरे द्वीप में रहे हुए तीर्थंकर भगवान् की ऋद्धि ऐश्वर्य देखने के लिये अथवा अपना संशय निवारणार्थ उनसे प्रश्न पूछने के लिये तथा नया ज्ञान प्राप्त करने के लिये चौदह पूर्वधारी मुनिराज अपनी लब्धि से अतिविशुद्ध स्फटिक के सदृश एक हाथ का पुतला (चर्मचक्षु से अदृश) अपने शरीर में से निकालते हैं, उस पुतले को तीर्थंकर भगवान् या केवली भगवान् के पास भेजते हैं। वह तीर्थंकर भगवान् के पास जा कर अपना कार्य करके फिर वह एक हाथ का पुतला जाकर उन मुनिराज के शरीर में प्रवेश करता है उसको आहारक शरीर कहते हैं। वे मुनिराज यदि उस लब्धि फोड़ने की आलोचना कर लेवे तो आराधक होते हैं, यदि आलोचना न करें तो विराधक होते हैं।

४. तैजस शरीर - तैजस वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ, कार्मण शरीर का सहवर्ती, आत्मव्यापी, शरीर की उष्मा से पहचाना जाने वाला, खाये हुए आहार को परिणमाने वाला तथा तेजो लब्धि के द्वारा गृहीत पुद्गलों को तैजस शरीर कहा जाता है।

५. कार्मण शरीर - कर्मों से बना हुआ शरीर कार्मण कहलाता है अथवा जीव के प्रदेशों के साथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को कार्मण शरीर कहते हैं। जिस तरह बाग का माली प्रत्येक क्यारी में पानी पहुँचाता है, उसी तरह जो प्रत्येक शरीर के अवयव में रसादिकों का परिणमन करता है तथा कर्मों का रस परिणमन कराता है उसको कार्मण शरीर कहते हैं। यह शरीर ही सब शरीरों का बीज (मूल कारण) है।

तैजसशरीर और कार्मण शरीर ये दोनों शरीर अनादिकाल से जीव के साथ लगे हुए हैं। मोक्ष प्राप्त किये बिना ये जीव से अलग नहीं होते। जब जीव मरण स्थान को छोड़ कर उत्पत्ति स्थान को जाता है तब भी ये दोनों शरीर जीव के साथ रहते हैं।

इन पांच शरीरों में से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के तीन शरीर होते हैं - १. औदारिक २. तैजस और ३. कार्मण।

२. अवगाहना द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलासंखेज्जइभागं उक्कोसेणवि अंगुलासंखेज्जइ भागं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों की शरीरावगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट से भी अंगुल का असंख्यातवां भाग होती है।

विवेचन - जीव का शरीर, जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहे (रोके) उसे अवगाहना कहते हैं। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल का असंख्यातवां भाग होती है किंतु जघन्य से उत्कृष्ट अवगाहना अधिक समझनी चाहिये।

३. संहनन द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरा किं संघयणा पण्णत्ता?

गोयमा! छेवट्ठ संघयणा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के शरीर किस संहनन वाले कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के शरीर सेवार्त्त संहनन वाले कहे गये हैं।

विवेचन - हड्डियों की रचना विशेष को 'संहनन' कहते हैं। इसके छह भेद इस प्रकार हैं -

१. वज्रऋषभ-नाराच संहनन - वज्र का अर्थ कील है, ऋषभ का अर्थ वेष्टन-पट्ट (पट्टा) है और नाराच का अर्थ दोनों ओर से मर्कट-बंध है। जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो और जिसमें इन तीनों हड्डियों को भेदने वाली हड्डी की वज्र नामक कील हो, उसे 'वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन' कहते हैं।

२. ऋषभ-नाराच संहनन - जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो, परन्तु तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील नहीं हो, उसे 'ऋषभ-नाराच संहनन' कहते हैं।

३. नाराच संहनन - जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई हड्डियां हों, परन्तु इनके चारों ओर वेष्टन-पट्ट और वज्र नामक कील नहीं हो उसे 'नाराच संहनन' कहते हैं।

४. अर्ध नाराच संहनन - जिस संहनन में एक ओर मर्कट बन्ध हो, उसे 'अर्ध नाराच संहनन' कहते हैं।

५. कीलिका संहनन - जिस संहनन में हड्डियां केवल कील से जुड़ी हुई हो, उसे 'कीलिका-संहनन' कहते हैं।

६. सेवार्त्तक संहनन - जिस संहनन में हड्डियां पर्यन्त भाग में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती है तथा सदा चिकनाई के प्रयोग एवं तैलादि की मालिश की अपेक्षा रखती है, उसे 'सेवार्त्तक संहनन' कहते हैं।

इन छह संहननों में से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में अंतिम सेवार्त्तक (सेवार्त्त) संहनन पाता है।

४. संस्थान द्वार

तेसि णं भंते! सरीरा किं संठिया पण्णत्ता?

गोयमा! मसूरचंद संठिया पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के शरीर का संस्थान चन्द्राकार-मसूर की दाल के समान कहा गया है।

विवेचन - नामकर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति को 'संस्थान' कहते हैं। संस्थान के छह भेद इस प्रकार हैं -

१. समचतुरस्र (समचोरस) - ऊपर, नीचे तथा बीच में समभाग से शरीर की सुन्दराकार आकृति को समचतुरस्र (समचोरस) संस्थान कहते हैं।

२. न्यग्रोध परिमण्डल - वट वृक्ष के समान शरीर की आकृति हो अर्थात् जिसमें नाभि से ऊपर का भाग प्रशस्त विस्तृत लक्षण युक्त पूर्ण एवं शास्त्रानुसार प्रमाण वाला हो और नाभि के नीचे का भाग हीन हो, उसे 'न्यग्रोध परिमंडल संस्थान' कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. सादि - उपरोक्त लक्षण से बिल्कुल विपरीत हो जैसे सांप की बांबी अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो उसे 'सादि संस्थान' कहते हैं।

४. वामन - बौना शरीर हो अर्थात् जिस शरीर में हाथ, पांव आदि अवयव हीन हों और छाती, पेट आदि पूर्ण हों, उसे 'वामन संस्थान' कहते हैं।

५. कुब्जक (कुबड़ा) - जिस शरीर के हाथ, पांव, मुख और ग्रीवादिक उत्तम हों और हृदय, पेट, पीठ अधम (हीन) हों, उसे 'कुब्जक संस्थान' कहते हैं।

६. हुण्डक - जिस शरीर में सभी अंगोपांग किसी खास आकृति के न हों (खराब हों) उसे 'हुण्डक संस्थान' कहते हैं।

उपरोक्त छह संस्थानों में से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के छठा हुण्डक संस्थान होता है। मूल पाठ और भावार्थ में उनका संस्थान मसूर की दाल जैसा चन्द्राकार कहा है। चन्द्राकार मसूर की दाल जैसा संस्थान हुण्डक ही है। अन्य पांच संस्थानों में यह आकार नहीं होता। अतः हुण्डक संस्थान में ही इसका समावेश होता है। इसलिये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के मसूर की दाल जैसी आकृति वाला हुंडक संस्थान समझना चाहिये।

विद्यमान आगमों में सर्वत्र पृथ्वीकायिक आदि ५ स्थावरों के संस्थान हुण्डक नहीं बताकर मसूर की दाल आदि निश्चित प्रकार का बताया गया है। यद्यपि उन सभी आकारों का हुण्डक संस्थान में समावेश हो जाता है फिर भी एक-एक काय के अपने अपने सभी भेदों में निश्चित प्रकार के आकार ही होने से आगमकारों ने इन निश्चित नामों वाले आकारों को ही संस्थान में बताया है। अतः आगम पाठों के अनुसार ५ स्थावरों में आगम वर्णित नाम वाले संस्थानों को बोलना ही उचित रहता है।

५. कषाय द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ कसाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा - कोह कसाए माणकसाए माया कसाए लोह कसाए॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों में कितने कषाय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों में चार कषाय कहे गये हैं। यथा - क्रोध कषाय, मान कषाय, माया कषाय, लोभ कषाय।

विवेचन - क्रोधादि रूप आत्मा के विभाव परिणामों को 'कषाय' कहते हैं। इसके चार भेद हैं - १. क्रोध २. मान ३. माया और ४. लोभ।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में चारों कषाय पाये जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. संज्ञा द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सण्णाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - आहारसण्णा जाव परिग्गहसण्णा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों में कितनी संज्ञाएँ कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों में चार संज्ञाएं कही गई है। यथा- आहार संज्ञा यावत् परिग्रह संज्ञा।

विवेचन - आहार आदि की अभिलाषा करना 'संज्ञा' है। इसके चार भेद हैं - १. आहार संज्ञा २. भय संज्ञा ३. मैथुन संज्ञा और ४. परिग्रह संज्ञा।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में ये चारों संज्ञाएं पाई जाती हैं।

७. लेश्या द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ लेसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तिण्णि लेसाओ पण्णत्ताओ तं जहा - किण्हलेस्सा, णीललेस्सा, काउलेस्सा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों में तीन लेश्याएं कही गयी है। वे इस प्रकार हैं - १. कृष्ण लेश्या २. नील लेश्या और ३. कापोत लेश्या।

विवेचन - योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं। इसके छह भेद हैं - १. कृष्ण लेश्या २. नील लेश्या ३. कापोत लेश्या ४. तेजो लेश्या ५. पद्म लेश्या और ६. शुक्ल लेश्या। प्रारम्भ की तीन लेश्याएं अशुभ होती है और पिछली तीन लेश्याएं शुभ कही गई है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में तीन अशुभ लेश्याएं ही पायी जाती हैं।

८. इन्द्रिय द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ इंदियाइं पण्णत्ताइं?

गोयमा! एगे फासिंदिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों में कितनी इन्द्रियां कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों में एक स्पर्शनेन्द्रिय कही गई है।

विवेचन - **'इन्द्रनाद् इन्द्रः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार संपूर्ण ज्ञान रूप परम ऐश्वर्य का अधिपति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होने से आत्मा इन्द्र है। अतः इन्द्र के चिह्न को 'इन्द्रिय' कहते हैं। जीव को क्षायोपशमिक भावों के द्वारा उपकरण विशेष के माध्यम से जो शब्दादि का ज्ञान होता है, इस क्षयोपशम विशेष को 'भावेन्द्रिय' एवं नामकर्म के उदय से बने हुए उपकरण एवं बाह्य आभ्यन्तर आकारों को 'द्रव्येन्द्रिय' कहते हैं। इसके पांच भेद हैं - १. श्रोत्र-इन्द्रिय (कान) २. चक्षु-इन्द्रिय (आंख) ३. घ्राण-इन्द्रिय (नाक) ४. रसना-इन्द्रिय (जीभ) और ५. स्पर्शन-इन्द्रिय (संपूर्ण शरीर व्यापी त्वचा)। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है।

९. समुद्घात द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा - वेयणा समुग्घाए कसाय समुग्घाए मारणंतिय समुग्घाए॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों में कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों में तीन समुद्घात कहे गये हैं। यथा - वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात और मारणांतिक समुद्घात।

विवेचन - वेदना आदि के साथ तन्मय हो कर मूल शरीर को बिना छोड़े प्रबलता से आत्म-प्रदेशों को शरीर अवगाहना से बाहर निकाल कर असाता वेदनीय आदि कर्मों का नाश करना समुद्घात कहलाता है। इसके सात भेद हैं - १. वेदनीय २. कषाय ३. मारणांतिक ४. वैक्रिय ५. तैजस् ६. आहारक और ७. केवली।

१. वेदनीय समुद्घात - असाता वेदनीय कर्म के कारण आत्म-प्रदेशों में स्पन्दन हो कर कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीर की अवगाहना से बाहर आ जाना वेदनीय समुद्घात है। इसके द्वारा उदय प्राप्त असाता वेदनीय कर्म का नाश होता है। साता वेदनीय कर्म की समुद्घात नहीं होती है।

२. कषाय समुद्घात - तीव्र क्रोधादि कषायों के कारण आत्म-प्रदेशों में स्पन्दन होकर कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीर की अवगाहना से बाहर आ जाना, कषाय समुद्घात कहलाता है। इसके द्वारा उदय प्राप्त कषाय मोहनीय का नाश होता है। चारों कषायों की समुद्घात होती है।

३. मारणांतिक समुद्घात - मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त्त पूर्व उत्पत्ति के स्थान तक लम्बा (शरीर प्रमाण चौड़ा एवं जाडाई वाला) आत्म-प्रदेशों का दंड निकालना, मारणांतिक समुद्घात कहलाता है। इस समुद्घात में आयुष्य कर्म के प्रभूत प्रदेशों की निर्जरा होती है।

४. वैक्रिय समुद्घात - वैक्रिय रूपों का निर्माण करने हेतु वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए आत्म-प्रदेशों का एक दिशा अथवा विदिशा में संख्यात योजन तक का दण्ड निकालना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(जाड़ाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण-दण्ड होता है) वैक्रिय समुद्घात कहलाता है। इसमें वैक्रिय नाम कर्म की क्षपणा होती है।

५. तैजस्-समुद्घात - शीतल अथवा उष्ण तेजोलेश्या किसी पर डालने हेतु तैजस् पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए संख्यात योजन तक का एक दिशा अथवा विदिशा में आत्मप्रदेशों का दण्ड निकालना (यह भी जाड़ाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण ही होता है) तैजस् समुद्घात कहलाता है। इसमें तैजस् नाम कर्म की क्षपणा होती है।

६. आहारक समुद्घात - जीवदया, ऋद्धि दर्शन, ज्ञान ग्रहण या संशय निवारण हेतु चौदह पूर्वधारी मुनि द्वारा आहारक पुतला बनाने हेतु आहारक वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए संख्यात योजन का आत्म-प्रदेशों का दण्ड निकालना (जाड़ाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण दण्ड होता है) आहारक समुद्घात कहलाता है। इसमें आहारक शरीर नाम कर्म की क्षपणा होती है।

७. केवली समुद्घात - वेदनीय आदि कर्मों को खपाने के लिए चार समयों में आत्म-प्रदेशों को समग्र लोक में फैला देना एवं चार समयों में पुनः संकोचित करके शरीरस्थ हो जाना, केवली समुद्घात कहलाता है। इसमें आयु से अधिक स्थिति वाले वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मों की क्षपणा होती है। जिन महापुरुषों की आयु ६ माह अथवा उससे कम शेष रहने पर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है उनमें से जिनकी आयु कम व वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति अधिक होती है उनकी स्थिति सम करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं। केवली समुद्घात के अंतर्मुहूर्त्त बाद अवश्य मोक्ष हो जाता है।

इन सात समुद्घातों में से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में तीन समुद्घात पाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं - १. वेदनीय समुद्घात २. कषाय समुद्घात और ३. मारणांतिक समुद्घात।

१०. संज्ञी द्वार

ते णं भंते! जीवा किं सण्णी असण्णी?

गोयमा! णो सण्णी, असण्णी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव संज्ञी हैं या असंज्ञी हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव संज्ञी नहीं, असंज्ञी हैं।

विवेचन - जिसके मन हो, उसे संज्ञी और जिसके मन नहीं हो, उसे असंज्ञी कहते हैं। आहार आदि चार पर्याप्तियों एवं आहार आदि पांच पर्याप्तियों को बांधने वाले (बांधने के प्रारम्भ से लेकर भव पर्यन्त तक) जीव असंज्ञी कहलाते हैं। छहों पर्याप्तियाँ बांधने वाले (बांधने के प्रारम्भ से लेकर भव पर्यन्त तक या केवलज्ञान होने के पूर्व तक) जीव संज्ञी कहलाते हैं। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव असंज्ञी ही होते हैं, संज्ञी नहीं क्योंकि वे मन रहित होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११. वेद द्वार

ते णं भंते! जीवा किं इत्थिवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया?

गोयमा! णो इत्थिवेया णो पुरिसवेया, णपुंसगवेया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या स्त्रीवेद वाले हैं, पुरुष वेद वाले हैं या नपुंसक वेद वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव स्त्रीवेद वाले नहीं है, पुरुष वेद वाले नहीं है किन्तु नपुंसक वेद वाले हैं।

विवेचन - नाम कर्म के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष और नपुंसक रूप चिह्न को 'द्रव्य वेद' कहते हैं और मोहनीय कर्म के उदय से जीव की विषय भोग की अभिलाषा को 'भाव वेद' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं - १. स्त्री वेद २. पुरुष वेद और ३. नपुंसक वेद।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव नपुंसक वेद वाले हैं। इनका सम्मूर्च्छिम जन्म होता है और सम्मूर्च्छिम नपुंसकवेदी ही होते हैं।

१२. पर्याप्ति द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चत्तारि पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-आहार पज्जत्ती सरीर पज्जत्ती इंदिय पज्जत्ती आणपाणु पज्जत्ती।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चत्तारि अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-आहार अपज्जत्ती जाव आणपाणु अपज्जत्ती॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के चार पर्याप्तियाँ कही गई है। वे इस प्रकार हैं - १. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३. इन्द्रिय पर्याप्ति और ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति।

प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों में कितनी अपर्याप्तियाँ कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के चार अपर्याप्तियाँ कही गई हैं। यथा - आहार अपर्याप्ति यावत् श्वासोच्छ्वास अपर्याप्ति।

विवेचन - आहार आदि के पुद्गलों को ग्रहण करने तथा उन्हें आहार शरीर आदि रूप परिणमाने की आत्मा की शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते हैं। इसके छह भेद हैं - १. आहार पर्याप्ति २. शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्ति ३. इन्द्रिय पर्याप्ति ४. श्वासोच्छ्‌वास पर्याप्ति ५. भाषा पर्याप्ति और ६. मनःपर्याप्ति। छहों पर्याप्तियों का विशद वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्‌वास ये चार पर्याप्तियाँ और ये चार ही अपर्याप्तियाँ पाई जाती है।

१३. दृष्टि द्वार

ते णं भंते! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी?

गोयमा! णो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, णो सम्मामिच्छादिट्ठी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (मिश्र दृष्टि) हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव सम्यग् दृष्टि नहीं हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (मिश्र दृष्टि) भी नहीं है।

विवेचन - तत्त्व विचारणा की रुचि को 'दृष्टि' कहते हैं। दर्शन मोह के उदय, क्षयोपशम, क्षय आदि के द्वारा "अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि" अर्थात् अयथार्थ दर्शन, मिश्र दर्शन एवं क्षयोपशम आदि जन्य यथार्थ दर्शन को दृष्टि कहते हैं। इसके तीन भेद हैं - १. सम्यग्-दृष्टि २. मिथ्या-दृष्टि और ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र दृष्टि)।

१. सम्यग्दृष्टि - जिसको दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने पर जीवादि तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे 'सम्यग्दृष्टि' कहते हैं।

२. मिथ्यादृष्टि - जिस जीव को दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से जीवादि तत्त्वों की विपरीत श्रद्धा होती है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) - मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से कुछ सम्यक् और कुछ मिथ्यात्व रूप मिश्रित परिणाम होता है, उसे सम्यग् मिथ्यादृष्टि (मिश्र दृष्टि) कहते हैं। शक्कर मिले हुए दही के खाने से जैसे खटमीठा मिश्र रूप स्वाद आता है वैसे ही सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों से मिला हुआ परिणाम होता है, उसे 'सम्यग् मिथ्यादृष्टि' कहते हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में इन तीन दृष्टियों में से केवल एक मिथ्यादृष्टि ही पाई जाती है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव सम्यग्दृष्टि भी नहीं होते हैं और मिश्रदृष्टि भी नहीं होते हैं।

१४. दर्शन द्वार

ते णं भंते! जीवा किं चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी?

गोयमा! णो चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, णो ओहिदंसणी णो केवलदंसणी॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या चक्षुदर्शनी हैं, अचक्षुदर्शनी हैं, अवधिदर्शनी हैं या केवलदर्शनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव चक्षुदर्शनी नहीं हैं, अचक्षुदर्शनी हैं, अवधिदर्शनी नहीं हैं, केवलदर्शनी नहीं है।

विवेचन - जिसमें महासत्ता का सामान्य प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसे 'दर्शन' कहते हैं। दर्शन के चार भेद हैं -

१. चक्षुदर्शन - नेत्र जन्य मतिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को 'चक्षुदर्शन' कहते हैं।

२. अचक्षुदर्शन - नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियों और मन संबंधी मतिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अचक्षुदर्शन' कहते हैं।

३. अवधिदर्शन - अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अवधिदर्शन' कहते हैं।

४. केवलदर्शन - केवलज्ञान के उपयोग के बाद होने वाले सामान्य धर्म के अवलोकन (उपयोग) को केवलदर्शन कहते हैं। छद्मस्थों में पहले दर्शन का उपयोग होता है बाद में ज्ञान का उपयोग होता है जबकि केवली में पहले ज्ञान का उपयोग होता है फिर दर्शन का उपयोग होता है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में इन चार दर्शनों में केवल एक अचक्षु दर्शन ही पाया जाता है। शेष तीन दर्शन नहीं पाये जाते हैं।

१५. ज्ञान द्वार

ते णं भंते! जीवा किं णाणी अण्णाणी?

गोयमा! णो णाणी अण्णाणी, णियमा दुअण्णाणी, तंजहा-मइ अण्णाणी य सुयअण्णाणी य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी?

उत्तर - हे गौतम! वे ज्ञानी नहीं होते हैं अज्ञानी होते हैं। नियम से दो अज्ञान वाले होते हैं। यथा - मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी।

विवेचन - किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाला 'ज्ञान' कहलाता है। इसके दो भेद हैं - सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान। सम्यग्ज्ञान के पांच भेद हैं - १. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मनःपर्यवज्ञान और ५. केवलज्ञान।

१. मतिज्ञान - इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान होता है उसे 'मतिज्ञान' कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. श्रुतज्ञान - मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ से सम्बन्धित किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को 'श्रुतज्ञान' कहते हैं। जैसे 'घट' शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कंबुग्रीवादि रूप का ज्ञान।

३. अवधिज्ञान - मन व इन्द्रियों की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिए हुए जो रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने।

४. मनःपर्यवज्ञान - मन व इन्द्रियों की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो साधु संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मन में रहे हुए रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाने।

५. केवलज्ञान - जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् स्पष्ट जाने।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद हैं - १. मति अज्ञान २. श्रुत अज्ञान ३. विभंग ज्ञान। ये तीन अज्ञान हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं अतः उनमें ज्ञान नहीं पाया जाता है। उनमें नियम पूर्वक दो अज्ञान-मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान पाते हैं।

१६. योग द्वार

ते णं भंते! जीवा किं मणजोगी वयजोगी कायजोगी?

गोयमा! णो मणजोगी णो वयजोगी कायजोगी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या मनयोगी होते हैं, वचन योगी होते हैं या काय योगी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे मनयोगी नहीं होते, वचन योगी नहीं होते किन्तु काययोगी होते हैं।

विवेचन - मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को 'योग' कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं - ४ मन के, ४ वचन के और ७ काया के। मन के चार भेद इस प्रकार हैं - १. सत्य मनोयोग २. असत्य मनोयोग ३. मिश्र मनोयोग और ४. व्यवहार मनोयोग।

वचन के चार भेद इस प्रकार हैं - १. सत्य वचन योग २. असत्य वचन योग ३. मिश्र वचन योग और ४. व्यवहार वचन योग।

काया के सात भेद इस प्रकार हैं - १. औदारिक शरीर काय योग २. औदारिक मिश्र शरीर काय योग ३. वैक्रिय शरीर काय योग ४. वैक्रिय मिश्र शरीर काय योग ५. आहारक शरीर काय योग ६. आहारक मिश्र शरीर काय योग ७. कार्मण शरीर काययोग।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के मन योग और वचन योग नहीं होता, उनके केवल काय योग ही होता है। काय योग के सात भेदों में से उनके तीन योग पाते हैं - १. औदारिक शरीर काय योग २. औदारिक मिश्र शरीर काय योग और ३. कार्मण शरीर काय योग।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१७. उपयोग द्वार

ते णं भंते! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता?

गोयमा! सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या साकारोपयोग वाले होते हैं या अनाकारोपयोग वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव साकारोपयोग वाले भी हैं और अनाकारोपयोग वाले भी हैं।

विवेचन - ज्ञान और दर्शन में होती हुई आत्म-प्रवृत्ति को 'उपयोग' कहते हैं। संक्षेप में उपयोग के दो भेद हैं - १. साकारोपयोग और २. अनाकारोपयोग। विस्तार से उपयोग के बारह भेद इस प्रकार हैं - ५ ज्ञानोपयोग, ३ अज्ञानोपयोग और ४ दर्शनोपयोग। पांच ज्ञान और तीन अज्ञान रूप आठ प्रकार का उपयोग साकार उपयोग है और चार दर्शन रूप उपयोग अनाकार उपयोग है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव मति-अज्ञानी और श्रुतअज्ञानी होने के कारण साकारोपयोग वाले भी हैं और अचक्षुदर्शन उपयोग की अपेक्षा अनाकार उपयोग वाले भी हैं।

१८. आहार द्वार

ते णं भंते! जीवा किमाहारमाहारेंति?

गोयमा! दव्वओ अणंतपएसियाइं खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं कालओ अण्णयरसमयट्ठिइयाइं भावओ वण्णमंताइं गंधमंताइं रसमंताइं फासमंताइं॥

कठिन शब्दार्थ - **अणंतपएसियाइं** - अनंत प्रदेशी पुद्गलों को, **असंखेज्जपएसोगाढाइं** - असंख्य प्रदेशावगाढ पुद्गलों का, **अण्णयरसमयट्ठिइयाइं** - अन्यतर (किसी भी) समय की स्थिति वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव किसका आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव द्रव्य से अनन्त प्रदेशी पुद्गलों का आहार करते हैं, क्षेत्र से असंख्य प्रदेशावगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं काल से किसी भी समय की स्थिति वाले (एक समय, दो समयों, यावत् दस समयों, संख्यात समयों, असंख्यात समयों की स्थिति वाले) पुद्गलों का आहार करते हैं भाव से वर्ण वाले, गंध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं।

जाइं भावओ वण्णमंताइं आहारेंति ताइं किं एगवण्णाइं आहारेंति दुवण्णाइं आहारेंति तिवण्णाइं आहारेंति चउवण्णाइं आहारेंति पंचवण्णाइं आहारेंति?

गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइं पि दुवण्णाइं पि तिवण्णाइं पि चउवण्णाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पि पंचवण्णाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कालाइंपि आहारेंति जाव सुक्किलाइं पि आहारेंति।

जाइं वण्णओ कालाइं आहारेंति ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव अणंतगुणकालाइं आहारेंति?

गोयमा! एगगुणकालाइं पि आहारेंति जाव अणंतगुणकालाइं पि आहारेंति जाव सुक्किलाइं॥

कठिन शब्दार्थ - ठाणमग्गणं - स्थान मार्गणा, **पडुच्च** - अपेक्षा, **विहाणमग्गणं** - विधान (भेद) मार्गणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाव से जिन वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं वे क्या एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले, तीन वर्ण वाले, चार वर्ण वाले अथवा पांच वर्ण वाले होते हैं।

उत्तर - हे गौतम! स्थान मार्गणा की अपेक्षा एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले, तीन वर्ण वाले, चार वर्ण वाले और पांच वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं। भेद मार्गणा की अपेक्षा काले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् शुक्ल वर्ण के पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वर्ण से जिन काले पुद्गलों का आहार करते हैं वे क्या एक गुण काले हैं यावत् अनन्त गुण काले हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक गुण काले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् अनन्तगुण काले पुद्गलों का भी आहार करते हैं। इसी प्रकार यावत् शुक्ल वर्ण तक समझ लेना चाहिये।

जाइं भावओ गंधमंताइं आहारेंति ताइं किं एगगंधाइं आहारेंति दुगंधाइं आहारेंति?

गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च एगगंधाइं पि आहारेंति दुगंधाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च सुब्भि गंधाइं पि आहारेंति दुब्भि गंधाइं पि आहारेंति।

जाइं गंधओ सुब्भिगंधाइं आहारेंति ताइं किं एगगुणसुब्भि गंधाइं आहारेंति जाव अणंतगुण सुब्भिगंधाइं आहारेंति?

गोयमा! एगगुण सुब्भिगंधाइं पि आहारेंति जाव अणंतगुण सुब्भिगंधाइं पि आहारेंति, एवं दुब्भिगंधाइं पि॥ रसा जहा वण्णा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाव से जिन गंध पुद्गलों का आहार करते हैं क्या वे एक गंध वाले पुद्गलों का आहार करते हैं या दो गंध वाले पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! स्थान मार्गणा की अपेक्षा एक गंध वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो गंध वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं। भेद मार्गणा की अपेक्षा सुरभिगंध वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं और दुरभिगंध वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! जिन सुरभिगंध वाले पुद्गलों का आहार करते हैं वे क्या एक गुण सुरभिगंध वाले होते हैं या अनन्तगुण सुरभिगंध वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक गुण सुरभिगंध वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् अनन्तगुण सुरभिगंध वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं। इसी प्रकार दुरभिगंध के विषय में भी कहना चाहिये। रसों का वर्णन भी वर्ण की तरह समझ लेना चाहिये।

जाइं भावओ फासमंताइं आहारेंति ताइं किं एगफासाइं आहारेंति जाव अट्ठफासाइं आहारेंति?

गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च णो एगफासाइं आहारेंति णो दुफासाइं आहारेंति णो तिफासाइं आहारेंति चउफासाइं आहारेंति पंचफासाइं पि जाव अट्ठफासाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइं पि आहारेंति जाव लुक्खाइं पि आहारेंति।

जाइं फासओ कक्खडाइं आहारेंति ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइं आहारेंति?

गोयमा! एगगुणकक्खडाइं पि आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइं पि आहारेंति एवं जाव लुक्खा णेयव्वा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाव की अपेक्षा से वे जीव जिन स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं वे एक स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं यावत् आठ स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! स्थान मार्गणा की अपेक्षा एक स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार नहीं करते, दो स्पर्श वालों का आहार नहीं करते, तीन स्पर्श वालों का आहार नहीं करते, चार स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं, पांच स्पर्श वालों का आहार करते हैं यावत् आठ स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। भेद मार्गणा की अपेक्षा कर्कश स्पर्श वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! स्पर्श की अपेक्षा जिन कर्कश पुद्गलों का आहार करते हैं क्या वे एक गुण कर्कश का आहार करते हैं यावत् अनंतगुण कर्कश का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक गुण कर्कश का भी आहार करते हैं यावत् अनन्त गुण कर्कश का भी आहार करते हैं। इसी प्रकार यावत् रूक्ष स्पर्श तक समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव द्रव्य से अनंत प्रदेशी स्कंध का आहार करते हैं। क्षेत्र से असंख्यात प्रदेशों रहे हुए स्कंधों का आहार करते हैं। काल से किसी भी स्थिति वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। भाव से वर्ण वाले, गंध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। क्योंकि प्रत्येक परमाणु में एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श तो होते ही हैं। वर्ण से स्थान मार्गणा की अपेक्षा एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले, तीन वर्ण वाले, चार वर्ण वाले और पांच वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। भेद मार्गणा की अपेक्षा काले, नीले, लाल, पीले और श्वेत वर्ण वाले पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं। यह कथन व्यवहार नय की अपेक्षा से समझना चाहिये क्योंकि निश्चय नय की अपेक्षा से तो छोटे से छोटे अनन्त प्रदेशी स्कंध में भी पांचों वर्ण पाये जाते हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव जिन काले वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं वे एक गुण काले यावत् दस गुण काले, संख्यात गुण काले, असंख्यात गुण काले अथवा अनन्तगुण काले होते हैं। इसी प्रकार दो गंध और पांच रस के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

स्पर्श से स्थान मार्गणा की अपेक्षा से एक स्पर्श वाले, दो स्पर्श वाले, तीन स्पर्श वाले पुद्गलों को ग्रहण नहीं करते किंतु चार स्पर्श वाले पांच स्पर्श वाले यावत् आठ स्पर्श वाले पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। भेद मार्गणा की अपेक्षा कर्कश यावत् रूक्ष का आहार करते हैं। कर्कश आदि स्पर्शों में एक गुण कर्कश यावत् अनन्तगुण कर्कश पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। इसी तरह आठों स्पर्शों के विषय में समझ लेना चाहिये।

ताइं भंते! किं पुट्ठाइं आहारेंति अपुट्ठाइं आहारेंति?

गोयमा! पुट्ठाइं आहारेंति णो अपुट्ठाइं आहारेंति।

ताइं भंते! किं ओगाढाइं आहारेंति अणोगाढाइं आहारेंति?

गोयमा! ओगाढाइं आहारेंति णो अणोगाढाइं आहारेंति।

ताइं भंते! किमणंतरोगाढाइं आहारेंति परंपरोगाढाइं आहारेंति?

गोयमा! अणंतरोगाढाइं आहारेंति णो परंपरोगाढाइं आहारेंति।

ताइं भंते! किं अणूइं आहारेंति बायराइं आहारेंति?

गोयमा! अणूइं पि आहारेंति बायराइं पि आहारेंति।

ताइं भंते! किं उड्ढं आहारेंति अहे आहारेंति तिरियं आहारेंति?

गोयमा! उड्ढं पि आहारेंति अहेवि आहारेंति तिरियं पि आहारेंति।

ताइं भंते! किं आइं आहारेंति मज्झे आहारेंति पज्जवसाणे आहारेंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! आइं पि आहारेंति, मज्झे वि आहारेंति पज्जवसाणे वि आहारेंति।

ताइं भंते! किं सविसए आहारेंति अविसए आहारेंति?

गोयमा! सविसए आहारेंति णो अविसए आहारेंति।

ताइं भंते! किं आणुपुव्विं आहारेंति अणाणुपुव्विं आहारेंति?

गोयमा! आणुपुव्विं आहारेंति णो अणाणुपुव्विं आहारेंति।

ताइं भंते! किं तिदिसिं आहारेंति चउदिसिं आहारेंति पंचदिसिं आहारेंति छ दिसिं आहारेंति?

गोयमा! णिव्वाघाएणं छदिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, उस्सण्णकारणं पडुच्च वण्णओ कालाइं णीलाइं जाव सुक्किल्लाइं, गंधओ सुब्भिगंधाइं दुब्भिगंधाइं, रसओ जाव तित्तमहुराइं, फासओ कक्खडमउय जाव णिद्धलुक्खाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे जाव फासगुणे विप्परिणामइत्ता परिपालइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे गंधगुणे जाव फासगुणे उप्पाइत्ता आयसरीरओगाढे पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति॥

कठिन शब्दार्थ - **पुट्ठाइं** - स्पृष्ट, **अपुट्ठाइं** - अस्पृष्ट, **ओगाढाइं** - अवगाढ, **अणोगाढाइं** - अनवगाढ, **अणंतरोगाढाइं** - अनन्तर अवगाढ, **परंपरोगाढाइं** - परम्परावगाढ, **अणूइं** - अणु-थोडे प्रमाण वाले, **बायराइं** - बादर-अधिक प्रमाण वाले, **आइं** - आदि में स्थित, **मज्झे** - मध्य में, **पज्जवसाणे** - पर्यवसान-अंत में, **सविसए** - सविषय-अपने योग्य, **अविसए** - अविषय-अपने अयोग्य, **णिव्वाघाएणं**- निर्व्याघात, **वाघायं** - व्याघात, **ओसण्णकारणं** - ओसन्न कारण-प्रायः विशेष करके, **पोराणे** - पुराने-पहले के, **विप्परिणामइत्ता** - बदल कर, **परिपालइत्ता** - हटा कर, **परिसाडइत्ता** - झटक कर, **परिविद्धंसइत्ता** - विध्वंश कर, **उप्पाइत्ता** - उत्पन्न कर, **आयसरीरओगाढे** - आत्मशरीरावगाढ, **सव्वप्पणयाए** - सब नय से-सभी आत्मप्रदेशों से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे आत्मप्रदेशों से स्पृष्ट का आहार करते हैं या अस्पृष्ट का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे स्पृष्ट का आहार करते हैं, अस्पृष्ट का नहीं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे आत्मप्रदेशों से अवगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं या अनवगाढ का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे आत्मप्रदेशों से अवगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं, अनवगाढ का नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! वे अनन्तर-अवगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं या परम्परावगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे अनन्तर अवगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं परम्परावगाढ पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे अणु-थोड़े प्रमाण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं या बादर-अधिक प्रमाण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे अणु-थोड़े प्रमाण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं और बादर-अधिक प्रमाण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या वे ऊपर, नीचे या तिर्यक् (तिरछे) स्थित पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे ऊपर स्थित पुद्गलों का भी आहार करते हैं, नीचे स्थित पुद्गलों का भी आहार करते हैं और तिर्यक् स्थित पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या वे आदि में स्थित पुद्गलों का आहार करते हैं, मध्य में स्थित पुद्गलों का आहार करते हैं या अन्त में स्थित पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे आदि में स्थित पुद्गलों का भी आहार करते हैं, मध्य में स्थित पुद्गलों का भी आहार करते हैं और अन्त में स्थित पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या वे स्वोचित-अपने योग्य पुद्गलों का आहार करते हैं या अपने अयोग्य पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे अपने योग्य पुद्गलों का आहार करते हैं अयोग्य पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या वे आनुपूर्वी-समीपस्थ पुद्गलों का आहार करते हैं या अनानुपूर्वी-दूरस्थ पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे आनुपूर्वी-समीपस्थ पुद्गलों का आहार करते हैं, अनानुपूर्वी-दूरस्थ पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या वे तीन दिशाओं, चार दिशाओं, पांच दिशाओं और छह दिशाओं के पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे निर्व्याघात-व्याघात न हो तो छहों दिशाओं के पुद्गलों का आहार करते हैं। व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं के, कदाचित् चार दिशाओं के, कदाचित् पांच दिशाओं के पुद्गलों का आहार करते हैं। ओसन्न-प्रायः विशेष करके वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव वर्ण से काले, नीले यावत् श्वेत वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं, गंध से सुरभिगंध वाले दुरभिगंध वाले, रस से तीखे यावत् मधुर रस वाले, स्पर्श से कर्कश-मृदु यावत् स्निग्ध रूक्ष पुद्गलों का आहार करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे उन ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों के पुराने (पहले के) वर्ण गुणों को यावत् स्पर्श गुणों को बदल कर, हटा कर, झटक कर, विध्वंश कर उनमें दूसरे अपूर्व वर्ण गुण, गंध गुण, रस गुण और स्पर्श गुणों को उत्पन्न कर आत्मशरीरावगाढ पुद्गलों को सभी आत्मप्रदेशों से ग्रहण करते हैं।

विवेचन - जीव के द्वारा औदारिक आदि योगों से औदारिक, वैक्रिय एवं आहारक वर्गणा के पुद्गलों का ग्रहण करना 'आहार' कहलाता है। तैजस एवं कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने को आहार नहीं कहा गया है। क्योंकि वाटे वहते जीवों के भी इन दो शरीरों के पुद्गलों का ग्रहण होने पर भी उनको अनाहारक कहा गया है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले पुद्गलों को ग्रहण करते हैं वे आत्मप्रदेशों के साथ स्पृष्ट (छुए हुए) होते हैं, आत्मप्रदेशों में अवगाढ होते हैं। जिन आत्मप्रदेशों में जो व्यवधान रहित होकर रहे हुए हैं वे अनन्तरावगाढ हैं और जो एक दो तीन आदि प्रदेशों के व्यवधान से रहे हुए हैं वे परम्परावगाढ कहलाते हैं। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अनन्तरावगाढ पुद्गलों को ही ग्रहण करते हैं, परम्परावगाढ पुद्गलों को नहीं। ये अनन्तरावगाढ पुद्गल अणु भी होते हैं और बादर भी होते हैं। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अणु और बादर दोनों प्रकार के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव जितने क्षेत्र में अवगाढ है उस क्षेत्र में ही वह ऊर्ध्व, अधो या तिर्यक् स्थित पुद्गलों को ग्रहण करता है। जिस अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण काल में वह जीव उपभोग योग्य द्रव्यों को ग्रहण करता है वह उस अन्तर्मुहूर्त्त काल के आदि में, मध्य में और अन्त में भी ग्रहण करता है। ये जीव अपने लिए उचित आहार योग्य पुद्गलों को आनुपूर्वी से ग्रहण करते हैं। इन पुद्गलों का कितनी दिशा से ग्रहण करते हैं उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार हैं -

जब कोई सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव लोक निष्कुट में (अंतिम किनारे पर) नीचे के प्रतर के आग्नेय कोण में रहा हुआ हो तो उसके नीचे अलोक होने से अधोदिशा में पुद्गलों का अभाव होता है, आग्नेय कोण में स्थित होने से पूर्व दिशा के पुद्गलों का और दक्षिण दिशा के पुद्गलों का अभाव होता है। इस तरह अधो, पूर्व और दक्षिण-ये तीन दिशाएं अलोक से व्याप्त होने से इनमें पुद्गलों का अभाव है अतः शेष तीन दिशाओं के पुद्गलों का ग्रहण संभव है। इसलिए कहा गया है कि व्याघात की अपेक्षा वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव कदाचित् तीन दिशाओं के पुद्गलों का आहार करते हैं।

जब वही जीव पश्चिम दिशा में होता है तब उसके पूर्व दिशा अधिक हो जाती है। दक्षिण और अधो-ये दो दिशाएं ही अलोक से व्याप्त होती है इसलिये वह जीव ऊर्ध्वदिशा, पूर्वदिशा, पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा-इन चार दिशाओं से पुद्गलों को ग्रहण करता है।

जब वही जीव ऊपर के दूसरे आदि प्रतरगत पश्चिम दिशा में होता है तब उसके अधोदिशा भी अधिक हो जाती है। केवल एक दक्षिण दिशा ही अलोक से व्याप्त रहती है ऐसी स्थिति में वह जीव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वोक्त चार और अधोदिशा मिला कर पांच दिशाओं में स्थित पुद्गलों को ग्रहण करता है और व्याघात नहीं होने पर छहों दिशाओं के पुद्गलों को ग्रहण करता है।

वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव प्राय: - बहुलता से पूर्व के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श गुणों को बदल कर अपूर्व वर्ण, गंध, रस और स्पर्श गुणों को उत्पन्न कर अपने शरीर क्षेत्र में अवगाढ पुद्गलों को आत्मप्रदेशों से आहार के रूप में ग्रहण करते हैं।

संक्षेप में आहार के २८८ भेद इस प्रकार होते हैं - १. पुट्ठा २. ओगाढा ३. अनन्तरोवगाढा ४. सूक्ष्म ५. बादर ६. ऊर्ध्व दिशा का ७. नीची दिशा का ८. तिरछी दिशा का ९. आदि का १०. मध्य का ११. अन्त का १२. स्वविषयक १३. अनुक्रम से १४. नियम से छहों दिशा का १५. द्रव्य से अनन्त प्रदेशी द्रव्य १६. क्षेत्र से असंख्य प्रदेशावगाढ पुद्गलों का (१७ से २८ तक) काल के १२ भेद। एक समय की स्थिति के पुद्गलों का यावत् दस समय की स्थिति के पुद्गलों का, संख्यात समय की स्थिति के पुद्गलों का और असंख्यात समय की स्थिति के पुद्गलों का लेवे। (२९ से २८८ तक) भाव के २६० भेद हैं - पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श-२० भेद। इनके प्रत्येक के १३ भेद हैं - एक गुण काला, दो गुण काला यावत् दस गुण वाला, संख्यातगुण काला, असंख्यातगुण काला और अनन्तगुण काला। इसी तरह गंध आदि के तेरह-तेरह भेद करने से २०×१३=२६०। पूर्व के २८ मिला कर कुल २६०+२८=२८८ भेद होते हैं।

१९. उपपात द्वार

ते णं भंते! जीवा कओहिंतो उववज्जंति? किं णेरइएहिंतो उववज्जंति तिरिक्खमणुस्सदेवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति णो देवेहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणियपज्जत्तापज्जत्तेहिंतो असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो अकम्मभूमिग असंखेज्जवासाउय वज्जेहिंतो उववज्जंति, वक्कंती उववाओ भाणियव्वो॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नरक से आकर उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्य से आकर उत्पन्न होते हैं या देव से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे नरक से आकर उत्पन्न नहीं होते, तिर्यंच से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्य से आकर उत्पन्न होते हैं किंतु देव से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं। तिर्यंच से आकर उत्पन्न होते हैं तो असंख्यात वर्षायु वाले तिर्यंचों को छोड़ कर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त तिर्यंचों से आकर उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो अकर्मभूमि वाले और असंख्यात वर्षों की आयु वालों को छोड़ कर शेष मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार व्युत्क्रांति उपपात कहना चाहिये।

विवेचन – 'प्रत्येक दण्डक में एक साथ आने वाले जीवों की संख्या का निर्देश करना' इस को यहां पर उपपात द्वार के रूप में बताया है।

ऐसा ही भव स्वभाव है जिसके कारण सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव देव और नरक से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव असंख्यात वर्षों की आयुष्य वाले तिर्यंचों को छोड़ कर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त तिर्यंचों से आकर उत्पन्न होते हैं। असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच इनमें उत्पन्न नहीं होते। अकर्मभूमि के, अंतरद्वीपों के और असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमि में उत्पन्न मनुष्यों को छोड़ कर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं।

२०. स्थिति द्वार

तेसि णं भंते! जीवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं॥

भावार्थ – **प्रश्न** – हे भगवन्! उन जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर – हे गौतम! उन जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की है।

विवेचन – जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे स्थिति कहते हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त ही है किंतु जघन्य अंतर्मुहूर्त्त से उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अधिक समझना चाहिये।

२१. समवहत असमवहत द्वार

ते णं भंते! जीवा मारणंतिय समुग्घाएणं किं समोहया मरंति असमोहया मरंति?

गोयमा! समोहया वि मरंति असमोहया वि मरंति।

भावार्थ – **प्रश्न** – हे भगवन्! वे जीव मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर मरते हैं?

उत्तर – हे गौतम! वे जीव मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

विवेचन – मारणांतिक समुद्घात करके जो मरण होता है वह समवहत है और मारणांतिक समुद्घात किये बिना जो मरण होता है वह असमवहत है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव दोनों प्रकार का मरण मरते हैं। जो ईलिका गति से समुद्घात करके मरे अर्थात् कीडी की कतार की तरह जीव प्रदेश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथक्-पृथक् निकले, उसे समोहया मरण कहते हैं। जो गेंद (दडी) के उछलने की गति से मरे अर्थात् बंदूक की गोली के समान जीव के प्रदेश एक साथ निकले, उसे असमोहया मरण कहते हैं।

२२. च्यवन द्वार

तेणं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, देवेसु उववज्जंति?

गोयमा! णो णेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति मणुस्सेसु उववज्जंति, णो देवेसु उववज्जंति।

किं एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदिएसु उववज्जंति?

गोयमा! एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, असंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उववज्जंति मणुस्सेसु अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तेसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव वहां से निकल कर अगले भव में कहां जाते हैं? कहां उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या देवों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते, तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, देवों में उत्पन्न नहीं होते।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या वे एकेन्द्रियों में यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं लेकिन असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों को छोड़ कर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं। अकर्मभूमि वाले, अन्तरद्वीप वाले तथा असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों को छोड़ कर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - जीव वर्तमान भव को छोड़ कर अन्य भव की पर्याय को धारण करे, उसे 'च्यवन' कहते हैं। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव मर कर न तो नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं और न देवों में उत्पन्न होते हैं। वे तिर्यंचों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं तो असंख्यात वर्ष की आयु वाले भोग भूमि के तिर्यंचों को छोड़ कर शेष एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज और असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों को छोड़ कर शेष पर्याप्त या अपर्याप्त मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२३. गति आगति द्वार

ते णं भंते! जीवा कइगइया कइ आगइया पण्णत्ता?

गोयमा! दुगइया दुआगइया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो! से त्तं सुहुम पुढविक्काइया॥ १३॥

कठिन शब्दार्थ - **दुगइया** - दुगतिका-दो गति वाले, **दुआगइया** - दुआगतिका-दो आगति वाले, **परित्ता** - परित्त-प्रत्येक शरीर वाले, **समणाउसो** - हे आयुष्मन् श्रमण।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे कितनी गति में जाने वाले और कितने गति से आने वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे दो गति वाले और दो आगति वाले हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे जीव प्रत्येक शरीर वाले और असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण कहे गये हैं। यह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन - जीव मर कर भवान्तर में जावे, उसे 'गति' कहते हैं। भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को 'आगति' कहते हैं। अमुक दण्डक में कितनी गति एवं कितने दण्डकों से जीव आते हैं, जाते हैं; यह बताना गति आगति द्वार का विषय है। इस प्रकार उपपात, च्यवन द्वार से इसमें कुछ भिन्नता है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव दो गति वाले और दो आगति वाले कहे गये हैं। ये जीव मर कर तिर्यंच गति और मनुष्य गति में उत्पन्न होते हैं अतः इनकी दो गतियां हैं और तिर्यंच और मनुष्य गति से ही आकर उत्पन्न होते हैं अतः सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव दो आगति (तिर्यंच और मनुष्य गति) वाले हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में २३ द्वारों द्वारा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों का विशद वर्णन किया गया है।

बादर पृथ्वीकायिक जीवों का वर्णन

से किं तं बायर पुढविकाइया?

बायर पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सण्हबायर पुढविक्काइया य खरबायर पुढविक्काइया य १४॥

भावार्थ - बादर पृथ्वीकायिक क्या है?

बादर पृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकायिक और खर बादर पृथ्वीकायिक।

विवेचन - बादर नाम कर्म के उदय से जिन पृथ्वीकायिक जीवों का शरीर बादर हो उन्हें बादर पृथ्वीकायिक कहते हैं। बादर पृथ्वीकायिक जीवों के दो भेद हैं - १. श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकायिक और २. खर बादर पृथ्वीकायिक। जो मिट्टी पीसे हुए आटे के समान मृदु हो, घुलनशील हो एवं जिसमें पानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को सोखने की क्षमता हो वह श्लक्ष्ण बादर पृथ्वी कहलाती है। जिन जीवों का शरीर श्लक्ष्ण पृथ्वी हो, वे श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकायिक कहलाते हैं। जो मिट्टी कर्कशता लिये हुए हो वह खर बादर पृथ्वी कहलाती है। खर बादर पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर हो, वे खर बादर पृथ्वीकायिक कहलाते हैं।

से किं तं सण्ह बायर पुढवीकाइया?

सण्हबायर पुढविक्काइया सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा - कण्हमट्टिया भेओ जहा पण्णवणाए जाव ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥

भावार्थ - श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकाय क्या है?

श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकाय सात प्रकार की कही गई हैं - काली मिट्टी आदि भेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार जानने चाहिये यावत् वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकाय के सात भेद इस प्रकार हैं - १. काली मिट्टी २. नीली मिट्टी ३. लाल मिट्टी ४. पीली मिट्टी ५. सफेद मिट्टी ६. पांडु मिट्टी और ७. पणग मिट्टी। इन सात प्रकार की श्लक्ष्ण पृथ्वी में रहे हुए जीव श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकायिक हैं। खर बादर पृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। प्रज्ञापना सूत्र में मुख्य चालीस भेद इस प्रकार बताये हैं - १. शुद्ध पृथ्वी २. शर्करा ३. बालुका ४. उपल ५. शिला ६. लवण ७. ऊस ८. लोहा ९. तांबा १०. रांगा ११. सीसा १२. चांदी १३. सोना १४. वज्र-हीरा १५. हरताल १६. हिंगलु १७. मन:शीला १८. सासग-पारा १९. अंजन २०. प्रवाल २१. अभ्रपटल २२. अभ्रबालुका और मणियों के १८ भेद - २३. गोमेज्जक २४. रुचक २५. अंक २६. स्फटिक २७. लोहिताक्ष २८. मरकत २९. भुजमोचक ३०. मसारगल ३१. इन्द्रनील ३२. चन्दन ३३. गैरिक ३४. हंसगर्भ ३५. पुलक ३६. सौगंधिक ३७. चन्द्रप्रभ ३८. वैडूर्य ३९. जलकांत और ४०. सूर्यकांत। खरबादर पृथ्वीकाय के ये ४० भेद बताने के बाद सूत्रकार '**ने जे यावण्णा तहप्पगारा**' पाठ देकर अन्य भेदों का सूचन भी किया है इस तरह खर बादर पृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। ये पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा - ओरालिए तेयए कम्मए, तं चेव सव्वं णवरं चत्तारि लेसाओ, अवसेसं जहा सुहुम पुढविक्काइयाणं आहारो जाव णियमा छद्दिसिं, उववाओ तिरिक्खजोणियमणुस्स देवेहिंतो, देवेहिं जाव सोहम्मेसाणेहिंतो, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन (बादर पृथ्वीकायिक) जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - औदारिक तैजस कार्मण। इस प्रकार सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिये विशेषता यह है कि इनके चार लेश्याएं होती हैं। शेष सारा वर्णन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक की तरह समझना चाहिये। यावत् नियम से छहों दिशाओं का आहार ग्रहण करते हैं। ये बादर पृथ्वीकायिक जीव तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं। देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो यावत् सौधर्म और ईशान देवलोक से आते हैं। यहाँ पर खर बादर पृथ्वीकाय में देवों का उपपात समझना चाहिये। श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकाय में देवों का उपपात नहीं होता है। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की होती है।

ते णं भंते! जीवा मारणंतिय समुग्घाएणं किं समोहया मरंति असमोहया मरंति?

गोयमा! समोहया वि मरंति असमोहया वि मरंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर पृथ्वीकायिक जीव मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर मरते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये जीव समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति?० पुच्छा।

गोयमा! णो णेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति मणुस्सेसु उववज्जंति णो देवेसु उववज्जंति तं चेव जाव असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ये जीव वहां से मर कर कहां जाते हैं? कहां उत्पन्न होते हैं? क्या नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं आदि प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! ये जीव नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं, तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, देवों में उत्पन्न नहीं होते। तिर्यंचों और मनुष्यों में भी असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों और मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते। इत्यादि।

ते णं भंते! जीवा कइगइया कइ आगइया पण्णत्ता?

गोयमा! दुगइया तिआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो! से त्तं बायर पुढविक्काइया। से त्तं पुढविकाइया॥ १५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव कितनी गति वाले और कितनी आगति वाले कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! दो गति वाले और तीन आगति वाले कहे गये हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे बादर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वीकाय के जीव प्रत्येक शरीरी हैं और असंख्यात लोकाकाश प्रमाण हैं। इस प्रकार बादर पृथ्वीकाय का वर्णन हुआ। इस प्रकार पृथ्वीकाय का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की तरह बादर पृथ्वीकायिकों का भी २३ द्वारों से वर्णन किया गया है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों और बादर पृथ्वीकायिकों का वर्णन लगभग समान है किंतु निम्न द्वारों में अंतर है -

१. लेश्याद्वार - सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों में तीन लेश्या कही गई है जबकि बादर पृथ्वीकायिकों में चार लेश्याएं पाई जाती हैं - १. कृष्ण लेश्या २. नील लेश्या ३. कापोत लेश्या और ४. तेजो लेश्या। दूसरे देवलोक तक के देव अपने भवन और विमानों में अति मूर्च्छा होने के कारण रत्न कुण्डल आदि में उत्पन्न होते हैं वे तेजोलेश्या वाले भी होते हैं। आगम में कहा है कि **"जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ"** - जिस लेश्या में जीव मरता है उसी लेश्या में उत्पन्न होता है इसलिये थोड़े समय के लिए अपर्याप्त अवस्था में उनमें तेजोलेश्या भी पाई जाती है।

२. आहार द्वार - बादर पृथ्वीकायिक जीव नियम से छहों दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं क्योंकि बादर पृथ्वीकायिक जीव लोक के मध्य में ही उत्पन्न होते हैं, किनारे नहीं इसलिये उनमें व्याघात नहीं होता।

३. उपपात द्वार - देवों से आकर भी जीव बादर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होते हैं इसलिये तिर्यंचों, मनुष्यों और देवों से उपपात कहा है।

४. स्थिति द्वार - बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की होती है।

५. गति आगति द्वार - बादर पृथ्वीकायिकों में आगति तीन गतियों से और गति दो गतियों में कही है क्योंकि देव गति से भी आकर जीव बादर पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होते हैं। बादर पृथ्वीकायिक मर कर तिर्यंच गति और मनुष्य गति में उत्पन्न होते हैं। अतः गति दो गतियों की कही है।

शेष सभी द्वारों का वर्णन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान ही समझना चाहिये। इस प्रकार बादर पृथ्वीकाय का वर्णन हुआ। इसके साथ ही पृथ्वीकाय का वर्णन पूरा हुआ।

अप्कायिक जीवों का वर्णन

से किं तं आउक्काइया?

आउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सुहुमआउक्काइया य बायर आउक्काइया य। सुहुम आउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अप्कायिक क्या है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अप्कायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सूक्ष्म अप्कायिक और बादर अप्कायिक। सूक्ष्म अप्कायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - अप् (जल) ही जिन जीवों का शरीर हैं वे अप्कायिक कहलाते हैं। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं-१. सूक्ष्म अप्कायिक - जिन पानी के जीवों के सूक्ष्म नामकर्म का उदय हो और २. बादर अप्कायिक-जिन पानी के जीवों के बादर नामकर्म का उदय हो वे बादर अप्कायिक कहलाते हैं। सूक्ष्म अप्कायिक जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता, तं जहा - ओरालिए तेयए कम्मए जहेव सुहुपुढविक्काइयाणं णवरं थिबुगसंठिया पण्णत्ता, सेसं तं चेव जाव दुगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता। से त्तं सुहुमआउक्काइया॥ १६॥

कठिन शब्दार्थ - थिबुगसंठिया - स्तिबुक (बुद्बुद्) संस्थान वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन (सूक्ष्म अप्कायिक) जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं। यथा औदारिक, तैजस और कार्मण। शेष सभी द्वारों का वर्णन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की तरह समझना चाहिये। विशेषता यह है कि उनका संस्थान स्तिबुक (बुद्बुद्) रूप कहा गया है। शेष सब उसी तरह कह देना चाहिये यावत् वे दो गति वाले और दो आगति वाले हैं। प्रत्येक शरीर हैं और असंख्यात कहे गये हैं। यह सूक्ष्म अप्कायिक का वर्णन हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूक्ष्म अप्कायिक जीवों के विषय में २३ द्वार कहे गये हैं। जो सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के समान ही समझना चाहिये अन्तर इतना है कि सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों का संस्थान मसूर की दाल के समान होता है जबकि सूक्ष्म अप्कायिक जीवों का संस्थान स्तिबुक (बुद्बुद) के समान है।

से किं तं बायर आउक्काइया?

बायर आउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा-ओसा हिमे जाव जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता तंजहा-पज्जत्ता अपज्जत्ता य, तं चेव सव्वं णवरं थिबुग संठिया, चत्तारि लेसाओ, आहारो णियमा छद्दिसिं उववाओ तिरिक्ख जोणियमणुस्सदेवेहिंतो, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तवाससहस्साइं सेसं तं चेव जहा बायर पुढविकाइया जाव दुगइया तिआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो। से त्तं बायर आउक्काइया, से त्तं आउक्काइया॥ १७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - बादर अप्कायिक का क्या स्वरूप है ?

बादर अप्कायिक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। यथा - ओस, हिम यावत् अन्य भी इसी प्रकार के जल रूप। वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्यासक। इस प्रकार पूर्ववत् कह देना चाहिए। विशेषता यह है कि उनका संस्थान स्तिबुक (बुदबुद) है। उनमें चार लेश्याएं पाई जाती है। वे नियम से छहों दिशाओं का आहार ग्रहण करते हैं। तिर्यंच, मनुष्य और देवों से उत्पन्न होते हैं। उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की होती है। शेष सारा वर्णन बादर पृथ्वीकायिकों की तरह समझ लेना चाहिये यावत् वे दो गति वाले तीन आगति वाले हैं। प्रत्येक शरीरी और असंख्यात कहे गये हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! यह बादर अप्कायियों का वर्णन हुआ इसके साथ ही अप्कायिकों का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन - बादर अप्कायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार उनके भेद इस प्रकार हैं - ओस, हिम, महिका, करक, हरतनु, शुद्धोदक, शीतोदक, उष्णोदक, क्षारोदक, खट्टोदक, आम्लोदक, लवणोदक, वारुणोदक, क्षीरोदक, घृतोदक, क्षोदोदक और रसोदक आदि और भी इसी प्रकार के पानी हैं वे सब बादर अप्कायिक समझने चाहिये। वे बादर अप्कायिक दो प्रकार के हैं - पर्याप्त और अपर्याप्त।

बादर अप्कायिक जीवों के विषय में २३ द्वारों से निरूपण बादर पृथ्वीकायिकों के समान समझना चाहिये। जिन द्वारों में अन्तर है वे इस प्रकार है -

१. संस्थान द्वार - बादर अप्कायिक जीवों का संस्थान बुद्‌बुद् के आकार का है।

२. स्थिति द्वार - बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की समझना चाहिये। शेष सारा वर्णन बादर पृथ्वीकायिकों के समान समझना चाहिये यावत् हे आयुष्मन् श्रमण! वे अप्कायिक जीव प्रत्येक शरीरी और असंख्यात लोकाकाश प्रमाण कहे गये हैं। यह बादर अप्कायिकों का निरूपण हुआ। इसी के साथ अप्कायिकों का वर्णन पूरा हुआ।

वनस्पतिकायिक जीवों का वर्णन

से किं तं वणस्सइकाइया?

वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता तंजहा - सुहुम वणस्सइकाइया य बायर वणस्सइकाइया।

भावार्थ - वनस्पतिकायिक जीवों का क्या स्वरूप है ?

वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और २. बादर वनस्पतिकायिक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - हरितकाय, तृण, वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि वनस्पति है। वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर है वे वनस्पतिकायिक कहलाते हैं। जिन वनस्पतिकायिक जीवों के सूक्ष्म नाम कर्म का उदय है वे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक कहलाते हैं और जिन वनस्पतिकायिक जीवों के बादर नाम कर्म का उदय होता है वे बादर वनस्पतिकायिक कहलाते हैं।

से किं तं सुहुम वणस्सइकाइया?

सुहुम वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य तहेव णवरं अणित्थंथ (संठाण) संठिया, दुगइया दुआगइया अपरित्ता अणंता, अवसेसं जहा पुढविक्काइयाणं, से त्तं सुहुम वणस्सइकाइया॥ १८॥

कठिन शब्दार्थ - अणित्थंथ (संठाण) संठिया - अनित्थंस्थ (अनियत) संस्थान संस्थित।

भावार्थ - सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों का स्वरूप क्या है?

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक अपर्याप्तक इत्यादि वर्णन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान जानना चाहिये। विशेषता यह है कि सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों का संस्थान अनित्थंस्थ (अनियत) है। वे जीव दो गतियों में जाने वाले और दो गतियों से आने वाले हैं। वे अपरित्त (अनन्तकायिक) और अनन्त हैं। हे आयुष्मन श्रमण! यह सूक्ष्म वनस्पतिकायिक का वर्णन हुआ।

विवेचन - सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों का संस्थान अनित्थंस्थ होता है अर्थात् इनके शरीर का नियत संस्थान नहीं होता है, अनियत आकार वाले उनके शरीर होते हैं। संस्थान द्वार के अलावा शेष द्वारों का वर्णन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान ही है। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक से मर कर जीव तिर्यंच और मनुष्य इन दो गति में ही उत्पन्न होते हैं अतः ये द्विगतिक हैं तथा सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों में तिर्यंच और मनुष्य गति से आये हुए जीव ही उत्पन्न होते हैं अतः ये दो आगति वाले होते हैं। ये अप्रत्येक शरीरी हैं अतः इन्हें अनन्त कहा गया है। शेष सारी वक्तव्यता सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान कह देनी चाहिए। इस प्रकार सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों का तेइस द्वारों से वर्णन हुआ।

से किं तं बायरवणस्सइकाइया?

बायर वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - पत्तेयसरीर बायरवणस्सइकाइया य साहारण सरीर बायर वणस्सइकाइया य॥ १९॥

भावार्थ - बादर वनस्पतिकायिक का स्वरूप क्या है?

बादर वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक और २. साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक।

विवेचन - बादर वनस्पतिकायिक जीवों के दो भेद कहे गये हैं - १. प्रत्येक शरीरी और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. साधारण शरीरी। जिन जीवों का शरीर अलग-अलग होता है वे प्रत्येक शरीर कहलाते हैं और जिन जीवों का एक ही शरीर होता है अर्थात् अनेक जीवों का एक ही शरीर होता है वे साधारण शरीरी कहलाते हैं।

से किं तं पत्तेय सरीर बायर वणस्सइकाइया?

पत्तेयसरीर बायर वणस्सइकाइया दुवालसविहा पण्णत्ता तंजहा-

रुक्खा गुच्छा गुम्मा लया य वल्ली य पव्वगा चेव।

तण वलय हरिय ओसहि जलरुह कुहणा य बोद्धव्वा॥

कठिन शब्दार्थ - **पव्वगा** - पर्वग, **जलरुह** - जलरुह, **कुहणा** - कुहण।

भावार्थ - प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीवों का क्या स्वरूप है?

प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीव बारह प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग, तृण, वलय, हरित, औषधि, जलरुह और कुहण।

विवेचन - प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक के १२ भेद कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं -

१. **वृक्ष** - नीम, आम आदि।

२. **गुच्छ** - पौधे रूप बैंगन आदि।

३. **गुल्म** - पुष्प जाति के पौधे नवमालिका आदि।

४. **लता** - वृक्ष आदि पर चढ़ने वाली चम्पक लता आदि।

५. **वल्ली** - जमीन पर फैलने वाली बेलें-कुष्माण्डी, त्रपुषी आदि।

६. **पर्वग** - पौर-गांठ वाली वनस्पति, इक्षु आदि।

७. **तृण** - दुब, कास, कुश आदि हरी घास।

८. **वलय** - जिनकी छाल गोल होती है केतकी, कदली आदि।

९. **हरित** - बथुआ आदि हरी भाजी।

१०. **औषधि** - गेहूँ आदि धान्य जो पकने पर सूख जाते हैं।

११. **जलरुह** - जल में उगने वाली वनस्पति, कमल, सिंघाडा आदि।

१२. **कुहण** - भूमि को फोड़ कर उगने वाली वनस्पति जैसे-कुकुरमुत्ता।

से किं तं रुक्खा? रुक्खा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - एगट्ठिया य बहुबीया य।

से किं तं एगट्ठिया?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा - णिंबबजंबु जाव पुण्णागणागरुक्खे सीवण्णि तहा असोगे य, जे यावण्णे तहप्पगारा, एएसि णं मूलावि असंखेज्ज जीविया,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं कंदा खंधा तया साला पवाला पत्ता पत्तेयजीवा पुष्फाइं अणेगजीवाइं फला एगट्ठिय, से त्तं एगट्ठिया।

कठिन शब्दार्थ - **एगट्ठिया** - एक बीज वाले, **बहुबीया** - बहुत बीज वाले, **पुण्णागणागरुक्खे**- पुन्नाग नाग वृक्ष, **असंखेज्जजीविया** - असंख्यात जीव वाले, **सीवण्णि** - श्रीपर्णी, **कंदा** - कंद, **खंधा** - स्कन्ध, **तया** - त्वचा, **साला** - शाखा, **पवाला** - प्रवाल।

भावार्थ - वृक्ष का स्वरूप क्या है?

वृक्ष दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - एकबीज वाले और बहुत बीज वाले।

एक बीज वाले वृक्ष का स्वरूप क्या है?

एक बीज वाले वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गये हैं। यथा - नीम, आम, जामुन यावत् पुन्नागनाग वृक्ष, श्रीपर्णी, अशोक तथा और भी इसी प्रकार के अन्य वृक्ष। इनके मूल असंख्यात जीव वाले हैं। कंद, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्ते ये प्रत्येक जीव वाले हैं, इनके फूल अनेक जीव वाले हैं, फल एक बीज वाले हैं। यह एक बीज वाले वृक्षों का वर्णन हुआ।

से किं तं बहुबीया?

बहुबीया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा - अत्थिय तेंदुय उंबर कविट्ठे आमलक फणस दाडिम णग्गोह काउंबरी य तिलय लउय लोद्धे धवे, जे यावण्णे तहप्पगारा, एएसि णं मूलावि असंखेज्ज जीविया जाव फला बहुबीयगा, सेत्तं बहुबीयगा, से त्तं रुक्खा। एवं जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्वं, जाव जे यावण्णे तहप्पगारा। से त्तं कुहणा।

णाणाविहसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता।
खंधो वि एगजीवो तालसरल णालिएरीणं॥ १॥
जह सगलसरिसवाणं पत्तेय सरीराणं गाहा॥ २॥
जह वा तिलसक्कुलिया गाहा॥ ३॥
से त्तं पत्तेय सरीर बायर वणस्सइकाइया ॥ २०॥

कठिन शब्दार्थ - **जह** - जैसे, **सकल सरिसवाणं** - सकल सर्षपाणां-अखण्ड सरसों की बनाई हुई बट्टी, **तिलसक्कुलिया** - तिल शष्कुलिका-तिल पर्पटिका-तिलपपड़ी।

भावार्थ - बहुबीज वाले वृक्ष का स्वरूप क्या है?

बहुबीज वाले वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गये हैं। यथा - अस्तिक, तेन्दुक, अम्बर, कबीठ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आंवला, पनस, दाडिम, न्यग्रोध, कादुम्बर, तिलक, लकुच (लवक) लोध्र, धव और अन्य भी इसी प्रकार के वृक्ष। इनके मूल असंख्यात जीव वाले यावत् फल बहुबीज वाले हैं। यह बहुबीज वाले वृक्ष का वर्णन हुआ। इसके साथ ही वृक्ष का निरूपण पूर्ण हुआ। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापना सूत्र में कहा गया है वैसा ही यहाँ भी कह देना चाहिए यावत् इस प्रकार के वृक्ष से लेकर कुहण तक।

गाथाओं के अर्थ - वृक्षों के संस्थान नाना प्रकार के हैं। ताल, सरल और नालिकेर वृक्षों के पत्ते और स्कन्ध एक-एक जीव वाले होते हैं।

जैसे श्लेष (चिकने) द्रव्य से मिश्रित किये हुए अखण्ड सरसों की बनाई हुई बट्टी एक रूप होती है किन्तु उसमें वे दाने अलग-अलग होते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक शरीर वालों के शरीर संघात होते हैं। जैसे तिलपपड़ी में बहुत सारे अलग-अलग तिल मिले हुए होते हैं उसी प्रकार प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीर संघात अलग-अलग होते हुए भी समुदाय रूप होते हैं। यह प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक का निरूपण हुआ।

विवेचन - वृक्ष दो प्रकार के कहे गये हैं - १. एकास्थिक-जिसके प्रत्येक फल में एक गुठली या बीज हो वह एकास्थिक है २. बहुबीजक - जिनके फल में बहुत बीज हो।

एकास्थिक वृक्षों के कुछ नाम मूलपाठ में दिये हैं। प्रज्ञापना सूत्र प्रथम पद में एकास्थिक वृक्षों के नाम इस प्रकार दिये हैं - नीम, आम, जामुन, कोशम्ब, साल, अंकोल्ल (अखरोट या पिस्ते का पेड) पीलु, शेलु (लसोड़ा), सल्लकी, मोनकी, मालुक, बकुल पलाश (ढाक), करंज। पुत्रजीवक, अरिष्ठ (अरीठा) विभीतक (बहेडा) हरड, भल्लातक (भिलावा) उम्बेभरिया, खिरनी, धातकी और प्रियाल। पूतिक (निम्ब) करंज, श्लक्ष्ण, शिंशपा, अशन, पुन्नाग (नागकेसर) नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक ये सब एकास्थिक वृक्ष हैं। इसी प्रकार के अन्य जितने भी वृक्ष हैं जिनके फल में एक ही गुठली (बीज) हो, वे सब एकास्थिक समझने चाहिये।

प्रज्ञापना सूत्र में बहुबीजक वृक्षों के नाम इस प्रकार दिये हैं - अस्थिक, तिंदुक, कबीठ, अम्बाडग, मातुलिंग (बिजौरा) बिल्व, आमलक, पनस (अनन्नास) दाड़िम, अश्वस्थ (पीपल) उदुम्बर (गूलर) वट (बड) न्यग्रोध (बडा वट)। नन्दिवृक्ष, पिप्पली, शतरी, प्लक्ष, कादुम्बरी, कस्तुम्भरी देवदाली, तिलक, लवक (लकुच-लीची) छत्रोपक, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुरज (कुटक) और कदम्ब, इसी प्रकार के अन्य जितने भी वृक्ष हैं जिनके फल में बहुत बीज हैं वे सब बहुबीजक समझने चाहिये।

एकास्थिक वृक्षों के मूल असंख्यात जीवों वाले होते हैं। इनके कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल) शाखा और प्रवाल (कोंपल) भी असंख्यात जीवों वाले होते हैं किन्तु इनके पत्ते प्रत्येक जीव (एक पते में एक जीव) वाले होते हैं। इनके फूलों में अनेक जीव होते हैं, इनके फलों में एक गुठली होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुबीजक वृक्षों में मूल असंख्यात जीवों वाले होते हैं। इनके कंद, स्कन्ध, त्वचा, शाखा और प्रवाल (कोंपल) असंख्यात जीवों वाले होते हैं। इनके पत्ते में प्रत्येक जीव (एक पत्ते में एक-एक जीव) होता है। इनके पुष्प अनेक जीवों वाले होते हैं और फल बहुत बीज वाले हैं।

शंका - यदि वृक्षों के मूल आदि अनेक प्रत्येक शरीरी जीवों से युक्त हैं तो फिर वे अखण्ड शरीराकार रूप से क्यों प्रतीत होते हैं?

समाधान - इस शंका के समाधान में प्रभु ने दो दृष्टान्त दिये हैं-

१. सरसों की बट्टी का दृष्टान्त - मूल में जो पाठ "**जह सगल सरिसवाणं**" दिया है उसकी पूरी गाथा इस प्रकार है-

जह सगल सरिसवाणं सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीर संघाया॥१॥

अर्थात् - जिस प्रकार अनेक सरसों के दाने श्लेष (चिकने) द्रव्य से मिश्रित किये जाकर एक वर्तिका (बट्टी) आदि के रूप में हो जाते हैं किन्तु उसमें वे सरसों के दाने अलग-अलग अपनी अवगाहना में रहते हैं। यद्यपि परस्पर चिपके होने के कारण बट्टी के रूप में एकाकार प्रतीत होते हैं फिर भी वे सरसों के दाने अलग-अलग होते हैं उसी प्रकार प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीर संघात भी अलग-अलग अपनी अवगाहना में रहते हैं परन्तु कर्म रूपी श्लेष के कारण परस्पर मिश्रित होने से एक शरीराकार प्रतीत होते हैं।

२. तिलपपड़ी का दृष्टान्त - तिलपपड़ी अनेक तिलों से मिश्रित होती हुई भी एक कहलाती है फिर भी उसमें तिल अलग-अलग अपनी अपनी अवगाहना में रहे हुए हैं इसी प्रकार प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीर संघात भी कथंचित् एक रूप होकर भी पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी अवगाहना में रहते हैं।

से किं तं साहारण सरीर बायर वणस्सइकाइया?

साहारण सरीर बायर वणस्सइकाइया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा-आलुए मूलए सिंगबेरे हिरिलि सिरिलि सिस्सिरिलि किट्टिया छिरिया छिरियविरालिया कण्हकंदे वज्जकंदे, सूरणकंदे खल्लुडे किमिरासि भद्दे मोत्थापिंडे हलिद्दा लोहारी णीहु (ठिहु) थिभु-अस्सकण्णी सीहकण्णी सीउंढी मुसंढी जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

भावार्थ - साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक का स्वरूप क्या है?

साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं आलू, मूला, अदरख, हिरिलि, सिरिलि, सिस्सिरिलि, किट्टिका, क्षीरिका, क्षीरविडालिका, कृष्णकन्द,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वज्रकन्द, सूरणकन्द, खल्लूट, कृमिराशि, भद्र, मुस्तापिण्ड, हरिद्रा, लोहारी, स्निहू, स्तिभु, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी सिकुण्डी, मुषण्डी और अन्य भी इसी प्रकार के साधारण वनस्पतिकायिक समझने चाहिये। ये संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - जिन जीवों के साधारण शरीर बादर वनस्पति नाम कर्म का उदय होता है वे साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीव कहलाते हैं। जो आलू, मूला, अदरख आदि अनेक प्रकार के हैं। मूल पाठ में जो साधारण वनस्पतिकायिक के भेद बताये हैं उनमें से कितनेक तो प्रसिद्ध हैं और कितनेक भिन्न-भिन्न देशों में प्रसिद्ध है। इनके अलावा भी जो इन्हीं के समान हों उन्हें भी साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक समझ लेने चाहिये। ये जीव संक्षेप से दो प्रकार के होते हैं-पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

तेसिणं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा-ओरालिए तेयए कम्मए। तहेव जहा बायरपुढवीकाइयाणं णवरं सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं साइरेगजोयणसहस्सं, सरीरगा अणित्थंत्थसंठिया, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं जाव दुगइया तिआगइया परित्ता अणंता पण्णत्ता, से त्तं बायरवणस्सइकाइया, सेत्तं वणस्सइकाइया, से त्तं थावरा॥ २१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं। यथा - औदारिक, तैजस और कार्मण। इस प्रकार सारा वर्णन बादर पृथ्वीकायिकों की तरह समझना चाहिये। विशेषता यह है कि इनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन से अधिक है। इनका संस्थान अनित्थंस्थ (अनियत) है। इन जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की जाननी चाहिये यावत् ये द्विगतिक और तीन आगतिक वाले कहे गये हैं। प्रत्येक वनस्पति में असंख्यात जीव हैं और साधारण वनस्पति में अनंत जीव कहे गये हैं। यह बादर वनस्पतिकायिक का वर्णन हुआ। इसके साथ ही स्थावर का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बादर वनस्पतिकायिकों का २३ द्वारों में निरूपण किया गया है। बादर वनस्पतिकायिकों और बादर पृथ्वीकायिकों के अधिकांश द्वारों में समानता है। जिन द्वारों में अन्तर है वे इस प्रकार हैं - बादर वनस्पतिकायिकों का संस्थान अनित्थंस्थ (नानारूप-अनियत) है। इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन की कही है। यह उत्कृष्ट अवगाहना प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक की अपेक्षा समझनी चाहिये। यह अवगाहना जो एक जीव की कही है वह द्वीप के समीप आये हुए समुद्र आदि में जहाँ उत्सेध

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

अंगुल से एक हज़ार योजन होते हैं वहाँ तथा वेलंधर या लवण समुद्र के गो तीर्थ के समीपवर्ती पानी से उठे हुए कमल नाल की अपेक्षा समझना चाहिये। लेकिन टीका में कहे अनुसार नहीं समझना चाहिये। क्योंकि कीचड़ के अभाव में कमल उत्पन्न नहीं होते हैं। अतः आगे के द्वीप समुद्रों की वेदिका आदि में कमल उत्पन्न हो तो तिरछी नाल बढ़ाकर ऊपर उठ सकने के कारण आगे के द्वीप समुद्रों में कमल उत्पन्न हो सकते हैं। शेष साधारण वनस्पतिकायिकों की अवगाहना जघन्य उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होती है। बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की कही गई है। यह भी प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक की अपेक्षा ही समझनी चाहिये क्योंकि साधारण शरीर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है। ये तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं अतः दो गति वाले तथा तिर्यंच, मनुष्य और देवगति से आकर उत्पन्न होते हैं अतः तीन आगति वाले कहे गये हैं। यह भी प्रत्येक शरीर वनस्पति की अपेक्षा समझना चाहिये क्योंकि सूत्र में प्रत्येक शरीर वनस्पतिकाय और साधारण शरीर वनस्पतिकाय दोनों की साथ ही विवक्षा की गयी है। प्रत्येक शरीरी वनस्पति जीव असंख्यात हैं और साधारण शरीरी वनस्पति जीव अनंत हैं। इस प्रकार हे आयुष्मन् श्रमण! बादर वनस्पतिकाय का वर्णन हुआ और इसके साथ ही स्थावर जीवों का निरूपण पूर्ण हुआ।

विशेष स्पष्टीकरण - यहाँ पर वनस्पति के उपसंहार में **'परित्ता अणंता'** पाठ आया है। अर्वाचीन **मूल पाठ की प्रति एवं हस्तलिखित प्रतियों के आधार से जो खुलासा पूज्य गुरुदेव के ध्यान में आया है वह इस प्रकार है -**

'परित्ता अणंता' ऐसा पाठ ही ठीक प्रतीत होता है। क्योंकि यहाँ वनस्पति के मूल भेद दो (सूक्ष्म बादर) ही किये हैं। सूक्ष्म का उपसंहार उसकी समाप्ति पर कर दिया है। बादर के दो भेद किये हैं। प्रत्येक के भेद प्रज्ञापना सूत्र के अतिदेश (भलावण) से उपसंहार प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार बता दिया है किन्तु पूरा उपसंहार नहीं किया है। प्रत्येक वनस्पति के भेद मात्र का उपसंहार समझना। पूरा उपसंहार तो शरीरादि द्वार बताने के बाद ही किया जाता है। दो (सूक्ष्म, बादर) भेदों से ही शरीरादि द्वारों का वर्णन किया जा रहा है। बादर पृथ्वी के सण्हा और खर भेदों की तरह पूरी बादर वनस्पति के प्रत्येक और साधारण के पर्याप्त अपर्याप्त भेद बताकर विवरण दिया है। शामिल होने से साधारण वनस्पति में देव न आने पर भी तीन गति की आगति बताई है। अवगाहना, लेश्या, स्थिति और गत्यागति में भी प्रत्येक का लक्ष्य रख कर फर्क बताया गया है। इस तरह बादर में दोनों शामिल होने से **'परित्ता अणंता'** पाठ ठीक प्रतीत होता है। अर्थात् प्रत्येक वनस्पति के लिए 'परित्ता' व साधारण वनस्पति के लिए 'अणंता' पाठ आया है। अतः दोनों के लिए एक-एक शब्द है तथा दोनों शब्द आवश्यक ही है। उपसंहार भी - जैसे श्लक्ष्ण व खर पृथ्वीकाय में भी अलग-अलग नहीं बताते हुए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'से तं बायर पुढविकाइया' ही बताया है। वैसे ही सूक्ष्म बादर का ही उपसंहार करते आने के कारण यहाँ पर भी बादर वनस्पति के (प्रत्येक-साधारण) अवांतर भेदों का अलग-अलग उपसंहार नहीं करके पूर्व परिपाटी के अनुसार बादर वनस्पति का ही किया है। **'समणाउसो'** पाठ तो किसी में (कहीं पर) देते हैं किसी में नहीं। जैसे सूक्ष्म पृथ्वीकाय में है किन्तु सूक्ष्म अप्काय में नहीं है। वैसे ही यहाँ भी दोनों भेदों में नहीं दिया। अतः पाठ सुधारने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार **'परित्ता'** एवं **'अणंता'** शब्द का अलग-अलग अर्थ करना ही विशेष संगत लगता है तथा ऐसा करने पर शंका का स्थान भी नहीं रहता है। क्योंकि **'परित्त'** के आगे आने वाले असंख्य एवं 'अनंत' के पहले आने वाले **'अपरित्त'** शब्द को मध्यवर्ती होने से गौण करके सूत्र रचा गया हो, ऐसा प्रतीत होता है। **'परित्ता अणंता'** शब्द शाकपार्थिवादि की तरह मध्यम पदलोपी समास मालूम पड़ता है। क्योंकि **'परित्त'** शब्द से असंख्य का और अनंत शब्द से **'अपरित्त'** का अध्याहार हो जाता है। जैसे कि भगवती सूत्र शतक ५ उद्देशक ९ में पार्श्वापत्य स्थविरों ने भगवान् महावीर से पूछा कि असंख्यात लोक में अनंत व परित्त रात्रि दिन उत्पन्न हुए? इसके उत्तर में भगवान् ने साधारण शरीरी अनंत जीवों को लक्ष्य करके ***'अनंत'*** *और प्रत्येक शरीरी असंख्य जीवों को लक्ष्य करके* ***'परित्ता'*** *रात्रि दिवस उत्पन्न* हुए हैं इत्यादि (हाँ) रूप से उत्तर दिया है। यहाँ पर भी **'परित्ता'** शब्द से असंख्य का व **'अणंता'** शब्द से अपरित्त का ग्रहण हुआ है। ऐसा अर्थ यहाँ पर भी करने से अर्थ संगति बराबर बैठ जाती है। **यदि कोई प्राचीन प्रति उपलब्ध हो जाय और उसमें 'परित्ता असंखेज्जा अपरित्ता अणंता' ऐसा स्पष्ट पाठ मिला जाय, तब तो यह पाठ रखने में भी कोई बाधा प्रतीत नहीं होती है। अन्यथा तो यही पाठ ठीक लगता है। ॥ इति संभावना ॥ तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्य मिति ॥**

त्रस के भेद

से किं तसा?

तसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - तेउक्काइया, वाउक्काइया, ओराला तसा पाणा ॥ २२ ॥

कठिन शब्दार्थ - तसा - त्रस, ओराला - उदार।

भावार्थ - त्रस जीवों का स्वरूप क्या है?

त्रस जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - तेजस्कायिक, वायुकायिक और उदार त्रस।

विवेचन - जो अपनी इच्छा के अनुसार अथवा बिना इच्छा के ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक् चलते हैं वे त्रस जीव हैं। त्रस जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं - १. तेजस्कायिक २. वायुकायिक और ३. उदार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रस। तेजस्कायिकों और वायुकायिकों को गति त्रस कहा गया है जबकि उदार त्रस-बेइन्द्रिय आदि जीव लब्धि त्रस कहे गये हैं।

तेजस्कायिक जीवों का वर्णन

से किं तं तेउक्काइया?

तेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सुहुम तेउक्काइया य बायर तेउक्काइया य॥ २३॥

भावार्थ - तेजस्कायिक का क्या स्वरूप है?

तेजस्कायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सूक्ष्म तेजस्कायिक और २. बादर तेजस्कायिक।

विवेचन - तेजस् अर्थात् अग्नि। अग्नि ही जिनका शरीर है वे जीव तेजस्कायिक कहे जाते हैं। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - सूक्ष्म तेजस्कायिक और बादर तेजस्कायिक। जो तेजस्कायिक सूक्ष्म नाम कर्म के उदय वाले हैं वे सूक्ष्म तेजस्कायिक कहलाते हैं। जिन तेजस्कायिक जीवों के बादर नाम कर्म का उदय है वे बादर तेजस्कायिक कहलाते हैं। सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव सारे लोक में व्याप्त होते हैं।

यहां पर तेजस्कायिक एवं वायुकायिकों को त्रस कहा गया है-वह गति की अपेक्षा त्रस समझना चाहिये। आशय यह है कि-तेजस्काय एवं वायुकाय के जीव अपने मूल शरीर (औदारिक शरीर) के साथ जीवित अवस्था में आगे आगे गति करके जा सकते हैं। इस प्रकार इनमें स्वाभाविक रूप से गति करके आगे जाने की क्षमता है। इसके सिवाय शेष तीन स्थावरों (पृथ्वी, पानी, वनस्पति) के जीवों में जीवित अवस्था में इस प्रकार की स्वाभाविक गति नहीं होती है। वायु आदि के माध्यम से ही वे आगे गति कर सकते हैं। बिना माध्यम के एक स्थान से दूसरे स्थान पर काल किये बिना नहीं जा सकते हैं। तेजस्काय एवं वायुकाय में त्रस जीवों की तरह इच्छा पूर्वक गति नहीं होने पर भी स्वाभाविक गति धर्म की साधर्म्यता के कारण यहाँ मूल पाठ में इन्हें 'गति त्रस' कहा गया है।

से किं तं सुहुमतेउक्काइया?

सुहुमतेउक्काइया जहा सुहुम पुढविक्काइया णवरं सरीरगा सूइकलाव संठिया, एगगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेसं तं चेव, से त्तं सुहुमतेउक्काइया॥ २४॥

कठिन शब्दार्थ - **सूइकलाव संठिया** - सूचिकलाप (सूइयों का पिण्ड) संस्थान वाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सूक्ष्म तेजस्कायिकों का क्या स्वरूप है?

सूक्ष्म तेजस्कायिकों का वर्णन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के वर्णन के समान समझना चाहिये। विशेषता यह है कि इनके शरीर का संस्थान सूचि कलाप-सूइयों के समुदाय के आकार का समझना चाहिये। ये जीव एक तिर्यंच गति में ही जाते हैं और तिर्यंच एवं मनुष्य इन दो गतियों से आते हैं। ये जीव प्रत्येक शरीर वाले और असंख्यात हैं। शेष सारा कथन पूर्ववत् (सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों जैसा) है। इस प्रकार सूक्ष्म तेजस्कायिकों का वर्णन हुआ।

विवेचन - सूक्ष्म तेजस्कायिकों के विषय में २३ द्वारों की विचारणा में सब कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान समझना चाहिये। जो अन्तर है वह इस प्रकार हैं - सूक्ष्म तेजस्कायिकों का शरीर संस्थान सूइयों के समुदाय के समान है। सूक्ष्म तेजस्कायिक मर कर तिर्यंच गति में ही उत्पन्न होते हैं, मनुष्य गति में उत्पन्न नहीं होते। सूक्ष्म तेजस्कायिक तिर्यंच गति में जाते हैं और तिर्यंच गति और मनुष्य गति से आकर उत्पन्न होते हैं अतः इन्हें एक गति वाले और दो आगति वाले कहे गये हैं। इस प्रकार सूक्ष्म तेजस्कायिकों का कथन हुआ।

से किं तं बायर तेउक्काइया?

बायर तेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - इंगाले जाले मुम्मुरे जाव सूरकंतमणिणिस्सिए, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥

कठिन शब्दार्थ - **इंगाले** - इंगाल-धूम से रहित जाज्वल्यमान खैर आदि की अग्नि, **जाले** - ज्वाला-अग्नि से संबद्ध लपटें या दीपशिखा, **मुम्मुरे** - मुर्मुर-भोभर-भस्म मिश्रित अग्नि कण, **सूरकंतमणिणिस्सिए** - सूर्यकान्तमणि निसृत-सूर्यकांत मणि से निकली हुई अग्नि।

भावार्थ - बादर तेजस्कायिकों का क्या स्वरूप है?

बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - इंगाल-कोयले की अग्नि, ज्वाला, मुर्मुर की अग्नि यावत् सूर्यकांत मणि से निकली हुई अग्नि और अन्य भी इसी प्रकार की अग्नि। ये बादर तेजस्कायिक संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बादर तेजस्कायिक के अनेक भेद बताये गये हैं। **यावत्** शब्द से अर्चि, अलात, शुद्धाग्नि, उल्का, विद्युत, अशनि, निर्घात, संघर्ष समुत्थित का ग्रहण किया गया है। इनके अर्थ इस प्रकार हैं -

अच्ची (अर्चि) - मूल अग्नि से असंबद्ध ज्वाला।

अलाए (अलात) - किसी काष्ठखंड में अग्नि लगा कर उसे चारों तरफ फिराने पर जो गोल चक्कर सा प्रतीत होता है वह अलात है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुद्धागणि (शुद्धाग्नि) - लोह पिण्ड आदि में प्रविष्ट अग्नि, शुद्धाग्नि है।

उक्का (उल्का) - रेखा सहित विद्युत्।

विज्जू (विद्युत्) - आकाश में चमकने वाली बिजली और कृत्रिम बिजली।

असणी (अशनि) - विद्युत् रहित अग्नि।

णिग्घाए (निर्घात) - कड़क युक्त विद्युत्।

संघरिस समुट्ठिए (संघर्ष समुत्थित) - अरणि काष्ठ की रगड़ से या अन्य रगड़ से उत्पन्न हुई अग्नि और भी इसी प्रकार की अग्नियां बादर तेजस्कायिक हैं।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा - ओरालिए, तेयए, कम्मए, सेसं तं चेव, सरीरगा सूइकलावसंठिया, तिण्णि लेस्सा, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं, तिरियमणुस्सेहिंतो उववाओ, सेसं तं चेव एगगइया दुआगइया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से त्तं तेउक्काइया॥ २५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन तेजस्कायिकों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनके तीन शरीर कहे गये हैं। यथा - औदारिक, तैजस, कार्मण। शेष बादर पृथ्वीकायिकों की तरह समझना चाहिये। विशेषता यह है कि उनके शरीर का संस्थान सूइयों के समुदाय का है। उनमें तीन लेश्याएं हैं। उनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन रात-दिन की है। तिर्यंच गति और मनुष्य गति से वे आते हैं किंतु एक तिर्यंच गति में ही जाते हैं। वे प्रत्येक शरीर वाले और असंख्यात हैं। यह तेजस्कायिकों का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन - बादर तेजस्कायिकों के शरीर आदि २३ द्वारों की विचारणा सूक्ष्म तेजस्कायिकों की तरह ही समझना चाहिये। विशेषता यह है कि इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन दिन रात की है। आहार बादर पृथ्वीकायिकों की तरह समझ लेना चाहिये।

वायुकायिक जीवों का वर्णन

से किं तं वाउक्काइया?

वाउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सुहुम वाउक्काइया य बायर वाउक्काइया य, सुहुम वाउक्काइया जहा तेउकाइया णवरं सरीरा पडागसंठिया एगगइया दुआगइया परित्ता असंखिज्जा, से त्तं सुहुम वाउक्काइया।

कठिन शब्दार्थ - पडागसंठिया - पताका संस्थान वाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - वायुकायिकों का स्वरूप क्या है?

वायुकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सूक्ष्म वायुकायिक और बादर वायुकायिक। सूक्ष्म वायुकायिक, तेजस्कायिक के समान समझने चाहिये। विशेषता यह है कि इनके शरीर का संस्थान पताका (ध्वजा) के आकार का है। वे एक गतिक और दो आगतिक हैं। वे प्रत्येक शरीरी और असंख्यात होते हैं। यह सूक्ष्म वायुकायिकों का निरूपण हुआ।

विवेचन - वायु ही जिनका शरीर है वे जीव वायुकायिक कहे जाते हैं। वायुकायिक जीवों के दो भेद हैं - **१. सूक्ष्म वायुकायिक** - जिन वायुकाय के जीवों के सूक्ष्म नाम कर्म का उदय है और **२. बादर वायुकायिक** - जिन वायुकायिक जीवों के बादर नाम कर्म का उदय है। सूक्ष्म वायुकायिकों का वर्णन सूक्ष्म तेजस्कायिकों के समान है। विशेषता यह है कि सूक्ष्म वायुकायिक जीवों के शरीर पताका (ध्वजा) के आकार के हैं।

से किं तं बायर वाउक्काइया?

बायर वाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - पाईणवाए पडीणवाए, एवं जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥

कठिन शब्दार्थ - **पाईणवाए** - प्राचीन (पूर्व) वायु, **पडीणवाए** - पश्चिम वायु।

भावार्थ - बादर वायुकायिकों के कितने भेद कहे गये हैं?

बादर वायुकायिकों के अनेक भेद कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - पूर्वी वायु, पश्चिमी वायु और इसी प्रकार की अन्य वायु. वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - बादर वायुकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं।

प्रज्ञापना सूत्र में वर्णित बादर वायुकायिक के भेद इस प्रकार हैं -

१. पाईणवाए (पूर्वीवात) - पूर्व दिशा से आने वाली हवा (वायु)।

२. पडीणवाए (पश्चिम वात) - पश्चिम से आने वाली हवा।

३. दाहिणवाए (दक्षिण वात) - दक्षिण दिशा से आने वाली हवा।

४. उदिणवाए (उदीचिन वात) - उत्तर दिशा से आने वाली हवा।

५. उड्ढवाए (ऊर्ध्व वात) - ऊंची दिशा में बहने वाली हवा।

६. अहोवाए (अधोवात) - नीची दिशा में बहने वाली हवा।

७. तिरियवाए (तिर्यक् वात) - तिरछी दिशा में बहने वाली हवा।

८. विदिसिवाए (विदिशा वात) - विदिशाओं में बहने वाली हवा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. **वाउब्भामे (वातोद्भ्रम)** - अनियत दिशाओं में बहने वाली हवा।

१०. **वाउक्कलिया (वातोत्कलिका)** - समुद्र के समान तेज बहने वाली तूफानी हवा।

११. **मंडलियावाए (मंडलिका वात)** - वातौली, चक्करदार हवा।

१२. **उक्कलियावाए (उत्कलिका वात)** - तेज आंधियों से मिश्रित हवा।

१३. **गुंजावाए (गुंजावात)** - सनसनाती हुई हवा।

१४. **झंझावाए (झंझावात)** - वर्षा के साथ चलने वाली तेज हवा, अंधड़।

१५. **संवट्टगवाए (संवर्तक वात)** - प्रलयकाल में चलने वाली हवा।

१६. **घणवाए (घनवात)** - सघन (ठोस) वायु, रत्नप्रभा आदि के नीचे रही हुई वायु।

१७. **तणुवाए (तनुवात)** - घनवात के नीचे रही हुई पतली वायु।

१८. **सुद्धवाए (शुद्धवात)** - मन्दवायु या मशक आदि में भरी हुई हवा।

और भी इसी प्रकार की हवाएं बादर वायुकायिक हैं। यहां पर बादर वायुकायिकों में सचित्त वायुओं का ही ग्रहण हुआ है। आक्सीजन आदि अचित्त वायुओं का ग्रहण नहीं समझना चाहिये। ये दो प्रकार के हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा - ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए, सरीरगा पडागासंठिया, चत्तारि समुग्घाया - वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्विए समुग्घाए आहारो णिव्वाघाएणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, उववाओ देवमणुय णेरइएसु णत्थि, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं, सेसं तं चेव एगगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो! से त्तं बायर वाउक्काइया, सेत्तं वाउक्काइया ॥ २६ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन बादर वायुकायिक जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं।

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के चार शरीर कहे गये हैं। यथा - औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। उनके शरीर पताका (ध्वजा) के आकार के हैं। उनके चार समुद्घात होते हैं - वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात और वैक्रिय समुद्घात। वे निर्व्याघात की अपेक्षा छहों दिशाओं के पुद्गलों का आहार करते हैं और व्याघात होने पर कदाचित् तीन दिशाओं का, कदाचित् चार दिशाओं का, कदाचित् पांच दिशाओं के पुद्गलों का आहार ग्रहण करते हैं। बादर वायुकायिक जीव देवगति, मनुष्य गति और नरक गति में उत्पन्न नहीं होते। उनकी स्थिति जघन्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है। शेष पूर्ववत् समझना चाहिये। वे एकगतिक और दो आगतिक होते हैं। वे प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! यह बादर वायुकायिक का कथन हुआ। इस प्रकार वायुकायिक का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन - शरीर आदि २३ द्वारों की विचारणा में बादर वायुकायिक के औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण ये चार शरीर होते हैं। इनके शरीर का संस्थान पताका के जैसा होता है। इनके चार समुद्घात होते हैं - वेदनीय समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात और वैक्रिय समुद्घात। बादर वायुकायिक जीवों का आहार व्याघात के अभाव में छहों दिशाओं में से आगत पुद्गल द्रव्यों का होता है क्योंकि ये लोक के मध्य में स्थित होते हैं। जब व्याघात होता है उस समय इनका आहार कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से आगत पुद्गल द्रव्यों का होता है। वहां व्याघात लोक निष्कुट रूप ही है। क्योंकि बादर वायुकायिक लोक निष्कुट आदि में भी पाये जाते हैं। इनका उपपात देव, मनुष्य और नैरयिक में नहीं होता, केवल तिर्यंच गति में ही होता है। बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन हजार वर्षों की होती है। शरीर, संस्थान, समुद्घात, आहार, उत्पाद, स्थिति इनके सिवाय शेष द्वारों का कथन सूक्ष्म वायुकायिकों के समान ही है। ये एक गतिक और दो आगतिक होते हैं क्योंकि ये तिर्यंच गति में ही जाते हैं और तिर्यंच गति और मनुष्य गति से आकर ही जन्म धारण करते हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! प्रत्येक शरीरी बादर वायुकायिक असंख्यात हैं। इस प्रकार बादर वायुकायिक का निरूपण हुआ। इस के साथ ही वायुकायिक का वर्णन पूरा हुआ।

औदारिक त्रस के भेद

से किं तं ओराला तसा पाणा?

ओराला तसा पाणा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया पंचेंदिया॥ २७॥

भावार्थ - औदारिक त्रस प्राणी का क्या स्वरूप है?

औदारिक त्रस प्राणी चार प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

विवेचन - जिन जीवों के त्रस नाम कर्म का उदय हो वे त्रस कहलाते हैं। औदारिक का अर्थ है- स्थूल, प्रधान। मुख्य रूप से बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव ही त्रस कहलाते हैं अतः उनके लिये औदारिक त्रस कहा गया है। तेजस्काय और वायुकाय गति त्रस कहलाते हैं। उनसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिन्नता बताने के लिये ही '**ओराला तसा**' शब्द का प्रयोग किया गया है। औदारिक त्रस के चार भेद इस प्रकार हैं -

१. बेइन्द्रिय - जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय अर्थात् शरीर और मुख ये दो इन्द्रियां होती है उन्हें बेइन्द्रिय कहते हैं जैसे शंख, सीप, कोडी, लट, अलसिया, कृमि आदि।

२. तेइन्द्रिय - जिसके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय अर्थात् शरीर, मुख और नाक ये तीन इन्द्रियाँ होती है उनको तेइन्द्रिय कहते हैं। जैसे जूं, लीख, खटमल, कुंथुआ आदि।

३. चउरिन्द्रिय - जिसके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुइन्द्रिय अर्थात् शरीर, मुख, नाक और आंख ये चार इन्द्रियां होती है उनको चौइन्द्रिय कहते हैं। जैसे - मक्खी, डांस, मच्छर, भंवरा, टिड्डी आदि।

४. पंचेन्द्रिय - जिसके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय अर्थात् शरीर, मुख, नाक, आंख और कान ये पांचों इन्द्रियां होती हैं उनको पंचेन्द्रिय कहते हैं। जैसे - मनुष्य, नैरयिक, देव, हाथी, बैल, घोड़ा आदि।

बेइन्द्रिय जीवों का वर्णन

से किं तं बेइंदिया?

बेइंदिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - पुलाकिमिया जाव समुद्दलिक्खा जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

भावार्थ - बेइन्द्रिय जीवों का क्या स्वरूप है?

बेइन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - पुलाकृमिक यावत् समुद्रलिक्षा, अन्य भी इसी प्रकार के जीव बेइन्द्रिय हैं। ये संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बेइन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं।

प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार बेइन्द्रिय जीवों के भेद इस प्रकार हैं -

१. पुलाकिमिया (पुलाकृमि) - मल द्वार में पैदा होने वाले कृमि (कीड़े)

२. कुच्छिकिमिया (कुक्षि कृमि) - कुक्षि (उदर-पेट) में उत्पन्न होने वाले कृमि।

३. गण्डूलगा (गण्डोयलक) - गिंडोला।

४. गोलोमा (गोलोम) - गायों के रोम में उत्पन्न होने वाले कृमि।

५. नेउरा (नुपूर) ६. सोमगला (सौमंगल) ७. वंसीमुहा (वंशीमुख) ८. सुइमुहा (सूचिमुख) ९. गोजलोया (गोजलौका) १०. जलोया (जलौका-जौंक) ११. जलाउया (जालायुष्क)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१२. संखा (शंख) १३. संखणगा (शंखनक) १४. घुल्ला (घोघा) १५. खुल्ला (खुल्ला-समुद्री आकार के छोटे शंख) १६. वराडा (वराटा-कोटियां) १७. सोत्तिया (सौत्रिक) १८. मोत्तिया (मौत्रिक) १९. कल्लुया २०. वासा २१. एगतोवत्ता (एकावर्त) २२. दुहओवत्ता (द्विआवर्त) २३. णंदियावत्ता (नन्दिकावर्त्त) २४. संबुक्का (शम्बूक) २५. माइवाहा (मातृवाह) २६. सिप्पिसंपुडा (सिप्पिसंपुट-सीपडियां) २७. चंदणा (चंदनक-अक्ष-पासा) २८. समुद्दलिक्खा (समुद्र लिक्षा)।

ये शंख तथा अन्य इसी प्रकार के मृत कलेवर आदि में उत्पन्न होने वाले कृमि आदि बेइन्द्रिय जीव होते हैं। इनके दो भेद हैं - पर्याप्त और अपर्याप्त।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा - ओरालिए तेयए कम्मए।

तेसि णं भंते! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलासंखेज्जइभागं उक्कोसेणं बारस जोयणाइं, छेवट्ठ संघयणा, हुंडसंठिया, चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णाओ, तिण्णि लेसाओ, दो इंदिया, तओ समुग्घाया-वेयणा कसाया मारणंतिया, णोसण्णी असण्णी, णपुंसकवेयगा, पंच पज्जत्तीओ, पंच अपज्जत्तीओ, सम्मदिट्ठी वि मिच्छादिट्ठी वि णो सम्मामिच्छादिट्ठी, णो चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी णो ओहिदंसणी णो केवलदंसणी।

तेणं भंते! जीवा किं णाणी अण्णाणी?

गोयमा! णाणी वि अण्णाणी वि, जे णाणी ते णियमा दुण्णाणी तं जहा - आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी य, जे अण्णाणी ते णियमा दुअण्णाणी-मइ अण्णाणी य सुयअण्णाणी य, णो मणजोगी वइजोगी कायजोगी, सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि, आहारो णियमा छद्दिसिं, उववाओ तिरियमणुस्सेसु, णेरइयदेव असंखेज्जवासाउयवज्जेसु, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि, समोहया वि मरंति असमोहया वि मरंति, कहिं गच्छंति?

णेरइयदेव असंखेज्जवासाउयवज्जेसु गच्छंति - दुगइया दुआगइया, परित्ता असंखेज्जा, से त्तं बेइंदिया॥२८॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं यथा - औदारिक, तैजस और कार्मण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के शरीर की जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट बारह योजन की अवगाहना है। उन जीवों के सेवार्त्तक संहनन और हुंडक संस्थान होता है। उनके चार कषाय, चार संज्ञाएं, तीन लेश्याएं और दो इन्द्रियाँ होती हैं। उनके तीन समुद्घात होते हैं - १. वेदनीय २. कषाय और ३. मारणांतिक। ये जीव संज्ञी नहीं असंज्ञी हैं, नपुंसक वेद वाले हैं, इनके पांच पर्याप्तियाँ और पांच अपर्याप्तियाँ होती हैं। ये सम्यग्दृष्टि भी होते हैं मिथ्यादृष्टि भी होते हैं किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) नहीं होते हैं। ये अवधिदर्शन वाले नहीं होते, चक्षुदर्शन वाले नहीं होते, अचक्षुदर्शन वाले होते हैं, केवलदर्शन वाले नहीं होते।

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये जीव ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो जीव ज्ञानी हैं वे नियम से दो ज्ञान वाले हैं - मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी। जो अज्ञानी हैं वे नियम से दो अज्ञान वाले हैं - मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी। ये मनोयोगी नहीं हैं वचनयोगी हैं और काययोगी हैं। ये जीव साकारउपयोग वाले भी हैं और अनाकार उपयोग वाले भी हैं। ये जीव नियम से छहों दिशाओं के पुद्गलों का आहार करते हैं। इनका उपपात नैरयिक, देव और असंख्यात वर्ष की आयु वालों को छोड़कर शेष तिर्यंचों और मनुष्यों से होता है। इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष की होती है। ये मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! ये मर कर कहां जाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये जीव नैरयिक, देव और असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों और मनुष्यों को छोड़ कर शेष तिर्यंचों और मनुष्यों में जाते हैं अतएव ये द्विगतिक और द्विआगतिक हैं। ये प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। यह बेइन्द्रिय जीवों का निरूपण हुआ।

विवेचन - बेइन्द्रिय जीवों के २३ द्वार इस प्रकार हैं -

१. शरीर द्वार - बेइन्द्रिय जीवों के तीन शरीर होते हैं - औदारिक, तैजस और कार्मण।

२. अवगाहना द्वार - बेइन्द्रिय जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट बारह योजन की होती है।

३. संहनन द्वार - इन जीवों में एक सेवार्त्तक संहनन होता है।

४. संस्थान द्वार - इनमें एक हुंडक संस्थान होता है।

५. कषाय द्वार - इनमें चारों कषाय पाये जाते हैं।

६. संज्ञा द्वार - इनमें चारों संज्ञाएं पाई जाती है।

७. लेश्या द्वार - इनमें तीन लेश्याएं पाती हैं - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. इन्द्रिय द्वार - बेइन्द्रिय जीवों के दो इन्द्रियां हैं - १. स्पर्शनेन्द्रिय और २. रसनेन्द्रिय।

९. समुद्घात द्वार - इनमें तीन समुद्घात पाते हैं - १. वेदनीय २. कषाय और ३. मारणांतिक।

१०. संज्ञी द्वार - ये जीव असंज्ञी होते हैं, संज्ञी नहीं।

११. वेद द्वार - ये जीव नपुंसक वेदी होते हैं।

१२. पर्याप्ति द्वार - बेइन्द्रिय जीवों में पांच पर्याप्तियाँ, पर्याप्त जीवों की अपेक्षा और पांच अपर्याप्तियाँ, अपर्याप्त जीवों की अपेक्षा होती हैं।

१३. दृष्टि द्वार - बेइन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं किंतु मिश्रदृष्टि नहीं होते। सास्वादन सम्यक्त्व वाले कुछ जीव मर कर बेइन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं इस अपेक्षा से अपर्याप्त अवस्था में थोड़े समय के लिये सास्वादन सम्यक्त्व संभव होने से वे सम्यग्दृष्टि कहे जाते हैं। शेष समय में बेइन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। भव स्वभाव के कारण उनमें मिश्रदृष्टि नहीं पाई जाती है और कोई मिश्रदृष्टि वाला जीव भी बेइन्द्रिय में उत्पन्न नहीं होता है। क्योंकि आगम में कहा है कि **'ण सम्ममिच्छो कुणइ कालं'** - मिश्रदृष्टि वाला जीव उस स्थिति में नहीं मरता है।

१४. दर्शन द्वार - बेइन्द्रिय जीवों में एक अचक्षुदर्शन ही पाता है, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन नहीं पाता है।

१५. ज्ञान द्वार - बेइन्द्रिय जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। सास्वादन सम्यक्त्व की अपेक्षा ये ज्ञानी हैं। इनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान पाता है। मिथ्यादृष्टित्व की अपेक्षा ये अज्ञानी हैं। ये मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी हैं।

१६. योग द्वार - ये मनोयोगी नहीं है। वचनयोगी और काययोगी हैं।

१७. उपयोग द्वार - ये साकार उपयोग वाले भी हैं और अनाकार उपयोग वाले भी हैं।

१८. आहार द्वार - बेइन्द्रिय जीव त्रस नाडी में ही होते हैं, अतएव कोई व्याघात नहीं होता निर्व्याघात की अपेक्षा वे नियमा छहों दिशाओं के पुद्गलों का आहार करते हैं।

१९. उपपात द्वार - बेइन्द्रिय जीव देव, नैरयिक और असंख्यात वर्षायुष्क तिर्यंचों और मनुष्यों को छोड़ कर शेष तिर्यंचों और मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं।

२०. स्थिति द्वार - इन जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट बारहवर्ष की होती है।

२१. समवहत द्वार - ये समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

२२. च्यवन द्वार - ये जीव मर कर देव, नैरयिक और असंख्यात वर्षों की आयु वाले तिर्यंचों मनुष्यों को छोड़ कर शेष तिर्यंचों मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

२३. गति आगति द्वार - बेइन्द्रिय जीव दो गति (मनुष्य तिर्यंच) में जाते हैं और दो गति से आते हैं।

बेइन्द्रिय जीव प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। इस प्रकार बेइन्द्रिय जीवों का वर्णन पूरा हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेइन्द्रिय जीवों का वर्णन

से किं तं तेइंदिया?

तेइंदिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - ओवइया रोहिणिया जाव हत्थिसोंडा जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य॥

भावार्थ - तेइन्द्रिय जीवों का क्या स्वरूप हैं?

तेइन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - ओपयिक, रोहिणीक यावत् हस्तिशौंड तथा अन्य भी इसी प्रकार के तेइन्द्रिय जीव हैं। ये जीव दो प्रकार के हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - तेइन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के हैं। प्रज्ञापना सूत्र में इनके नाम इस प्रकार दिये हैं - औपयिक, रोहिणीक, कुंथु (कुंथुआ), पिपीलिका (चींटी), उद्देशक, उद्देहिका (उदई-दीमक), उत्कलिक, उत्पाद, उत्कट, तृणाहार, काष्ठाहार (घुन), मालुक, पत्राहार, तृणवृन्तिक, पत्रवृन्तिक, पुष्पवृन्तिक, फलवृन्तिक, बीजवृन्तिक, तेंदुरणमज्जिक, त्रपुषमिंजिक, कार्पासस्थिमिंजक, हिल्लिक, झिल्लिक, झिंगिर, (झींगुर), किगिरिट, बाहुक, लघुक, सुभग, सौवस्तिक, शुकवृत्त, इन्द्रकायिक, इन्द्रगोपक (इन्द्रगोप-रेशमी कीडा) उरुलुंचक, कुस्थलवाहक, यूका (जूं), हालाहल, पिशुक (पिस्सु या खटमल) शतपादिका (गजाई), गोम्ही (कानखजूरा) और हस्तिशौण्ड। इसी प्रकार के अन्य जीव तेइन्द्रिय हैं। तेइन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

तहेव जहा बेइंदियाणं णवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं तिण्णिगाउयाइं, तिण्णि इंदिया, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगूणपण्ण राइंदियाइं, सेसं तहेव दुगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं तेइंदिया॥ २९॥

भावार्थ - इस प्रकार तेइन्द्रिय का कथन पूर्वोक्त बेइन्द्रिय के समान समझना चाहिये। विशेषता यह है कि तेइन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट शरीरावगाहना तीन कोस की है, उनके तीन इन्द्रियाँ हैं। स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट उनपचास रात दिन की है। शेष सारा वर्णन पूर्ववत् यावत् दो गति वाले, दो आगति वाले प्रत्येक शरीरी और असंख्यात कहे गये हैं। यह तेइन्द्रियों का कथन हुआ।

विवेचन - तेइन्द्रिय के २३ द्वारों का कथन भी बेइन्द्रियों के समान है किंतु निम्न द्वारों में अंतर हैं -

१. अवगाहना द्वार - तेइन्द्रिय जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोस की है।

२. इन्द्रिय द्वार - इन जीवों के तीन इन्द्रियाँ होती हैं।

३. स्थिति द्वार - इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ४९ रात दिन की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेष सारा वर्णन समान है यावत् वे दो गति वाले और दो आगति वाले हैं। प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। इस प्रकार तेइन्द्रिय जीवों का निरूपण हुआ।

चउरिन्द्रिय जीवों का वर्णन

से किं तं चउरिंदिया?

चउरिंदिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - अंधिया पोत्तिया जाव गोमयकीडा, जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य॥

भावार्थ - चउरिन्द्रिय जीवों का क्या स्वरूप है?

चउरिन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - अंधिक, पुत्रिक यावत् गोमयकीट और इसी प्रकार के अन्य जीव चउरिन्द्रिय हैं। चउरिन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - १. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक।

विवेचन - चउरिन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। प्रज्ञापना सूत्र में चउरिन्द्रिय जीवों के नाम इस प्रकार दिये हैं - अंधिक, पौत्रिक (नैत्रिक) मक्खी, मशक (मच्छर), कीट (टिड्डी), पतंग, ढिंकुण कुक्कुड, कुक्कुह, नंदावर्त्त, श्रृंगिरिट, कृष्णपत्र, नीलपत्र, लोहितपत्र, हरित पत्र, शुक्ल पत्र, चित्र पक्ष, विचित्र पक्ष, ओभंजलिका, जलचारिक गंभीर, नीनिक, तंतव, अक्षिरोट, अक्षिवेध, सारंग, नेवल, दोला, भ्रमर, भरिली, जरुला, तोट्ट, बिच्छू, पत्रवृश्चिक, छाणवृश्चिक, जलवृश्चिक, प्रियंगाल, कनक और गोमयकीट। इन चउरिन्द्रिय जीवों के भेदों में कुछ तो प्रसिद्ध हैं ही। शेष देश विशेष या सम्प्रदाय से जानने चाहिये। इसी प्रकार के अन्य प्राणी भी चतुरिन्द्रिय समझने चाहिये। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद हैं।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता तं चेव णवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं, इंदिया चत्तारि, चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी ठिई उक्कोसेणं छम्मासा। सेसं जहा तेइंदियाणं जाव असंखेज्जा पण्णत्ता। से त्तं चउरिंदिया॥ ३०॥

भावार्थ प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं। इस प्रकार पूर्ववत् कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि उनके शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना चार कोस की है, उनके चार इन्द्रियाँ हैं। वे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी हैं। उनकी स्थिति उत्कृष्ट छह मास की है। शेष वर्णन तेइन्द्रिय जीवों की तरह समझना चाहिये यावत् वे असंख्यात कहे गये हैं। यह चउरिन्द्रिय जीवों का निरूपण हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - चउरिन्द्रिय जीवों के २३ द्वारों का वर्णन तेइन्द्रिय जीवों की तरह समझना चाहिये। जो अन्तर है वह इस प्रकार हैं -

१. अवगाहना द्वार - चउरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना उत्कृष्ट चार कोस की है।

२. इन्द्रिय द्वार - चउरिन्द्रिय जीवों के चार इन्द्रियाँ होती हैं।

३. दर्शन द्वार - ये चक्षुदर्शन वाले और अचक्षुदर्शन वाले हैं।

४. स्थिति द्वार - इनकी उत्कृष्ट स्थिति छह मास की है।

शेष सारा वर्णन तेइन्द्रिय जीवों के समान है यावत् वे असंख्यात कहे गये हैं। इस प्रकार चउरिन्द्रिय जीवों का कथन पूर्ण हुआ॥

पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन

से किं तं पंचेंदिया?

पंचेंदिया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - णेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा देवा॥ ३१॥

भावार्थ - पंचेन्द्रिय जीवों का क्या स्वरूप हैं?

पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. नैरयिक २. तिर्यंचयोनिक ३. मनुष्य और ४. देव।

नैरयिक जीवों का वर्णन

से किं तं णेरइया?

णेरइया सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा - रयणप्पभापुढवि णेरइया जाव अहे सत्तम पुढवि णेरइया, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

भावार्थ - प्रश्न - नैरयिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - नैरयिक सात प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक। ये नैरयिक जीव संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - नैरयिक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - **"तत्र अयम्-इष्टफलं कर्म, निर्गतं अयं येभ्यस्तेनिरया नरकावासाः तेषु नरकावासेषु भवा इति नैरयिकाः" अर्थात्** - निकल गया है इष्टफल जिनमें से वे निरय अर्थात् नरकावास हैं। नरकावासों में उत्पन्न होने वाले जीव नैरयिक हैं। नैरयिक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं - १. रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक २. शर्करा प्रभा पृथ्वी नैरयिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. वालुकाप्रभा पृथ्वी नैरयिक ४. पंकप्रभा पृथ्वी नैरयिक ५. धूमप्रभा पृथ्वी नैरयिक ६. तमःप्रभा पृथ्वी नैरयिक और ७. अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक। नैरयिक जीव संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - १. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा - वेउव्विए, तेयए, कम्मए।

तेसि णं भंते! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तं जहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं, तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं धणुसहस्सं।

कठिन शब्दार्थ - **भवधारणिज्जा** - भवधारणीय, **उत्तरवेउव्विया** - उत्तरवैक्रिय।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! नैरयिक जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं। यथा - वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों की शरीर की अवगाहना दो प्रकार की कही गयी है। यथा - भवधारणीय और उत्तर वैक्रिय। जो भवधारणीय अवगाहना है वह जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट से पांच सौ धनुष। जो उत्तर वैक्रिय अवगाहना है वह जघन्य से अंगुल का संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन की है।

तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरा किं संघयणी पण्णत्ता?

गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा, अकंता, अप्पिया, असुभा, अमणुण्णा, अमणामा ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति॥

कठिन शब्दार्थ - **णेवट्ठी** - हड्डी नहीं है, **छिरा** - नाड़ी, **ण्हारु** - स्नायु, **अणिट्ठा** - अनिष्ट-जिसकी इच्छा न की जाय, **अकंता** - अकान्त-अकमनीय जो सुहावने न हों, **अप्पिया** - अप्रिय-जो दिखते ही अरुचि उत्पन्न करें, **असुभा** - अशुभ-खराब वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाले, **अमणुण्णा** - अमनोज्ञ-जो मन में आह्लाद उत्पन्न नहीं करते, **अमणामा** - अमनाम-जिनके प्रति रुचि उत्पन्न न हो, **संघायत्ताए** - संघात रूप से, **परिणमंति** - परिणाम को प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! उन जीवों के शरीर का संहनन कैसा है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के छह प्रकार के संहननों में से एक भी संहनन नहीं है क्योंकि उनके शरीर में न तो हड्डी है, न नाड़ी है, न स्नायु है। जो पुद्‌गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनाम होते हैं वे उनके शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं।

तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरा किं संठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुंडसंठिया पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के शरीर का संस्थान कौनसा है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - भवधारणीय और उत्तर वैक्रिय। जो भवधारणीय शरीर वाले हैं वे हुंड संस्थानी हैं और जो उत्तर वैक्रिय शरीर वाले हैं वे भी हुंड संस्थान वाले हैं।

चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णाओ, तिण्णि लेसाओ, पंचेंदिया, चत्तारि समुग्घाया आइल्ला, सण्णी वि असण्णी वि, णपुंसगवेया, छप्पज्जत्तीओ छ अपज्जत्तीओ, तिविहा दिट्ठी, तिण्णि दंसणा, णाणी वि अण्णाणी वि, जे णाणी ते णियमा तिण्णाणी, तं जहा - आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी, जे अण्णाणी, ते अत्थेगइया दुअण्णाणी अत्थेगइया तिअण्णाणी, जे य दुअण्णाणी ते णियमा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य, जे तिअण्णाणी ते णियमा मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य विभंगणाणी य, तिविहे जोगे, दुविहे उवओगे, छद्दिसिं आहारो, ओसण्णं कारणं पडुच्च वण्णओ कालाइं जाव आहारमाहारेंति, उववाओ तिरियमणुस्सेसु ठिई जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, दुविहा मरंति, उव्वट्टणा भाणियव्वा जओ आगया णवरि संमुच्छिमेसु पडिसिद्धो, दुगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो! से त्तं णेरइया॥ ३२॥

भावार्थ - उन नैरयिक जीवों के चार कषाय, चार संज्ञाएं, तीन लेश्याएं, पांच इन्द्रियां, आरंभ के चार समुद्‌घात होते हैं। वे जीव संज्ञी भी हैं और असंज्ञी भी हैं। वे नपुंसकवेदी हैं। उनके छह पर्याप्तियाँ और छह अपर्याप्तियाँ होती हैं। वे तीन दृष्टि वाले और तीन दर्शन वाले होते हैं। वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले हैं - मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी। जो अज्ञानी हैं उनमें से कोई दो अज्ञान वाले हैं और कोई तीन अज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नियम से मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी हैं। जो तीन अज्ञान वाले हैं वे नियम से मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी हैं। उनमें तीन योग दो उपयोग हैं। वे छह दिशाओं से आगत पुद्गलों का आहार करते हैं। प्रायः करके वे वर्ण से काले आदि पुद्गलों का आहार करते हैं। वे तिर्यंचों और मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं। उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। वे समवहत और असमवहत दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं। वे मरकर गर्भज तिर्यंच एवं मनुष्य में जाते हैं, सम्मूर्च्छिमों में नहीं जाते हैं अतः हे आयुष्मन् श्रमण! वे दो गति वाले, दो आगति वाले, प्रत्येक शरीरी और असंख्यात कहे गये हैं। यह नैरयिकों का निरूपण हुआ।

विवेचन-प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक जीवों का २३ द्वारों से निरूपण किया गया है जो इस प्रकार हैं-

१. शरीर द्वार - नैरयिक जीवों में भव स्वभाव से ही तीन शरीर पाये जाते हैं - वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

२. अवगाहना द्वार - नैरयिक जीवों के शरीर की अवगाहना दो प्रकार की कही गयी है - **१. भवधारणीय** - जो अवगाहना जन्म से होती हैं वह भवधारणीय है अथवा भव के प्रभाव से होने वाली अर्थात् उत्पाद समय में होने वाली अवगाहना भवधारणीय अवगाहना कहलाती है। **२. उत्तरवैक्रिय**- जो भवान्तर के वैरीभूत नैरयिक को मारने के लिये उत्तरकाल में विचित्र रूपों में बनाई जाती है वह उत्तर वैक्रिय अवगाहना है।

पहली नारकी से सातवीं नारकी तक के जीवों की भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पहली नारकी की ७ $\frac{३}{४}$ धनुष छह अंगुल की, दूसरी नारकी की १५ $\frac{१}{२}$ धनुष १२ अंगुल की, तीसरी नारकी की ३१ $\frac{१}{४}$ धनुष, चौथी नारकी की ६२ $\frac{१}{२}$ धनुष, पांचवीं नारकी की १२५ धनुष, छठी नारकी की २५० धनुष और सातवीं नारकी की ५०० धनुष होती है। उत्तर वैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट अपनी अपनी अवगाहना से दुगुनी। जैसे सातवीं नारकी के भवधारणीय शरीर की अवगाहना ५०० धनुष की और उत्तर वैक्रिय करे तो १००० धनुष की।

३. संहनन द्वार - नैरयिकों में छह प्रकार के संहननों में से कोई भी संहनन नहीं होता क्योंकि उनके शरीर में न तो हड्डियाँ होती है और न शिराएं और स्नायु ही होती है। जो पुद्गल अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनाम होते हैं वे उन नैरयिकों के शरीर रूप में परिणत होते हैं।

४. संस्थान द्वार - नैरयिकों के भवधारणीय शरीर और उत्तर वैक्रिय शरीर में एक हुण्डक संस्थान है।

५. कषाय द्वार - नैरयिकों में चारों ही कषाय होते हैं।

६. संज्ञा द्वार - नैरयिकों में चारों ही संज्ञाएं होती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. लेश्या द्वार - पहली और दूसरी नारकी में एक कापोत लेश्या है। तीसरी नारकी में कापोत और नील लेश्या। चौथी नारकी में एक नील लेश्या। पांचवीं नारकी में नील और कृष्ण लेश्या। छठी नारकी में कृष्ण लेश्या और सातवीं नारकी में परम कृष्ण लेश्या होती है।

८. इन्द्रिय द्वार - नैरयिकों में पांचों इन्द्रियाँ होती है।

९. समुद्घात द्वार - नैरयिकों में चार समुद्घात होते हैं - वेदनीय, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय।

१०. संज्ञी द्वार - नैरयिक जीव संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। जो गर्भज जीव मरकर नैरयिक होते हैं वे संज्ञी कहे जाते हैं और जो सम्मूर्च्छिमों से आकर उत्पन्न होते हैं वे असंज्ञी कहलाते हैं। असंज्ञी जीव पहली नरक-रत्नप्रभा में ही उत्पन्न होते हैं आगे के नरकों में नहीं। कहा भी है -

असण्णी खलु पढमं दोच्चं व सिरीसवा तइय पक्खी।
सीहा जंति चउत्थिं उरगा पुण पंचमिं पुढविं॥
छट्ठिं व इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं।
एसो परमोवाओ बोद्धव्वो नरय पुढवीसु॥

- असंज्ञी जीव पहली नरक तक, सरीसृप दूसरी नरक तक, पक्षी तीसरी नरक तक, सिंह चौथी नरक तक, उरग (सर्प आदि) पांचवीं नरक, स्त्री छठी नरक तक तथा मनुष्य और मच्छ सातवीं नरक तक उत्पन्न होते हैं।

११. वेद द्वार - नैरयिक जीव नपुंसकवेदी होते हैं।

१२. पर्याप्ति द्वार - नैरयिकों में छह पर्याप्तियाँ और छह अपर्याप्तियाँ होती है।

१३. दृष्टि द्वार - नैरयिक जीवों में तीनों दृष्टियाँ पाती है।

१४. दर्शन द्वार - नैरयिकों में दर्शन पावे तीन - १. चक्षुदर्शन २. अचक्षुदर्शन और ३. अवधिदर्शन।

१५. ज्ञान द्वार - नैरयिक जीव ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले होते हैं - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। जो अज्ञानी होते हैं वे मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी होते हैं।

जो नैरयिक असंज्ञी हैं वे अपर्याप्त अवस्था में दो अज्ञान वाले होते हैं क्योंकि असंज्ञी से आकर उत्पन्न होने वाले नैरयिकों में तथाविध बोध की मंदता से अपर्याप्त अवस्था में अव्यक्त अवधि की भी प्राप्ति नहीं होती। पर्याप्त अवस्था में असंज्ञी तीन अज्ञान वाले होते हैं। संज्ञी नैरयिक तो पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में तीन अज्ञान वाले ही होते हैं।

१६. योग द्वार - नैरयिक जीवों में तीनों ही योग पाते हैं - १. मन २. वचन और ३. काया।

१७. उपयोग द्वार - नैरयिक जीव साकार और अनाकार दोनों उपयोग वाले हैं उनमें तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन पाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१८. आहार द्वार - नैरयिक जीवों का आहार छह दिशाओं में से आगत पुद्गल द्रव्यों का होता है क्योंकि नैरयिक जीव लोक के मध्य में होते हैं। लोक के निष्कुट (किनारे) पर नहीं होने के कारण उनके व्याघात नहीं होता अतः वे छह दिशाओं के अशुभ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं।

१९. उपपात द्वार - नैरयिक जीवों का उपपात तिर्यंचों से और मनुष्यों से होता है किंतु असंख्यातवर्ष की आयु वाले तिर्यंचों और मनुष्यों में से नहीं होता है।

२०. स्थिति द्वार - नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम है। अलग अलग नरकों के नैरयिकों की स्थिति इस प्रकार हैं -

१. पहली नरक के नैरयिक की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट १ सागरोपम की।
२. दूसरी नरक के नैरयिक की स्थिति जघन्य एक सागरोपम उत्कृष्ट ३ सागरोपम की।
३. तीसरी नरक के नैरयिक की स्थिति जघन्य ३ सागरोपम उत्कृष्ट ७ सागरोपम की।
४. चौथी नरक के नैरयिक की स्थिति जघन्य ७ सागरोपम उत्कृष्ट १० सागरोपम की।
५. पांचवीं नरक के नैरयिक की स्थिति जघन्य १० सागरोपम उत्कृष्ट १७ सागरोपम की।
६. छठी नरक के नैरयिक की स्थिति जघन्य १७ सागरोपम उत्कृष्ट २२ सागरोपम की।
७. सातवीं नरक के नैरयिक की स्थिति जघन्य २२ सागरोपम उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की।

२१. समवहत द्वार - नैरयिक जीव मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

२२. उद्वर्तना द्वार - नैरयिक पर्याय से निकल कर नैरयिक जीव असंख्यात वर्ष वाले तिर्यंचों और मनुष्यों को छोड़ कर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं किंतु सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते।

२३. गति आगति द्वार - नैरयिक जीव दो गतियों से आते हैं और दो गतियों में ही जाते हैं - तिर्यंच गति और मनुष्य गति।

नैरयिक जीव प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। यह नैरयिकों का वर्णन हुआ।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन

से किं तं पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्ख जोणिया य, गब्भवक्कंतिय पंचेंदियतिरिक्ख जोणिया य॥ ३३॥

भावार्थ - **प्रश्न** - तिर्यंच पंचेन्द्रियों का क्या स्वरूप है?

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

उत्तर - तिर्यंच पंचेन्द्रिय दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय।

सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन

से किं तं सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्ख जोणिया?

सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - जलयरा, थलयरा, खहयरा॥ ३४॥

भावार्थ - प्रश्न - सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - जलचर, स्थलचर और खेचर।

विवेचन - माता के संयोग बिना ही जिन प्राणियों का उत्पाद है वह संमूर्च्छन है इस संमूर्च्छन से जो उत्पन्न होते हैं वे सम्मूर्च्छिम हैं। ऐसे सम्मूर्च्छिम जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक हैं वे सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक हैं। सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - **१. जलचर** - जो जल में चलते हैं वे जलचर हैं, जैसे मत्स्य आदि। **२. स्थलचर** - जो स्थल में चलते हैं वे स्थलचर है, जैसे - गाय भैंस आदि। **३. खेचर** - जो आकाश में चलते हैं वे खेचर हैं, जैसे - कबूतर आदि पक्षी।

जलचर के भेद

से किं तं जलयरा?

जलयरा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा - मच्छगा कच्छभा मगरा गाहा सुंसुमारा।

से किं तं मच्छा?

एवं जहा पण्णवणाए जाव जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।।

भावार्थ - प्रश्न - जलचर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - जलचर पांच प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. मत्स्य २. कच्छप ३. मगर ४. ग्राह और ५. सुंसुमार।

प्रश्न - मच्छ का क्या स्वरूप है?

उत्तर - मच्छ अनेक प्रकार के कहे गये हैं इत्यादि वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझना चाहिये यावत् इसी प्रकार के अन्य मच्छ आदि भी जलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक हैं वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - १. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र में मत्स्य आदि जलचर जीवों के भेद इस प्रकार बताये गये हैं -

१. मत्स्यों के भेद - मत्स्य अनेक प्रकार के कहे गये हैं जैसे - श्लक्ष्ण मत्स्य, खवल्ल मत्स्य, युग मत्स्य, भिब्भिय मत्स्य, हेलिय मत्स्य, मंजरिया मत्स्य, रोहित मत्स्य, हलीसागर मत्स्य, मोगरावड, वडगर तिमिमत्स्य, तिमिंगला मत्स्य, तंदुल मच्छ, काणिक्क मच्छ, सिलेच्छिया मच्छ, लंभण मच्छ पताका मत्स्य, पताकाति पत्ताका मत्स्य, नक्र मत्स्य अन्य भी इसी प्रकार के जितने भी मत्स्य हैं वे भी इसी के अंतर्गत समझना चाहिये।

२. कच्छपों के भेद - कच्छप दो प्रकार के कहे गये हैं - १. अस्थि कच्छप २. मंसल कच्छप।

३. ग्राह के भेद - ग्राह पांच प्रकार के कहे गये हैं यथा - १. दिली २. वेढग ३. मृदुग ४. पुलग और ५. सीमागार।

४. मगर के भेद - मगर के दो भेद हैं - १. सोंड मगर और २. मृट्ठ मगर।

५. सुंसुमार के भेद - सुंसुमार एक ही प्रकार का होता है।

जिज्ञासुओं को इन सब जलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों का विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में देख लेना चाहिये।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता तं जहा - ओरालिए तेयए कम्मए। सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयण सहस्सं, छेवट्ठसंघयणी, हुंडसंठिया, चत्तारि कसाया, सण्णाओ वि, लेसाओ तिण्णि, इंदिया पंच, समुग्घाया तिण्णि, णो सण्णी असण्णी, णपुंसगवेया, पज्जत्तीओ अपज्जत्तीओ य पंच, दो दिट्ठीओ, दो दंसणा, दो णाणा दो अण्णाणा, दुविहे जोगे, दुविहे उवओगे, आहारो छद्दिसिं, उववाओ तिरियमणुस्सेहिंतो णो देवेहिंतो णो णेरइएहिंतो, तिरिएहिंतो असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो, अकम्मभूमग अंतरदीवग असंखेज्जवासाउय वज्जेसु मणुस्सेसु, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, मारणंतिय समुग्घाएणं दुविहावि मरंति, अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं उववज्जंति? णेरइएसुवि तिरिक्खजोणिएसु वि मणुस्सेसु वि देवेसु वि, णेरइएसु रयणप्पहाए, सेसेसु पडिसेहो, तिरिएसु सव्वेसु उववज्जंति संखेज्जवासाउएसु वि असंखेज्जवासाउएसु वि चउप्पएसु पक्खीसु वि मणुस्सेसु सव्वेसु कम्मभूमिएसु णो अकम्मभूमिएसु अंतरदीवएसु वि संखिज्जवासाउएसु वि असंखिज्जवासाउएसु वि (पज्जत्तएसु वि अपज्जत्तएसु वि) देवेसु जाव वाणमंतरा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउगइया दुआगइया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता। से त्तं सम्मुच्छिम जलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया॥ ३५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं। यथा - औदारिक, तैजस और कार्मण। उनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन। वे सेवार्त्त संहनन वाले, हुंडक संस्थान वाले, चार कषाय वाले, चार संज्ञाओं वाले, तीन लेश्याओं वाले, पांच इन्द्रियों वाले हैं। उनके तीन समुद्घात होते हैं। वे संज्ञी नहीं असंज्ञी हैं। नपुंसक वेद वाले हैं। उनके पांच पर्याप्तियाँ और पांच अपर्याप्तियाँ होती है। उनके दो दृष्टि, दो दर्शन, दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो योग और दो प्रकार के उपयोग होते हैं। वे छहों दिशाओं के पुद्गलों का आहार करते हैं। वे तिर्यंच और मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किंतु देवों और नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते। तिर्यंचों में से भी असंख्यातवर्ष की आयु वाले उत्पन्न नहीं होते। अकर्मभूमि और अन्तरद्वीपों के असंख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्य भी इनमें उत्पन्न नहीं होते हैं।

इन जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की है। ये मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं। ये जीव मरकर कहां उत्पन्न होते हैं? ये नरक में भी उत्पन्न होते हैं, तिर्यंचों में भी उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों और देवों में भी उत्पन्न होते हैं। यदि नरक में उत्पन्न होते हैं तो पहली रत्नप्रभा नरक तक ही उत्पन्न होते हैं शेष नरकों में नहीं। तिर्यंचों में सभी तिर्यंचों में-संख्यात वर्ष की आयु वालों में भी, असंख्यात वर्ष की आयु वालों में भी, चतुष्पदों में भी और पक्षियों में भी उत्पन्न होते हैं। मनुष्य में उत्पन्न हों तो सभी कर्मभूमि के मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, अकर्मभूमि के मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते हैं। अंतरद्वीपों में भी संख्यात वर्ष की आयु वालों में भी और असंख्यात वर्ष की आयु वालों में भी उत्पन्न होते हैं। यदि देवों में उत्पन्न हों तो वाणव्यंतर देवों तक उत्पन्न होते हैं। ये जीव चार गति में जाने वाले और दो गतियों से आने वाले हैं। ये प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। यह जलचर सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रियों का निरूपण हुआ।

विवेचन - जलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के २३ द्वारों का कथन इस प्रकार हैं -

१. शरीर द्वार - जलचर संमूर्च्छिमं पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में शरीर पावे तीन-औदारिक, तैजस और कार्मण।

२. अवगाहना द्वार - इनकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन होती है।

३. संहनन द्वार - ये सेवार्त्त संहनन वाले होते हैं।

४. संस्थान द्वार - इन के शरीर हुंडक संस्थान वाले होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. कषाय द्वार - इनके क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चारों कषाएं होती है।

६. संज्ञा द्वार - इनके चारों संज्ञाएँ होती हैं।

७. लेश्या द्वार - इन जीवों के कृष्ण, नील, कापोत - ये तीन लेश्याएं होती हैं।

८. इन्द्रिय द्वार - इनके स्पर्शन , रसना, घ्राण (नाक), आंख और कान ये पांचों इन्द्रियां होती हैं।

९. समुद्घात द्वार - जलचर सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रियों के वेदना, कषाय और मारणांतिक, ये तीन समुद्घात होते हैं।

१०. संज्ञी द्वार - ये संज्ञी नहीं, असंज्ञी होते हैं। सम्मूर्च्छिम होने के कारण इनके मन नहीं होता है।

११. वेद द्वार - ये जीव नपुंसकवेद वाले होते हैं। स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं होते।

१२. पर्याप्ति द्वार - इन जीवों के पांच पर्याप्तियाँ और पांच अपर्याप्तियाँ होती हैं। उनके मनःपर्याप्ति नहीं होती है।

१३. दृष्टि द्वार - ये जीव सम्यग्दृष्टि भी होते हैं और मिथ्यादृष्टि भी होते हैं।

१४. दर्शन द्वार - इनके दो दर्शन-चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन होते हैं।

१५. ज्ञान द्वार - इन जीवों के दो ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान) और दो अज्ञान (मतिअज्ञान, श्रुत अज्ञान) होते हैं।

१६. योग द्वार - इनके वचन योग और काय योग होते हैं।

१७. उपयोग द्वार - ये साकार उपयोग वाले भी होते हैं और अनाकार उपयोग वाले भी होते हैं।

१८. आहार द्वार - इनका आहार छह दिशाओं से आगत पुद्गल द्रव्यों का होता है क्योंकि ये लोक के मध्य में ही रहते हैं।

१९. उपपात द्वार - जलचर सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रियों में तिर्यंचों और मनुष्यों से आये हुए जीव उत्पन्न होते हैं। देवों और नैरयिकों से आये हुए जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। जो तिर्यँचों से आते हैं वे असंख्यात वर्ष की आयु वाले होते हैं। मनुष्यों में अकर्मभूमिक और अन्तरद्वीप के जो मनुष्य असंख्यात वर्ष की आयु वाले हैं वे उत्पन्न नहीं होते हैं।

२०. स्थिति द्वार - इन जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि की होती है।

२१. समवहत द्वार - जलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीव मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

२२. उद्वर्तना द्वार - ये सम्मूर्च्छिम जलचर जीव मर कर चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं। यदि नरक में उत्पन्न होते हैं तो रत्नप्रभा नरक में ही उत्पन्न होते हैं इससे आगे नहीं। तिर्यँचों में उत्पन्न होते हैं तो सभी प्रकार के तिर्यँचों में उत्पन्न होते हैं अर्थात् संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यँचों में भी उत्पन्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं, असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों में भी उत्पन्न होते हैं, चतुष्पदों में भी उत्पन्न होते हैं और पक्षियों में भी उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो कर्मभूमि मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, अकर्मभूमि मनुष्यों में नहीं। संख्यात वर्ष की आयु वाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले अंतरद्वीप के मनुष्यों में भी ये उत्पन्न होते हैं। देवों में भवनपति देवों और वाणव्यंतर देवों में उत्पन्न होते हैं इसके आगे के देवों में नहीं क्योंकि वहां असंज्ञी आयु का अभाव है।

२३. गति आगति द्वार - ये जलचर सम्मूर्च्छिम जीव दो गति (मनुष्य और तिर्यंच) से आने वाले और चारों गतियों में जाने वाले होते हैं।

स्थलचर के भेद

से किं तं थलयर संमुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया?

थलयर सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - चउप्पय थलयर सम्मुच्छिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया य परिसप्प थलयर सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया य।

भावार्थ - प्रश्न - स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. चतुष्पद स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक और २. परिसर्प स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक।

से किं तं चउप्पय थलयर संमुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

चउप्पय थलयर संमुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया चउव्विहा पण्णत्ता तं जहा - एगखुरा दुखुरा गंडीपया सणप्फया जाव जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

कठिन शब्दार्थ - **एगखुरा** - एक खुरा-एक खुर वाले, **दुखुरा** - द्विखुरा-दो खुर वाले, **गंडीपया**- गण्डीपदा-सुनार की एरण जैसे पैर वाले, **सणप्फया** - सनखपदा-नख सहित पैरों वाले।

भावार्थ - प्रश्न - चतुष्पद स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - चतुष्पद स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक चार प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. एकखुरा २. द्विखुरा ३. गण्डीपदा और ४. सनखपदा। इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं वे चतुष्पद स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक हैं। जो संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ सरीरगा ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चउरासीइ वाससहस्साइं सेसं जहा जलयराणं जाव चउगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेत्तं चउप्पय थलयर संमुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया॥

भावार्थ - चतुष्पद स्थलचर सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के तीन शरीर होते हैं। अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट गाऊ पृथक्त्व की, स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की होती है। शेष सारा वर्णन जलचरों के समान समझना चाहिये यावत् चार गति में जाने वाले और दो गति से आने वाले, प्रत्येकशरीरी और असंख्यात कहे गये हैं। यह चतुष्पद स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का वर्णन हुआ।

विवेचन - चतुष्पद स्थलचरों के २३ द्वारों का वर्णन जलचरों के समान समझना चाहिये, जिन द्वारों में अन्तर है, वे इस प्रकार हैं-

अवगाहना द्वार - इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट गव्यूति (गाऊ-कोस) पृथकृत्व अर्थात् दो कोस से लेकर अनेक (छह) कोस तक की होती है।

स्थिति द्वार - चतुष्पद स्थलचरों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की है।

से किं तं थलयर परिसप्प संमुच्छिमा?

थलयर परिसप्प संमुच्छिमा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - उरपरिसप्प संमुच्छिमा भुयपरिसप्प संमुच्छिमा।

भावार्थ - प्रश्न - स्थलचर परिसर्प सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - स्थलचर परिसर्प सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - उर:परिसर्प स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और भुजपरिसर्प स्थलचर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

विवेचन - 'उरसा परिसर्पन्ति' - 'उरस' का अर्थ है छाती, इसलिये जो छाती के बल से चलते हैं ऐसे सर्प आदि उर:परिसर्प कहलाते हैं।

'भुजाभ्यां परिसर्पन्ति' - जो भुजाओं के बल से चलते हैं वे भुजपरिसर्प कहलाते हैं।

से किं तं उरपरिसप्पसंमुच्छिमा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उरपरिसप्पसंमुच्छिमा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - अही अयगरा आसालिया महोरगा।

से किं तं अही?

अही दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - दव्वीकरा, मउलिणो य।

से किं तं दव्वीकरा?

दव्वीकरा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - आसीविसा जाव से तं दव्वीकरा।

से किं तं मउलिणो?

मउलिणो अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - दिव्वा गोणसा जाव से तं मउलिणो, से तं अही।

से किं तं अयगरा?

अयगरा एगागारा पण्णत्ता, से तं अयगरा।

से किं तं आसालिया?

आसालिया जहा पण्णवणाए, से तं आसालिया।

से किं तं महोरगा?

महोरगा जहा पण्णवणाए, से तं महोरगा। जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तं चेव, णवरि सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा, से तं उरपरिसप्पा।

कठिन शब्दार्थ - **अही** - अहि (सर्प), **अयगरा** - अजगर, **आसालिया** - आसालिका, **दव्वीकरा** - दर्वीकर (फण वाले), **मउलिणो** - मुकुली (बिना फन वाले)।

भावार्थ - उर:परिसर्प सम्मूर्च्छिम कितने प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अहि २. अजगर ३. आसालिका और ४. महोरग।

अहि कितने प्रकार के कहे गये हैं?

अहि दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - दर्वीकर (फण वाले) और मुकुली (फण रहित)।

दर्वीकर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्वीकर अनेक प्रकार के कहे गये हैं। जैसे आशीविष यावत् दर्वीकर का पूरा कथन।

मुकुली कितने प्रकार के कहे गये हैं?

मुकुली अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - दिव्याक गोनस यावत् मुकुली का पूरा कथन।

अजगर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

अजगर एक ही प्रकार के कहे गये हैं। यह अजगर का वर्णन हुआ।

आसालिका का क्या स्वरूप है?

आसालिकों का वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझना चाहिये।

महोरग का क्या स्वरूप है?

महोरग का वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझना चाहिये। इसी प्रकार के अन्य जो उरःपरिसर्प हैं वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। शेष सब पूर्ववत् समझना चाहिये। विशेषता इस प्रकार हैं - इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट योजन पृथक्त्व (दो से लेकर अनेक योजन तक)। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट तिरपन हजार वर्ष। शेष सारा वर्णन जलचरों के समान ही समझना चाहिये यावत् ये चार गति में जाने वाले, दो गति से आने वाले, प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। इस प्रकार उरःपरिसर्प का वर्णन हुआ।

विवेचन - उरःपरिसर्प संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक चार प्रकार के कहे गये हैं - १. अहि २. अजगर ३. आसालिका और ४. महोरग।

अहि दो प्रकार के कहे गये हैं - १. दर्वीकर अर्थात् कुडछी या चाटु की तरह फण फैलाने वाले सर्प, दर्वीकर अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - आशीविष (दाढों में विष वाले) दृष्टिविष (दृष्टि में विष वाले) उग्रविष (तीव्र विष वाले) भोगविष (फण या शरीर में विष वाले) त्वचाविष (चमडी में विष वाले) लालाविष (लार में विष वाले) उच्छ्वास विष (श्वास लेने में विष वाले) निःश्वास विष (श्वास छोड़ने में विष वाले), कृष्ण सर्प, श्वेत सर्प, काकोदर दर्भपुष्प, कोलाह, मेलिमिंद और शेषेन्द्र आदि। २. मुकुली अर्थात् फण उठाने की शक्ति से विकल, जो सर्प बिना फण वाले हैं वे मुकुली कहलाते हैं। मुकुली अनेक प्रकार के कहे गये हैं। यथा - दिव्याक, गोनस, कषाधिक, व्यतिकुल, चित्रली, मंडली, माली, अहि, अहिशलाका, वासपताका आदि। अजगर एक ही प्रकार के होते हैं।

प्रज्ञापना सूत्र में आसालिका का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

प्रश्न - आसालिका कितने प्रकार के होते हैं? हे भगवन्! आसालिका क्या सम्मूर्च्छिम रूप से उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य क्षेत्र के अंदर ढाई द्वीपों में निर्व्याघात रूप से पन्द्रह कर्मभूमियों में, व्याघात की अपेक्षा पांच महाविदेह क्षेत्रों में अथवा चक्रवर्ती के स्कन्धावारों (सैनिक छावनियों) में या वासुदेवों के स्कन्धावारों में, बलदेवों के स्कन्धावारों में, माण्डलिकों के स्कन्धावारों में, महामाण्डलिकों के स्कन्धावारों में, ग्राम निवेशों में, नगर निवेशों में, निगम निवेशों में, खेट निवेशों में, कर्बट निवेशों में, मडम्ब निवेशों में, द्रोणमुख निवेशों में, पट्टण निवेशों में, आकर निवेशों में, आश्रम निवेशों में, सम्बाध निवेशों में और राजधानी निवेशों में, इन निवेशों (स्थानों) का जब विनाश होने वाला हो तब इन स्थानों में आसालिका सम्मूर्च्छिम रूप से उत्पन्न होते हैं। वे जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र की अवगाहना से और उत्कृष्ट बारह योजन की अवगाहना से उत्पन्न होते हैं। अवगाहना के अनुरूप ही उसका विष्कम्भ (विस्तार) और बाहल्य (मोटाई) होता है। वह चक्रवर्ती के स्कन्धावार आदि के नीचे की भूमि को फोड़ कर उत्पन्न होता है। वह असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है और अंतर्मुहूर्त्त की आयु भोग कर काल कर जाता है। इस प्रकार आसालिका कहा है।

प्रज्ञापना सूत्र में महोरग के विषय में इस प्रकार वर्णन है -

प्रश्न - महोरग कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - महोरग अनेक प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार है - कई महोरग एक अंगुल परिमाण, अंगुल के पृथुत्व परिमाण, वितस्ति-बेंत परिमाण, रत्नि-हस्त, रत्नि पृथुत्व, कुक्षि-दो हाथ, कुक्षि पृथुत्व, धनुष, धनुष पृथुत्व, गाऊ, गाऊ पृथुत्व, योजन, योजन पृथुत्व, सौ योजन, सौ योजन पृथुत्व परिमाण और हजार योजन परिमाण होते हैं। वे स्थल में उत्पन्न होते हैं किंतु जल में विचरण करते हैं और स्थल में भी विचरण करते हैं। वे यहाँ अढाई द्वीप में नहीं होते किंतु मनुष्य क्षेत्र के बाहर के द्वीप-समुद्रों में होते हैं। इसी प्रकार के अन्य जो प्राणी हों, उन्हें महोरग समझना चाहिये।

स्थलचर संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक के २३ द्वारों की विचारणा जलचरों के समान ही समझना चाहिये जो अंतर है वह इस प्रकार है -

अवगाहना द्वार - इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट से योजन पृथक्त्व (पृथुत्व) है।

स्थिति द्वार - इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ५३ हजार वर्ष की है।

से किं तं भुयपरिसप्प संमुच्छिम थलयरा?

भुयपरिसप्प संमुच्छिम थलयरा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - गोहा णउला जाव जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलासंखेज्जं उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं ठिई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं सेसं जहा जलयराणं जाव चउगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं भुयपरिसप्प संमुच्छिमा, से तं थलयरा॥

भावार्थ - भुजपरिसर्प सम्मूर्च्छिम स्थलचर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

भुजपरिसर्प सम्मूर्च्छिम स्थलचर अनेक प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार है - गोह, नेवला यावत् अन्य इसी प्रकार के जो प्राणी हैं वे भुजपरिसर्प हैं। ये संक्षेप से दो प्रकार के कहे हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट धनुष पृथुत्व (दो धनुष से नौ धनुष तक) है। स्थिति उत्कृष्ट बयालीस हजार वर्ष की है। शेष सारा वर्णन जलचरों की भांति समझना चाहिये यावत् ये चार गति वाले, दो आगति वाले, प्रत्येक शरीरी और असंख्यात है। यह भुजपरिसर्प सम्मूर्च्छिम स्थलचर का वर्णन हुआ। इस प्रकार स्थलचर का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र में भुजपरिसर्प के विषय में इस प्रकार प्रश्नोत्तर है -

प्रश्न - भुजपरिसर्प कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - भुजपरिसर्प अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - नकुल (नेवले) सेहा, शरट (गिरगिट), शल्य, सरंठ, सार, खोर, घरोली (छिपकली), विषम्भरा, मूषक (चूहा), मंगूस (गिलहरी) पयोलातिक (प्रचलायित) छीरविडालिका (क्षीर विरालिया) जोहा, इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं, उन्हें भुजपरिसर्प समझना चाहिये।

भुजपरिसर्प के २३ द्वारों का वर्णन जलचरों के समान हो समझना चाहिये किंतु निम्न द्वारों में अंतर हैं -

१. अवगाहना द्वार - सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व है।

२. स्थिति द्वार - इन जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बयालीस हजार वर्षों की होती है। शेष वर्णन जलचर जीवों के समान ही है।

खेचर के भेद

से किं तं खहयरा?

खहयरा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - चम्मपक्खी लोमपक्खी समुग्गपक्खी विययपक्खी॥

भावार्थ - खेचर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

खेचर चार प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. चर्म पक्षी २. लोम (रोम) पक्षी ३. समुद्गक पक्षी और ४. वितत पक्षी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को खेचर प्राणी कहते हैं। आकाश के पर्यायवाची अनेक शब्द हैं तथापि आगम में प्रायः तीन शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से देखने में आता है। यथा - ख, खे, खह। इसलिये तीन शब्दों का प्रयोग होता है। यथा - खचर, खेचर और खहचर। यहां मूलपाठ में खहचर (खहयर) शब्द दिया गया है तथा चर का अर्थ है-विचरण करने वाले। अतः पूरे शब्द का अर्थ यह हुआ कि '**खे**' अर्थात् आकाश में '**चर**' अर्थात् विचरण करने वाले प्राणी खेचर कहलाते हैं।

खेचर के चार भेद इस प्रकार किये गये हैं -

१. चर्म पक्षी - चर्ममय अर्थात् चमड़े की पंख वाले पक्षी चर्मपक्षी कहलाते हैं। जैसे - चमगादड़ आदि।

२. रोम पक्षी - रोममय अर्थात् रोम की पंख वाले पक्षी रोमपक्षी कहलाते हैं। जैसे - हंस, बगुला, चीड़ी, कबूतर आदि।

३. समुद्गक पक्षी - समुद्गक का अर्थ है डिब्बा। जिन पक्षियों के पंख बैठे हुए या उड़ते हुए भी डिब्बे की तरह बंद ही रहते हैं, खुलते नहीं, उन्हें समुद्गक पक्षी कहते हैं।

४. वितत पक्षी - वितत का अर्थ है फैला हुआ। बैठे हुए अथवा उड़ते हुए जिन पक्षियों के पंख हमेशा फैले हुए ही रहते हैं उन्हें वितत पक्षी कहते हैं। उनके पंख बैठते समय भी बन्द नहीं होते, खुले ही रहते हैं।

से किं तं चम्मपक्खी?

चम्मपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - वग्गुली जाव जे यावण्णे तहप्पगारा, से तं चम्मपक्खी।

भावार्थ - चर्म पक्षी कितने प्रकार के कहे गये हैं?

चर्मपक्षी अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार है - वल्गुली यावत् इसी प्रकार अन्य जो पक्षी हों उन्हें चर्म पक्षी समझना चाहिये। इस प्रकार चर्मपक्षी कहे गये हैं।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र में चर्म पक्षी के भेद इस प्रकार बताये हैं - वल्गुली (चमगादड़) जलौका, अडिल्ल, भारण्ड पक्षी, जीवंजीव, समुद्रवायस (समुद्री कौए) कर्णत्रिक पक्षी, विडाली पक्षी (विरालिका) इसी प्रकार के अन्य पक्षी चर्म पक्षी हैं।

शंका - भारण्ड पक्षी की क्या विशेषता होती है?

समाधान - अभिधान राजेन्द्र कोष भाग ५ पृष्ठ १४९१ में भारण्ड शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी है -

"भारण्ड पक्षिणोः किल एकं शरीरं पृथग् ग्रीवं त्रिपादं च भवति तौच अत्यन्त अप्रमत्त तया एवं निर्वाहं लभेते इति भारण्डः (ठाणांग ९)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकोदराः पृथग्ग्रीवाः, अन्योन्य फल भक्षिणः।
प्रमत्ता इव नश्यन्ति यथा भारण्ड पक्षिणः॥
एकोदराः पृथग्ग्रीवाः त्रिपादा मर्त्यभाषिणः।
भारण्ड पक्षिणः तेषां मृतिर्भिन्न फलेच्छया॥
भारण्ड पक्षिणः जीवद्वय रूपा भवंति, ते च सर्वदा चकित चित्ता भवन्ति इति।"

अर्थात् - भारण्ड पक्षी का एक शरीर होता है और उसमें दो जीव होते हैं वे हमेशा अप्रमत्त रह कर एवं चकित-चकित की तरह सावधान होकर जीवन निर्वाह करते हैं अर्थात् आहार पानी लेते हैं। यही बात दोनों श्लोकों में कही गयी है कि उनके पेट एक होता है, पैर तीन होते हैं, मनुष्यों की तरह भाषा बोलते हैं दो गर्दन (गला) होती है और दो ही मुख होते हैं। एक मुख से अमृत फल खाता है तो दूसरा मुख ईर्षालु बन कर जहरीला फल खा लेता है इस तरह उन दोनों की मृत्यु एक साथ हो जाती है।

यह उपरोक्त मान्यता टीकाकार की है किंतु पूर्वाचार्य बहुश्रुत मुनिराज तो ऐसा फरमाते हैं कि यह एक ही जीव होता है किंतु उसके शरीर की रचना उपरोक्त प्रकार से होती है। उसमें दो जीव रूप उत्रीस प्राण नहीं होते हैं किंतु एक जीव के अनुसार दस प्राण ही होते हैं।

से किं तं लोमपक्खी?

लोमपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा - ढंका, कंका जे यावण्णे तहप्पगारा से तं लोमपक्खी।

भावार्थ - लोम (रोम) पक्षी कितने प्रकार के कहे गये हैं?

लोम (रोम) पक्षी अनेक प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - ढंक, कंक यावत् इसी प्रकार के अन्य जो पक्षी हैं उन्हें लोमपक्षी समझना चाहिये। यह रोम पक्षी का वर्णन हुआ।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र में लोम पक्षी के भेद इस प्रकार बताये हैं - ढंक, कंक, कुरल, वायस (कौआ) चक्रवाक, हंस, कलहंस, राजहंस, पादहंस, आड, सेडी, बक (बगुला) बलाका, पारिप्लव, क्रौंच, सारस, मेसर, मसूर, मयूर (मोर), सप्तहस्त गहर, पौण्डरिक, काक, कामिंजुय, वंजुलक, तीतर, वर्त्तक (बतक), लावक, कपोत, कपिंजल, पारावत (कबूतर) चिटक, चरस कुक्कुट (मुर्गा) शुक, बर्ही (मोर विशेष) मदनशलाका, कोकिल (कोयल), सेह और वरिल्लक आदि।

से किं तं समुग्गपक्खी?

समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता जहा पण्णवणाए, एवं विययपक्खी जाव जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाणत्तं सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जभागं उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं ठिई उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं सेसं जहा जलयराणं जाव चउगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं खहयर संमुच्छिम तिरिक्खजोणिया, से तं सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया॥ ३६॥

भावार्थ - समुद्गक पक्षी कितने प्रकार के कहे गये हैं?

समुद्गक पक्षी एक ही प्रकार के हैं। जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र में कहा है उसी प्रकार समझना चाहिये। इसी तरह वितत पक्षी भी प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझना चाहिये। ये दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक, इत्यादि पूर्ववत् कथन करना चाहिये। विशेषता यह है कि इनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट धनुष पृथुत्व है। स्थिति उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की है। शेष सारा वर्णन जलचर जीवों के समान समझना चाहिये यावत् ये चार गतियों में जाने वाले, दो गतियों से आने वाले, प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। यह खेचर सम्मूर्च्छिम तिर्यंचयोनिकों का वर्णन हुआ। इस प्रकार सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का निरूपण हुआ।

विवेचन - समुद्गक पक्षी एक ही आकार प्रकार के कहे गये हैं वे यहां (मनुष्य क्षेत्र में) नहीं होते, बाहर के द्वीप समुद्रों में होते हैं। वितत पक्षी भी एक ही आकार प्रकार के होते हैं। वे भी मनुष्य क्षेत्र में नहीं होते। मनुष्य क्षेत्र से बाहर के द्वीप समुद्रों में होते हैं। ये खेचर जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। खेचर सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के शरीर आदि २३ द्वारों का कथन जलचरों की तरह ही समझना चाहिये किंतु निम्न दो द्वारों में अंतर हैं -

१. अवगाहना द्वार - इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुष पृथुत्व की होती है।

२. स्थिति द्वार - इन जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की है।

शेष सारा वर्णन जलचरों के समान है। इस प्रकार सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रियों का वर्णन पूरा हुआ।

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन

से किं तं गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - जलयरा थलयरा खहयरा॥ ३७॥

भावार्थ - गर्भ व्युत्क्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गर्भ व्युत्क्रान्तिक पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक तीन प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - जलचर, स्थलचर, खेचर।

विवेचन - जो जीव गर्भ में उत्पन्न होते हैं, वे माता पिता के संयोग से उत्पन्न होने वाले गर्भव्युत्क्रांतिक (गर्भज) कहलाते हैं। जो तिर्यंच गति में जन्म लेते हैं उन्हें तिर्यंच कहते हैं। गति की अपेक्षा वे तिर्यंच गति के जीव हैं और उत्पत्ति की अपेक्षा वे तिर्यंचयोनिक कहलाते हैं। टीकाकार ने तिर्यंच शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है। संस्कृत में **"अञ्चु गति पूजनयोः"** धातु है। उससे तिर्यंच शब्द बनता है। **"तिरः वक्रं अञ्चति गच्छति इति तिर्यक् बहुवचने तिर्यञ्चः"** शब्दार्थ यह है कि जो टेढ़े मेढ़े चलते हैं वे तिर्यंच कहलाते हैं। यह केवल शब्दार्थ मात्र है। रूढ अर्थ ऊपर बतला दिया है कि जो तिर्यंच गति में जन्म लेते हैं वे तिर्यंच कहलाते हैं।

जलचर जीवों का वर्णन

से किं तं जलयरा?

जलयरा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा - मच्छा कच्छभा मगरा गाहा सुंसुमारा सव्वेसिं भेदो भाणियव्वो तहेव जहा पण्णवणाए जाव जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

भावार्थ - जलचर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

जलचर पांच प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - मत्स्य, कच्छप, ग्राह और सुंसुमार। गर्भज जलचर के सभी भेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझने चाहिये यावत् ये और इसी प्रकार के अन्य जलचर जीव संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - गर्भज जलचर भी सम्मूर्च्छिम जलचर की तरह पांच प्रकार के कहे गये हैं। सभी भेद-प्रभेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझने चाहिये।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा - ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए, सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं छव्विह संघयणी पण्णत्ता, तं जहा - वइरोसभणाराय संघयणी, उसभणारायसंघयणी णारायसंघयणी, अद्धणारायसंघयणी, कीलिया संघयणी, सेवट्ट संघयणी, छव्विहा संठिया पण्णत्ता, तं जहा - समचउरंस संठिया, णग्गोह परिमंडल संठिया, सादि संठिया, वामण संठिया, खुज्ज संठिया, हुंड संठिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कसाया सव्वे सण्णाओ चत्तारि, लेस्साओ छ, पंच इंदिया, पंच समुग्घाया आइल्ला सण्णी णो असण्णी तिविह वेया छप्पज्जत्तीओ छअप्पज्जत्तीओ दिट्ठी तिविहा वि तिण्णि दंसणा णाणी वि अण्णाणी वि जे णाणी ते अत्थेगइया दुणाणी अत्थेगइया तिण्णाणी, जे दुण्णाणी ते णियमा आभिणिबोहियणाणी य सुयणाणी य, जे तिण्णाणी ते णियमा आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी, एवं अण्णाणी वि, जोगे तिविहे उवओगे दुविहे आहारो छद्दिसिं उववाओ णेरइएहिं जाव अहेसत्तमा तिरिक्खजोणिएसु सव्वेसु असंखिज्जवासाउय वज्जेसु मणुस्सेसु अकम्मभूमग अंतरदीवग असंखेज्जवासाउय वज्जेसु देवेसु जाव सहस्सारो, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, दुविहा वि मरंति, अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु जाव अहेसत्तमा तिरिक्खजोणिएसु मणुस्सेसु सव्वेसु देवेसु जाव सहस्सारो, चउगइया चउआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं जलयरा॥ ३८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज जलचर जीवों के चार शरीर कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट हजार योजन की है। इन जीवों में छह संहनन होते हैं वे इस प्रकार हैं - वज्रऋषभनाराच संहनन, ऋषभनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलिका संहनन और सेवार्त्त संहनन। ये छह संस्थान वाले हैं। यथा - समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान, सादि संस्थान, वामन संस्थान, कुब्ज संस्थान और हुंड संस्थान।

इन जीवों के चारों कषाएं, चारों संज्ञाएं, छहों लेश्याएं, पांचों इन्द्रियाँ, प्रारंभ के पांच समुद्घात होते हैं। इनमें तीन वेद, छह पर्याप्तियाँ, छह अपर्याप्तियाँ, तीनों दृष्टियाँ और तीन दर्शन पाये जाते हैं। ये जीव ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कोई दो ज्ञान वाले हैं और कोई तीन ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं वे मतिज्ञानी हैं और श्रुतज्ञानी हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे नियम से मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं। इसी तरह अज्ञानी भी हैं। इन जीवों में तीन योग और दोनों उपयोग होते हैं। छहों दिशाओं से इनका आहार होता है। ये जीव नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् सातवीं नरक से भी आकर उत्पन्न होते हैं। असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यंचों को छोड़ कर सभी तिर्यंचों से आकर उत्पन्न होते हैं। अकर्मभूमिज, अंतरद्वीपज और असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले मनुष्यों को छोड़कर शेष मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं और सहस्रार तक के देवलोकों से आकर भी उत्पन्न होते हैं। इन जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की है। ये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवहत और असमवहत-दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं। गर्भज जलचर जीव मरकर सातवीं नरक तक, सब तिर्यंचों में, सभी मनुष्यों में और सहस्रार तक के देवलोकों में जाते हैं। ये चार गति वाले, चार आगति वाले, प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। यह जलचरों का वर्णन हुआ।

विवेचन - गर्भज जलचर जीवों के २३ द्वारों का वर्णन इस प्रकार हैं -

१. शरीर द्वार - गर्भज जलचरों में चार शरीर पाये जाते हैं। वे इस प्रकार हैं - औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

२. अवगाहना द्वार - इनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन परिमाण होती है।

३. संहनन द्वार - ये छहों प्रकार के संहनन वाले होते हैं।

४. संस्थान द्वार - गर्भज जलचर जीवों के छहों संस्थान होते हैं।

५. कषाय द्वार - इनमें चारों कषाएं-क्रोध, मान, माया, लोभ-होती हैं।

६. संज्ञा द्वार - इन जीवों के चारों संज्ञाएं होती हैं।

७. लेश्या द्वार - इन जीवों में छहों लेश्याएं होती हैं।

८. इन्द्रिय द्वार - इनके कान, आंख, नाक, रसना और स्पर्शन-ये पांचों इन्द्रियां होती हैं।

९. समुद्घात द्वार - इनके प्रारंभ के वेदना, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय और तैजस, ये पांच समुद्घात होते हैं।

१०. संज्ञी द्वार - ये संज्ञी ही होते हैं, असंज्ञी नहीं।

११. वेद द्वार - गर्भज जलचर जीव तीनों वेद वाले होते हैं।

१२. पर्याप्ति द्वार - इनको छहों पर्याप्तियाँ होती है और छहों अपर्याप्तियाँ होती है।

१३. दृष्टि द्वार - ये सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और मिश्र दृष्टि भी होते हैं।

१४. दर्शन द्वार - इन जीवों में चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन होते हैं।

१५. ज्ञान द्वार - ये ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। इनमें कोई दो ज्ञान वाले (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान) और कोई तीन ज्ञान वाले (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान) होते हैं। जो अज्ञानी होते हैं वे भी कितनेक दो अज्ञान (मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान) वाले और कितनेक तीन अज्ञान (मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान) वाले होते हैं।

१६. योग द्वार-गर्भज जलचर तिर्यंचों को मनयोग, वचन योग और काययोग-ये तीनों योग होते हैं।

१७. उपयोग द्वार - इन जीवों में दोनों प्रकार का उपयोग होता है। ये साकार उपयोग वाले भी होते हैं और अनाकार उपयोग वाले भी होते हैं।

१८. आहार द्वार - गर्भज जलचर जीवों का आहार छह दिशाओं से आगत पुद्गलों का होता है क्योंकि ये जीव लोक के मध्य में ही होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१९. उपपात द्वार - गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय जीव पहली नरक से सातवीं नरक तक से आकर उत्पन्न होते हैं, असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यंचों को छोड़ कर सब तिर्यंचों से, अकर्मभूमिज, अंतरद्वीपज और असंख्यात वर्ष की आयु वालों को छोड़ कर सभी मनुष्यों से और सौधर्म से लगा कर सहस्रार तक-आठ देवलोकों से आकर उत्पन्न होते हैं, इससे आगे के देवलोकों से आकर देव गर्भज जलचर के रूप में उत्पन्न नहीं होते हैं। इस तरह गर्भज जलचर जीव चारों गतियों से आकर उत्पन्न होते हैं।

२०. स्थिति द्वार - इन जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की होती है और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की होती है।

२१. मरण द्वार - मारणांतिक समुद्घात से समवहत और असमवहत होकर मरते हैं।

२२. उद्वर्तना द्वार - सहस्रार कल्प नामक आठवें देवलोक के आगे के देवों को छोड़ कर शेष चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं। इसलिये ये चार गति वाले कहे गये हैं।

२३. गति आगति द्वार - गर्भज जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव चारों गतियों से आते हैं और चारों गतियों में जाते हैं। यह गर्भज़ जलचर जीवों का वर्णन हुआ।

स्थलचर जीवों का वर्णन

से किं तं थलयरा?

थलयरा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - चउप्पया य परिसप्पा य।

से किं तं चउप्पया?

चउप्पया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - एगखुरा सो चेव भेदो जाव जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

भावार्थ - स्थलचर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

स्थलचर दो प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. चतुष्पद और २. परिसर्प।

चतुष्पद कितने प्रकार के कहे गये हैं?

चतुष्पद चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा - एक खुर वाले आदि भेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझने चाहिये यावत् ये संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - सम्मूर्च्छिम स्थलचर जीवों के समान गर्भज स्थलचर जीव भी दो प्रकार के कहे गये हैं - चतुष्पद और परिसर्प। जिनके चार पांव हों वे चतुष्पद कहलाते हैं जैसे - बैल, घोड़ा आदि। जो पेट के बल से या भुजाओं के सहारे चलते हैं वे परिसर्प कहलाते हैं। जैसे सर्प, नकुल आदि। चतुष्पद गर्भज स्थलचर जीव चार प्रकार के कहे गये हैं - १. एक खुर वाले २. दो खुर वाले ३. गंडीपद ४. सनखपद। इनके भेद प्रभेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार पूर्ववत् समझने चाहिये। ये पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के कहे गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि सरीरा ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं छ गाउयाइं, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं णवरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु चउत्थपुढविं ताव गच्छंति सेसं जहा जलयराणं जाव चउगइया चउआगइया परित्ता असंखिज्जा पण्णत्ता, से तं चउप्पया।

भावार्थ - स्थलचर चतुष्पद जीवों के चार शरीर होते हैं। इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट छह गाऊ (कोस) की होती है। इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। ये जीव मर कर चौथी नरक तक जाते हैं। शेष सारा वर्णन जलचरों की तरह समझना चाहिये यावत् ये चार गतियों में जाने वाले और चार गतियों से आने वाले, प्रत्येक शरीरी और असंख्यात कहे गये हैं। इस प्रकार चतुष्पदों का वर्णन हुआ।

विवेचन - चतुष्पदों के २३ द्वारों की प्ररूपणा जलचरों के समान ही है जिन द्वारों में अंतर है वे इस प्रकार हैं -

१. अवगाहना द्वार - चतुष्पदों की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट छह कोस की है।

२. स्थिति द्वार - इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

३. उद्वर्तना द्वार - स्थलचर चतुष्पद जीव मर कर चौथी नरक से आगे नहीं जाते हैं शेष सारी वक्तव्यता जलचरों के समान है।

से किं तं परिसप्पा?

परिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - उरपरिसप्पा य भुयपरिसप्पा य।

से किं तं उरपरिसप्पा?

उरपरिसप्पा तहेव आसालिय वज्जो भेदो भाणियव्वो, सरीरा चत्तारि, ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी उव्वट्टित्ता णेरइएसु जाव पंचमं पुढविं ताव गच्छंति, तिरिक्ख मणुस्सेसु सव्वेसु, देवेसु जाव सहस्सारा सेसं जहा जलयराणं जाव चउगइया चउआगइया परित्ता असंखेज्जा से तं उरपरिसप्पा।

भावार्थ - परिसर्प कितने प्रकार के कहे गये हैं?

परिसर्प दो प्रकार के कहे गये हैं - उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प।

उरपरिसर्प के कितने भेद कहे गये हैं?

उरपरिसर्प के भेद पूर्ववत् (प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार) समझने चाहिये किंतु आसालिक नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहना चाहिये। इन जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट हजार योजन की है। स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है। ये मर कर नरक में जाते हैं तो पांचवीं नरक तक जाते हैं। सभी तिर्यंचों और सभी मनुष्यों में भी जाते हैं और सहस्रार देवलोक तक भी जाते हैं। शेष सारा वर्णन जलचरों के समान समझना चाहिये यावत् ये चार गति वाले, चार आगति वाले, प्रत्येक शरीरी और असंख्यात हैं। यह उरपरिसर्पों का वर्णन हुआ।

विवेचन - गर्भज उरपरिसर्प जीवों के भेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार ही समझने चाहिये किंतु आसालिक नहीं कहना चाहिये क्योंकि आसालिक सम्मूर्च्छिम ही होता है और यहां गर्भज उरपरिसर्पों का वर्णन है। उरपरिसर्पों के २३ द्वारों की प्ररूपणा जलचरों के समान ही है जिन द्वारों में अंतर है वे इस प्रकार हैं -

१. अवगाहना द्वार - उरपरिसर्पों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट हजार योजन की है।

२. स्थिति द्वार - इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्व कोटि की है।

३. उद्वर्तना द्वार - ये जीव मर कर नरक में पांचवीं नरक तक, देवों में सहस्रार देवलोक तक तथा सभी मनुष्यों व सभी तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं।

से किं तं भुयपरिसप्पा?

भुयपरिसप्पा भेदो तहेव, चत्तारि सरीरगा ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, सेसेसु ठाणेसु जहा उरपरिसप्पा णवरं दोच्चं पुढविं गच्छंति, से तं भुयपरिसप्पा पण्णत्ता, से तं थलयरा॥ ३९॥

भावार्थ - भुजपरिसर्प कितने प्रकार के कहे गये हैं?

भुजपरिसर्प के भेद पूर्ववत् समझना चाहिये। इन जीवों के चार शरीर होते हैं। अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट गाऊ पृथुत्व (दो कोस से नौ कोस तक) स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्व कोटि, शेष स्थानों में उरपरिसर्पों की तरह कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि ये दूसरी नरक तक जाते हैं। यह भुजपरिसर्पों का वर्णन हुआ। इस प्रकार स्थलचरों का कथन पूर्ण हुआ।

विवेचन - भुजपरिसर्पों के शरीर आदि २३ द्वारों का कथन गर्भज उरपरिसर्पों के समान है। निम्न द्वारों में विशेषता है -

१. अवगाहना द्वार - भुजपरिसर्प जीवों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट गव्यूत पृथक्त्व (दो कोस से लेकर नौ कोस तक) की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. स्थिति द्वार - इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्व कोटि की होती है।

३. उद्वर्त्तना द्वार - भुजपरिसर्प दूसरी नरक तक जाते हैं। शेष वर्णन उरपरिसर्पों के समान है।

खेचर जीवों का वर्णन

से किं तं खहयरा?

खहयरा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - चम्मपक्खी तहेव भेदो, ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो, सेसं जहा जलयराणं णवरं जाव तच्चं पुढविं गच्छंति जाव से तं खहयर गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया, से तं तिरिक्खजोणिया॥ ४०॥

भावार्थ - खेचर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

खेचर चार प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - चर्मपक्षी आदि भेद पूर्ववत् समझने चाहिये। अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व। स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग, शेष सारा वर्णन जलचरों के समान समझना चाहिये। विशेषता यह है कि ये तीसरी नरक तक जाते हैं। यह खेचर गर्भव्युत्क्रांतिक पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का वर्णन हुआ। इस प्रकार तिर्यंचयोनिकों का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन - गर्भज खेचर जीव भी सम्मूर्च्छिम खेचर जीवों की तरह चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. चर्मपक्षी २. रोमपक्षी ३. समुद्गक पक्षी और ४. वितत पक्षी।

गर्भज खेचर जीवों के २३ द्वारों का कथन जलचरों के समान ही है। जिन द्वारों में विशेषता है वे इस प्रकार हैं -

१. अवगाहना द्वार - गर्भज खेचर जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व (दो धनुष से नौ धनुष तक) की होती है।

२. स्थिति द्वार - जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग की स्थिति होती है।

३. उद्वर्त्तना द्वार - खेचर जीव मर कर तीसरी नरक तक जाते हैं। देवों में उत्पन्न हो तो आठवें सहस्रार देवलोक तक तथा सभी मनुष्यों और तिर्यंचों में उत्पन्न हो सकते हैं।

तिर्यंच जीवों की अवगाहना और स्थिति बताने वाली निम्न दो गाथाएं भी किन्हीं प्रतियों में मिलती है -

जोयणसहस्स छग्गाउयाइं तत्तो य जोयणसहस्सं।
गाउयपुहुत्तं भुयगे, धणुयपुहुत्तं च पक्खीसु॥ १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गब्भम्मि पुव्वकोडी, तिण्णि य पलिओवमाइं परमाउं।

उरभुजग पुव्वकोडी, पलिय असंखेज्जभागो य॥ २॥

अर्थ - गर्भज जलचरों की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन की, चतुष्पदों की छह गाऊ (कोस) की, उरपरिसर्पों की हजार योजन की, भुजपरिसर्पों की गाऊ पृथक्त्व की और खेचर जीवों की धनुष पृथक्त्व की उत्कृष्ट अवगाहना होती है॥ १॥

गर्भज जलचर जीवों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्व कोटि की है, चतुष्पदों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प जीवों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि की तथा खेचर जीवों की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवां भाग की होती है॥ २॥

नरकों में उत्पाद के विषय में दो गाथाएं इस प्रकार है -

असण्णी खलु पढमं दोच्चं च सरीसवा तइय पक्खी।

सीहा जंति चउत्थं उरगा पुण पंचमिं पुढविं॥ १॥

छट्ठिं च इत्थिया उ, मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं।

एसो परमोववाओ बोद्धव्वो णरयपुढविसु॥ २॥

अर्थ - असंज्ञी जीव मर कर पहली नरक तक जाते हैं। सरीसृप दूसरी नरक तक जाते हैं। पक्षी तीसरी नरक तक, सिंह चौथी नरक तक, सर्प पांचवीं नरक तक, स्त्रियां छठी नरक तक और मत्स्य तथा मनुष्य सातवीं नरक तक जा सकते हैं।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का वर्णन पूरा हुआ।

मनुष्यों का वर्णन

से किं तं मणुस्सा?

मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सम्मुच्छिम मणुस्सा य गब्भवक्कंतिय मणुस्सा य।

भावार्थ - मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

मनुष्य दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सम्मूर्च्छिम मनुष्य और २. गर्भव्युत्क्रांतिक (गर्भज) मनुष्य।

विवेचन - मनुष्य के लिये दो शब्दों का प्रयोग होता है। यथा - मणुज (मनुज) और मणुस्स। इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है-**'मनोर्जातो मनुजः'**। **'मनुरिति मनुष्यस्य संज्ञा। मनोरपत्यानि मनुष्याः'**

मनु अर्थात् मनुष्य की संतति को मनुष्य कहते हैं। यह तो व्युत्पत्ति मात्र है। तात्पर्यार्थ तो यह है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से जिस जीव ने मनुष्य गति में जन्म लिया है उसको मनुष्य कहते हैं। चार कारणों से जीव मनुष्य गति का आयुष्य बांध कर मनुष्य गति में जन्म लेता है। वे इस प्रकार हैं - १. प्रकृति की भद्रता (सरलता) २. स्वभाव से विनीतता (विनीत) ३. दया और अनुकम्पा के परिणामों वाला ४. मत्सर (ईर्षा) डाह जलन न करने वाला। मनुष्यों के दो भेद हैं -

१. सम्मूर्च्छिम मनुष्य - बिना माता पिता के उत्पन्न होने वाले अर्थात् स्त्री पुरुष के समागम के बिना ही उत्पन्न होने वाले जीव सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहलाते हैं।

२. गर्भज मनुष्य - माता पिता के संयोग से गर्भ द्वारा उत्पन्न होने वाले जीव गर्भज मनुष्य कहलाते हैं।

कहि णं भंते! सम्मुच्छिम मणुस्सा सम्मुच्छंति?

गोयमा! अंतो मणुस्सखेत्ते जाव करेंति।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तिण्णि सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा - ओरालिए तेयए कम्मए, से तं सम्मुच्छिम मणुस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहां सम्मूर्च्छित (उत्पन्न) होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्य, मनुष्य क्षेत्र के अंदर गर्भज मनुष्यों के अशुचि स्थानों में उत्पन्न होते हैं यावत् अंतर्मुहूर्त्त की आयु में मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के तीन शरीर कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - औदारिक, तैजस और कार्मण। यह सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का वर्णन हुआ।

विवेचन - सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के विषय में प्रज्ञापना सूत्र में इस प्रकार वर्णन है -

प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहां उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य क्षेत्र के अन्दर ४५ लाख योजन परिमाण क्षेत्र में ढाई द्वीप और समुद्रों में पन्द्रह कर्मभूमियों में, तीस अकर्मभूमियों में एवं ५६ अन्तरद्वीपों में गर्भज मनुष्यों के - १. उच्चारों (विष्ठाओं) में २. प्रस्रवणों (मूत्रों) में ३. कफों में ४. सिंघाण-नाक के मैलों में ५. वमनों में ६. पित्तों में ७. मवादों में ८. रक्तों में ९. शुक्रों-वीर्यों में १०. पहले सूखे हुए शुक्र के पुद्गलों को गीला करने में ११. मरे हुए जीवों के कलेवरों में १२. स्त्री-पुरुष के संयोगों में १३. नगर की गटरों या मोरियों में तथा १४. सभी अशुचि स्थानों में सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न - क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपने को दिखाई देते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - नहीं, वे इतने सूक्ष्म हैं कि चर्म-चक्षुओं से नहीं देखे जा सकते।

प्रश्न - चौदह स्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति (आयु) और अवगाहना कितनी होती है?

उत्तर - चौदह स्थानों में एक अंतर्मुहूर्त्त में सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इनकी अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण होती है। इनकी आयु अन्तर्मुहूर्त्त की होती है अर्थात् ये अंतर्मुहूर्त्त में अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं।

से किं तं गब्भवक्कंतिय मणुस्सा?

गब्भवक्कंतिय मणुस्सा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - कम्मभूमया अकम्मभूमया अंतरदीवया, एवं माणुस्स भेदो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए तहा णिरवसेसं भाणियव्वं जाव छउमत्था य केवली य, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य॥

भावार्थ - गर्भज मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कर्मभूमिक (कर्मभूमिज) २. अकर्मभूमिक (अकर्मभूमिज) और ३. अंतरद्वीपक (अन्तरद्वीपज) इस प्रकार मनुष्यों के भेद तथा सम्पूर्ण वक्तव्यता यावत् छद्मस्थ और केवली पर्यंत प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार कह देनी चाहिये। ये मनुष्य संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्त और अपर्याप्त।

विवेचन - गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्य तीन प्रकार के कहे गये हैं - १. कर्मभूमिक २. अकर्मभूमिक और ३. अंतरद्वीपक। प्रज्ञापना सूत्र में गर्भज मनुष्यों का वर्णन इस प्रकार है -

१. कर्मभूमिक (कर्म-भूमिज) - जहां असि (तलवार आदि शस्त्र) मसि (स्याही आदि लिखने पढने का कार्य) कृषि (खेती आदि शारीरिक परिश्रम) के द्वारा मनुष्य अपना निर्वाह करते हैं उसे कर्मभूमि कहते हैं। कर्मभूमि के पन्द्रह भेद हैं - पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह, ये १५ कर्मभूमियां हैं। कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य कर्मभूमिक (कर्मभूमिज) कहलाते हैं।

२. अकर्मभूमिक (अकर्मभूमिज) - जहां असि, मसि, कृषि आदि प्रवृत्ति नहीं होती है, उसे अकर्मभूमि कहते हैं। अकर्मभूमि के मनुष्य अकर्मभूमिक (अकर्मभूमिज) कहलाते हैं। अकर्मभूमि मनुष्यों के तीस प्रकार कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - पांच हैमवत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु, इन तीस क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य अकर्मभूमि के मनुष्य कहलाते हैं। इन अकर्मभूमि क्षेत्रों में दस प्रकार के वृक्ष होते हैं। ये अपने नाम के अनुसार फल देते हैं इन्हीं से अकर्मभूमिज मनुष्य अपना निर्वाह करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. अंतरद्वीपक (अंतरद्वीपज) - ऐसा नगर जो पानी के बीच में आया हो अर्थात् जिसके चारों तरफ पानी हो ऐसे नगर को अन्तरद्वीप कहते हैं। अंतरद्वीपों में रहने वाले मनुष्यों को अन्तरद्वीपक या अन्तरद्वीपज कहते हैं।

अंतरद्वीपक मनुष्य अट्ठाईस प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. एकोरुक २. आभासिक ३. वैषाणिक ४. नांगोलिक ५. हयकर्ण ६. गजकर्ण ७. गोकर्ण ८. शष्कुलि कर्ण ९. आदर्श मुख १०. मेण्ढक मुख ११. अयोमुख १२. गोमुख १३. अश्वमुख १४. हस्तिमुख १५. सिंहमुख १६. व्याघ्रमुख १७. अश्वकर्ण १८. सिंहकर्ण १९. अकर्ण २०. कर्ण प्रावरण २१. उल्कामुख २२. मेघमुख २३. विधुन्मुख २४. विद्युद्दन्त २५. घनदन्त २६. लष्टदन्त २७. गूढदन्त २८. शुद्धदन्त।

प्रश्न - अट्ठाईस अंतरद्वीप के क्षेत्र कहां कहां हैं?

उत्तर - जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र और हैमवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला चुल्लहिमवान पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम में लवण समुद्र को स्पर्श करता है। उस पर्वत के पूर्व और पश्चिम के चरमान्त से चारों विदिशाओं (ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य) में लवण समुद्र में तीन सौ-तीन सौ योजन जाने पर प्रत्येक विदिशा में एकोरुक आदि एक एक द्वीप आता है। वे द्वीप गोल हैं। उनकी लम्बाई चौड़ाई तीन सौ-तीन सौ योजन की है। परिधि प्रत्येक की ९४९ योजन से कुछ कम है। इन द्वीपों में चार सौ-चार सौ योजन लवण समुद्र में जाने पर क्रमशः पांचवां, छठा, सातवां और आठवां द्वीप आते हैं उनकी लम्बाई चौड़ाई चार सौ-चार सौ योजन है। इसी प्रकार इन से आगे क्रमशः पांच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ, नौ सौ योजन जाने पर क्रमशः चार चार द्वीप आते जाते हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई पांच सौ से लेकर नव सौ योजन तक क्रमशः जाननी चाहिये। ये सभी गोल हैं। तिगुनी से कुछ अधिक परिधि है। इस प्रकार चुल्लहिमवान पर्वत की चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तरद्वीप हैं।

चुल्लहिमवान् पर्वत की तरह ही शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में निम्न नाम वाले सात सात अंतरद्वीप हैं -

	ईशान कोण	**आग्नेय कोण**	**नैऋत्य कोण**	**वायव्य कोण**
१.	एकोरुक	आभासिक	वैषाणिक	नाङ्गोलिक
२.	हयकर्ण	गजकर्ण	गोकर्ण	शष्कुली कर्ण
३.	आदर्श मुख	मेण्ढ मुख	अयोमुख	गोमुख
४.	अश्वमुख	हस्ति मुख	सिंहमुख	व्याघ्रमुख
५.	अश्वकर्ण	हरिकर्ण	अकर्ण	कर्णप्रावरण
६.	उल्कामुख	मेघमुख	विद्युन्मुख	विद्युतदंत
७.	घनदंत	लष्टदन्त	गूढदन्त	शुद्धदंत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार दोनों पर्वतों की चारों विदिशाओं में छप्पन अंतरद्वीप हैं। प्रत्येक अंतरद्वीप चारों ओर पद्मवरवेदिका से शोभित है और पद्मवरवेदिका भी वनखंड से घिरी हुई है।

लवण समुद्र के भीतर होने से इनको अंतरद्वीप कहते हैं। इन अंतरद्वीपों में अन्तरद्वीप के नाम वाले ही युगलिक मनुष्य रहते हैं। जैसे कि एकोरुक द्वीप में रहने वाले मनुष्य को एकोरुक युगलिक मनुष्य कहते हें। ये नाम संज्ञा मात्र है।

नोट - जीवाजीवाभिगम और पण्णवणा आदि सूत्रों की टीका में चुल्लहिमवान् और शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में चार-चार दाढाएं बतलाई गई हैं उन दाढाओं के ऊपर अंतरद्वीपों का होना बतलाया गया है किंतु यह बात सूत्र के मूल पाठ से मिलती नहीं है क्योंकि इन दोनों पर्वतों की जो लम्बाई आदि बतलाई गई है वह पर्वत की सीमा तक ही आई है। उसमें दाढाओं की लम्बाई आदि नहीं बतलाई गई है। यदि इन पर्वतों की दाढाएं होती तो उन पर्वतों की हद लवण समुद्र में भी बतलाई जाती। लवण समुद्र में भी दाढाओं का वर्णन नहीं है। इसी प्रकार भगवती सूत्र के मूल पाठ में तथा टीका में भी दाढाओं का वर्णन नहीं है। ये द्वीप विदिशाओं में टेढे टेढे आये हैं। इन टेढे टेढे शब्दों को बिगाड़ कर दाढाओं की कल्पना कर ली गई मालूम होती है। सूत्र का वर्णन देखने से दाढायें किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती है। भगवती सूत्र के दसवें शतक के सातवें उद्देशक से लेकर चौतीसवें उद्देशक तक २८ उद्देशकों में अट्ठाईस अन्तरद्वीपों का वर्णन आया है। उनके नाम आदि भी उपरोक्तानुसार ही हैं।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! पंच सरीरया पण्णत्ता, तं जहा - ओरालिए जाव कम्मए।

सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं छच्चेव संघयणा छस्संठाणा।

तेणं भंते! जीवा किं कोहकसाई जाव लोभकसाई अकसाई?

गोयमा! सव्वेवि।

तेणं भंते! जीवा किं आहारसण्णोवउत्ता जाव णोसण्णोवउत्ता?

गोयमा! सव्वेबि।

तेणं भंते! जीवा किं कण्हलेसा जाव अलेसा?

गोयमा! सव्वेवि।

सोइंदियोवउत्ता जाव णोइंदियोवउत्तावि, सव्वे समुग्घाया, तं जहा - वेयणासमुग्घाए जाव केवलिसमुग्घाए, सण्णी वि णोसण्णीणोअसण्णी वि, इत्थीवेयावि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाव अवेयावि, पंच पज्जत्ती, तिविहावि दिट्ठी, चत्तारि दंसणा, णाणी वि अण्णाणी वि, जे णाणी ते अत्थेगइया दुणाणी अत्थेगइया तिणाणी अत्थेगइया चउणाणी अत्थेगइया एगणाणी, जे दुण्णाणी ते णियमा आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी य, जे तिणाणी ते आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी य, अहवा आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी मणपज्जवणाणी य, जे चउणाणी ते णियमा आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी य जे एगणाणी ते णियमा केवलणाणी, एवं अण्णाणी वि दुअण्णाणी तिअण्णाणी, मणजोगी वि वइकायजोगी वि अजोगी वि, दुविह उवओगे आहारो छद्दिसि उववाओ णेरइएहिं अहेसत्तमवज्जेहिं तिरिक्खजोणिएहिंतो, उववाओ असंखिज्जवासाउयवज्जेहिं मणुएहिं अकम्मभूमग अंतरदीवग असंखेज्जवासाउयवज्जेहिं देवेहिं सव्वेहिं, ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, दुविहा वि मरंति, उव्वट्टित्ता णेरइयाइसु जाव अणुत्तरोववाइएसु, अत्थेगइया सिज्झंति जाव अंतं करेंति।

तेणं भंते! जीवा कइगइया कइआगइया पण्णत्ता?

गोयमा! पंचगइया चउआगइया परित्ता संखिज्जा पण्णत्ता, से तं मणुस्सा॥ ४१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों (मनुष्यों) के पांच शरीर कहे गये हैं - औदारिक यावत् कार्मण। उनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट तीन कोस की है। उनके छह संहनन और छह संस्थान होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या क्रोध कषायी यावत् लोभकषायी अथवा अकषायी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे सभी तरह के हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या आहारसंज्ञा वाले यावत् नो-संज्ञा वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे सब तरह के हैं।

प्रश्न - हे भगवन् ! वे जीव कृष्णलेश्या वाले यावत् अलेशी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे सब तरह के हैं।

वे श्रोत्रेन्द्रिय उपयोग वाले यावत् नोइन्द्रिय उपयोग वाले हैं। उनमें सभी समुद्घात पाये जाते हैं। यथा - वेदना समुद्घात यावत् केवली समुद्घात। वे संज्ञी भी हैं और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी भी हैं। वे स्त्रीवेद वाले भी हैं यावत् अवेदी भी हैं। उनमें पांच पर्याप्तियाँ पाती हैं। तीनों दृष्टियाँ और चार दर्शन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाते हैं। ये ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी हैं वे कोई दो ज्ञान वाले, कोई तीन ज्ञान वाले, कोई चार ज्ञान वाले और कोई एक ज्ञान वाले होते हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं वे नियमा मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी हैं अथवा मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे नियमा मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं वे नियमा केवलज्ञानी हैं। इसी प्रकार जो अज्ञानी हैं वे दो अज्ञान वाले अथवा तीन अज्ञान वाले हैं। वे मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी भी होते हैं। वे साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले हैं। छहों दिशाओं के पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं। वे सातवीं नरक को छोड़कर सभी नरकों से, असंख्यातवर्ष की आयु वाले तिर्यंचों को छोड़ कर सभी तिर्यंचों से, अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज और असंख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्यों को छोड़ कर शेष मनुष्यों से तथा सभी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

उनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। वे समवहत और असमवहत-दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं। वे यहां से मर कर नैरयिकों में यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों में उत्पन्न होते हैं और कोई कोई सिद्ध होते हैं यावत् सभी दुःखों का अंत करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! ये जीव कितनी गति वाले और कितनी आगति वाले कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये जीव पांच गति वाले और चार आगति वाले हैं। ये प्रत्येक शरीरी और संख्यात हैं। यह मनुष्यों का वर्णन हुआ।

विवेचन - मनुष्यों में २३ द्वारों का निरूपण इस प्रकार है -

१. शरीर द्वार - मनुष्यों में पांचों शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण) पाते हैं।

२. अवगाहना द्वार - मनुष्यों के शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाऊ (कोस) की है।

३. संहनन द्वार - मनुष्यों में छहों संहनन होते हैं।

४. संस्थान द्वार - छहों संस्थान होते हैं।

५. कषाय द्वार - क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चारों कषायों वाले और अकषायी भी होते हैं।

६. संज्ञा द्वार - चारों संज्ञा वाले और नोसंज्ञी भी हैं।

७. लेश्या द्वार - मनुष्यों में छहों लेश्या भी पाती है और अलेशी भी होते हैं।

८. इन्द्रिय द्वार - पांचों इन्द्रियां पाती है और अनिन्द्रिय भी होते हैं।

९. समुद्घात द्वार - मनुष्यों में सातों समुद्घात होते हैं।

१०. संज्ञी द्वार - मनुष्य सन्नी हैं, असन्नी नहीं और नो-सन्नी नो-असन्नी भी हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११. वेद द्वार - मनुष्यों में तीनों वेद होते हैं और अवेदी भी होते हैं।

१२. पर्याप्ति द्वार - पांचों पर्याप्तियां होती है। भाषा और मनःपर्याप्ति को एक मानने के कारण यहा पांच पर्याप्तियां ही कही गई है।

१३. दृष्टि द्वार - मनुष्यों में तीनों दृष्टियां पायी जाती है।

१४. दर्शन द्वार - चारों ही दर्शन पाते हैं।

१५. ज्ञान द्वार - मनुष्य ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी। जो सम्यग्दृष्टि होते हैं वे ज्ञानी हैं और जो मिथ्यादृष्टि हैं वे अज्ञानी हैं। कोई मनुष्य दो ज्ञान वाले, कोई तीन ज्ञान वाले, कोई चार ज्ञान वाले और कोई एक ज्ञान वाले होते हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं वे मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं। अथवा मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यायज्ञानी हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं वे केवलज्ञानी हैं। केवलज्ञान होने पर शेष चारों ज्ञान नष्ट हो जाते हैं। कहा भी है - **"णट्ठम्मि उ छाउमत्थिए णाणे"** केवलज्ञान होने पर छाद्मस्थिक ज्ञान नष्ट हो जाते हैं। जैसे जातिवंत श्रेष्ठ मरकत मणि का संपूर्ण मल दूर हो जाता है तो वह मणि एक रूप में ही अभिव्यक्त होती है। वैसे ही जब आत्मा के संपूर्ण आवरण दूर हो जाते हैं तो क्षायोपशमिक ज्ञान नष्ट होकर संपूर्ण क्षायिक ज्ञान (केवलज्ञान) एक ही रूप में अभिव्यक्त हो जाता है।

जो अज्ञानी हैं वे दो अज्ञान वाले भी होते हैं और तीन अज्ञान वाले भी होते हैं जो दो अज्ञान वाले हैं वे मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानी हैं और जो तीन अज्ञान वाले हैं वे मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी हैं।

१६. योग द्वार - तीनों योग वाले और अयोगी भी होते हैं।

१७. उपयोग द्वार - मनुष्यों में साकार उपयोग और अनाकार उपयोग दोनों होते हैं।

१८. आहार द्वार - मनुष्य छहों दिशाओं से आगत पुद्गल द्रव्यों का आहार करते हैं।

१९. उपपात द्वार - सातवीं नरक, तेऊकाय, वायुकाय और असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों और तिर्यंचों को छोड़कर शेष सभी स्थानों से आकर मनुष्य उत्पन्न हो सकते हैं।

२०. स्थिति द्वार - मनुष्यों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

२१. मरण द्वार - मनुष्य मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

२२. उद्वर्तना द्वार - मनुष्य मर कर सभी नरकों में, तिर्यंचों में, मनुष्यों और सभी अनुत्तरौपपातिक देवों में उत्पन्न होते हैं और कोई संपूर्ण कर्मों को क्षय कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त भी होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२३. गति आगति द्वार - मनुष्य पांच गतियों (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध) में जाने वाले और चार गतियों से आने वाले होते हैं।

मनुष्य प्रत्येक शरीरी और संख्यात होते हैं। इस प्रकार मनुष्यों का निरूपण हुआ।

देवों का वर्णन

से किं तं देवा?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया।

भावार्थ - देव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

देव चार प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. भवनवासी २. वाणव्यंतर ३. ज्योतिषी और ४. वैमानिक।

विवेचन - प्रश्न - देव किसे कहते हैं?

उत्तर - देवगति नाम कर्म के उदय वालों को देव कहते हैं। देव शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- संस्कृत में **'दिवु-क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्नकान्ति गतिषु।'** इस प्रकार दिवु धातु के दस अर्थ हैं। **"दीव्यन्ति निरूपम क्रीडा सुखम् अणुभवन्ति इति देवाः"** अथवा **"यथेच्छं प्रमोदन्ते इति देवाः"** अर्थात् निरूपम क्रीड़ा सुख का जो अनुभव करते हैं अथवा सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं उन्हें देव कहते हैं। देव के चार भेद हैं - १. भवनवासी २. वाणव्यंतर ३. ज्योतिषी और ४. वैमानिक।

प्रश्न - भवनवासी देव किसे कहते हैं?

उत्तर - जो देव प्रायः भवनों में रहते हैं उन्हें भवनपति या भवनवासी देव कहते हैं। टीकाकार ने भवनवासी शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है - **"भवनेषु वसन्ति इत्येवंशीला भवनवासिनः एतद् बाहुल्यतो नागकुमार आदि अपेक्षया द्रष्टव्यं, तेहि प्रायो भवनेषु वसन्ति कदाचित् आवासेषु, असुरकुमारास्तु प्राचुर्येण आवासेषु कदाचिद् भवनेषु। अथ भवनानाम् आवासानां च कः प्रति विशेषः उच्यतो, भवनानि बहिर्वृतानि अन्तः समचतुरस्राणि अधःपुष्करकर्णिका संस्थानानि, आवासाः कायमान स्थानीया महामण्डपा विविध मणि रत्न प्रदीप प्रभासित सकल दिक् चक्रवाला इति।"**

अर्थात् जो भवनों में रहते हैं उन्हें भवनवासी कहते हैं। यह व्याख्या प्रायः नागकुमार जाति के भवनवासी देवों में घटित होती है क्योंकि वे प्रायः भवनों में रहते हैं। कभी कभी आवासों में भी रहते हैं। असुरकुमार तो प्रायः आवासों में ही रहते हैं कभी कभी भवनों में भी रहते हैं।

प्रश्न - भवन और आवास किसे कहते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर – जो बाहर से गोल और अंदर समचौरस तथा नीचे पुष्करकर्णिका (कमल की कर्णिका) के आकार वाले होते हैं उनको भवन कहते हैं। जो अपने शरीर परिमाण ऊंचे सब दिशाओं में अर्थात् चारों तरफ अनेक प्रकार के मणि रत्न और दीपकों की प्रभा से प्रकाशित महामण्डप होते हैं उन्हें आवास कहते हैं।

प्रश्न – भवनों और आवासों में क्या फरक होता है?

उत्तर – भवन बाहर से गोल और अन्दर से चतुष्कोण होते हैं। उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका के आकार वाला होता है तथा शरीर परिमाण बड़े मणि तथा रत्नों के प्रकाश से चारों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले आवास (मण्डप) कहलाते हैं। भवनपति (भवनवासी) देव भवनों तथा आवासों दोनों में रहते हैं।

प्रश्न – वाणव्यंतर किसे कहते हैं?

उत्तर – वाणव्यंतर शब्द का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है –

"अन्तरं अवकाशः तच्चेहाश्रयरूपं द्रष्टव्यं, विविधं भवन, नगर आवास रूपमन्तरं येषां ते व्यन्तराः [तत्र भवनानि रत्नप्रभायाः प्रथमे रत्नकाण्डे उपर्यधश्च प्रत्येकं योजनशतमपहाय शेषे अष्टयोजन शत प्रमाणे मध्यभागे भवन्ति, नगराण्यपि तिर्यग्लोके तत्र तिर्यग्लोके यथा जम्बूद्वीपद्वाराधिपतेः विजयदेवस्य अन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वादशयोजनसहस्रप्रमाण नगरी। आवासाः त्रिष्वपि लोकेषु, तत्र उर्द्ध्वलोके पाण्डकवनादौ इति] अथवा

विगतमन्तरं मनुष्येभ्यो येषां ते व्यन्तराः तथाहि मनुष्यान् अपि चक्रवर्ती वासुदेव प्रभृतीन् भृत्यवत् उपचरन्ति केचित् व्यन्तरा इति। मनुष्येभ्यो विगतान्तरा। यदि वा विविधमन्तरं शैलान्तरं, कदरान्तरं वनान्तरं वा अथवा आश्रयरूपं येषां ते व्यन्तराः।

प्राकृतत्वाच्च सूत्रे वाणमन्तरा इति पाठ, यदि वा 'वानमन्तराः' इति पद संस्कारः तत्र इयं व्युत्पतिः – वनानाम् अन्तराणि वनान्तराणि तेषु भावाः वन्मन्तराः।

अर्थ – यहां अन्तर का अर्थ अवकाश है वह आश्रयरूप है। अनेक प्रकार के भवन और नगर जिनके रहने का स्थान है उनको व्यन्तर देव कहते हैं अथवा यहां अन्तर शब्द का अर्थ फर्क है अतः मनुष्यों के साथ जिनका अन्तर (व्यवधान) नहीं पड़ता है उनको व्यन्तर कहते हैं क्योंकि बहुत से व्यन्तर देव, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि की सेवा नौकर की तरह करते हैं मनुष्यों के साथ अन्तर (व्यवधान) नहीं रहता है इसलिए उनको व्यन्तर कहते हैं अथवा पहाड़, गुफा, वन आदि इनका आश्रय (स्थान) है उनको व्यन्तर कहते हैं। यह प्राकृत भाषा होने के कारण मूल पाठ में **'वाणमंतर'** शब्द दिया है। इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि जो वनों (जंगलों) में रहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस रत्नप्रभा पृथ्वी का प्रथमकाण्ड रत्नकाण्ड कहलाता है वह एक हजार योजन का मोटा है उसमें से १०० योजन ऊपर और १०० योजन नीचे छोड़ कर बीच के आठ सौ योजन में इन वाणव्यन्तरों के भवन हैं तथा तिरछा लोक में इनके नगर हैं जैसे कि जम्बूद्वीप के पूर्व दिशा के अन्त में आये हुए विजयद्वार के स्वामी विजयदेव की राजधानी यहां से असंख्य द्वीप समुद्र उल्लंघन करने के बाद असंख्यातवें जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में है। वह बारह हजार योजन लम्बी चौड़ी है। वाणव्यंतरों के आवास तीनों लोक में हैं। ऊर्ध्वलोक में पण्डकवन आदि में हैं।

प्रश्न - ज्योतिषी किसे कहते हैं?

उत्तर - जो देव ज्योति यानी प्रकाश करते हैं वे ज्योतिषी कहलाते हैं। ज्योतिषी शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है -

"द्योतयन्ति-प्रकाशयन्ति जगत् इति ज्योतिषीं विमानानि। यदिवा द्योतयन्ति शिरोमुकुटोपगूहिभिः प्रभामण्डल कल्पैः सूर्यादिमण्डलैः प्रकाशयन्ति इति ज्योतिषोदेवाः सूर्योदयः तथाहि-सूर्यस्य सूर्याकारं मुकुटाग्रभागे चिह्नं चन्द्रस्य चन्द्राकारं नक्षत्रस्य नक्षत्राकारं ग्रहस्य ग्रहाकारं तारकस्य तारकाकारं तैः प्रकाशयन्ति इति, आह च तत्त्वार्थभाष्यकृत-द्योतयन्ति इति ज्योतींषि-विमानानि तेषु भवा ज्योतिष्काः यदि वा ज्योतिषो-देवाःज्योतिष एव ज्योतिष्काः, मुकुटैः शिरोमुकुटोपगूहिभिः प्रभा मण्डलैसज्ज्वलैः सूर्यचन्द्रग्रहनक्षत्रतारकाणां मण्डलैः यथास्वं चिह्नैः विराजमाना द्युतिमन्तो ज्योतिष्का भवन्ति इति।"

अर्थ - जो जगत् को प्रकाशित करते हैं उन्हें ज्योतिषी कहते हैं अथवा सिर पर धारण किये हुए मुकुट की प्रभा से एवं सूर्यादि मण्डलों से प्रकाश करते हैं उनको ज्योतिषी देव कहते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र के भाष्य में भी इसी प्रकार की व्याख्या की गई है - इनके चिह्न इस प्रकार हैं - सूर्य के मुकुट में सूर्य का, इसी प्रकार चन्द्र के मुकुट में चन्द्र का, नक्षत्र के मुकुट में नक्षत्र का, ग्रह के मुकुट में ग्रह का और ताराओं के मुकुट में ताराओं का चिह्न है। इन मुकुटों के चिन्ह से जो शोभित हैं उनको ज्योतिषी देव कहते हैं। ज्योतिषी देवों के पांच भेद हैं। यथा - चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा।

प्रश्न - वैमानिक देव किसे कहते हैं?

उत्तर - विमानों में रहने वाले देवों को वैमानिक देव कहते हैं। वैमानिक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - **"विविधं मानयन्ते-उपभुज्यन्ते पुण्यवद्भिर्जीवैरिति विमानानि तेषु भवा वैमानिकाः"**

अर्थ - पुण्यवान् जीव जिनका उपभोग करते हैं अथवा जिनमें रहते हैं उनको वैमानिक कहते हैं। इनके दो भेद हैं। यथा - कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवनवासी देव

से किं तं भवणवासी?

भवणवासी दसविहा पण्णत्ता, तं जहा - असुरा जाव थणिया, से तं भवणवासी।

भावार्थ - भवनवासी देव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

भवनवासी देव दस प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार।

वाणव्यन्तर देव

से किं तं वाणमंतरा?

वाणमंतरा देव भेदो सव्वो भाणियव्वो जाव ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

भावार्थ - वाणव्यंतर देवों के कितने भेद कहे गये हैं?

देवों के सभी भेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझने चाहिये। यावत् वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्त और अपर्याप्त।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार देवों के अलग अलग भेद इस प्रकार होते हैं -

भवनवासी देवों के भेद - भवनवासी देवों के दस भेद हैं - १. असुरकुमार २. नागकुमार ३. सुपर्णकुमार ४. विद्युत्कुमार ५. अग्निकुमार ६. द्वीपकुमार ७. उदधिकुमार ८. दिशाकुमार ९. पवनकुमार और १०. स्तनितकुमार।

वाणव्यंतर देवों के भेद - वाणव्यंतर देव आठ प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. किन्नर २. किम्पुरुष ३. महोरग ४. गंधर्व ५. यक्ष ६. राक्षस ७. भूत और ८. पिशाच।

ज्योतिषी देवों के भेद - ज्योतिषी देव पांच प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. चन्द्र २. सूर्य ३. ग्रह ४. नक्षत्र और ५. तारा।

वैमानिक देवों के भेद - वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. कल्पोपन्न और २. कल्पातीत। कल्प शब्द का अर्थ है - मर्यादा अर्थात् जहां छोटे बड़े स्वामी सेवक की मर्यादा है उन्हें कल्पोपन्न कहते हैं। कल्पोपन्न देव बारह होते हैं - यथा - १. सौधर्म २. ईशान ३. सनत्कुमार ४. माहेन्द्र ५. ब्रह्मलोक ६. लान्तक ७. महाशुक्र ८. सहस्रार ९. आनत १०. प्राणत ११. आरण और १२. अच्युत।

जिन देवों में इन्द्र, सामानिक आदि की एवं छोटे बड़े की मर्यादा नहीं है अपितु सभी अहमिन्द्र हैं वे कल्पातीत कहलाते हैं। कल्पातीत देव दो प्रकार के कहे गये हैं - १. ग्रैवेयक और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अनुत्तरौपपातिक। ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के कहे गये हैं - १. अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक २. अधस्तन मध्यम ग्रैवेयक ३. अधस्तन उपरिम ग्रैवेयक ४. मध्यम अधस्तन ग्रैवेयक ५. मध्यम मध्यम ग्रैवेयक ६. मध्यम उपरिम ग्रैवेयक ७. उपरिम अधस्तन ग्रैवेयक ८. उपरिम मध्यम ग्रैवेयक और ९. उपरिम उपरिम ग्रैवेयक। अनुत्तरौपपातिक देव पांच प्रकार के कहे गये हैं - १. विजय २. वैजयंत ३. जयंत ४. अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध।

ये देव संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. पर्याप्त और २. अपर्याप्त

तेसि णं तओ सरीरगा - वेउव्विए तेयए कम्मए। ओगाहणा दुविहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं सत्त रयणीओ, उत्तरवेउव्विया जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं, सरीरगा छण्हं संघयणाणं असंघयणी णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति।

किं संठिया! गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते णं णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णा छ लेस्साओ पंच इंदिया पंच समुग्घाया सण्णी वि असण्णी वि इत्थी वेयावि पुरिसवेयावि णो णपुंसगवेया, पज्जत्ती अपज्जत्तीओ पंच, दिट्ठी तिण्णि, तिण्णि दंसणा, णाणी वि अण्णाणी वि, जे णाणी ते णियमा तिण्णाणी अण्णाणी भयणाए, तिविहे जोगे, दुविहे उवओगे, आहारो णियमा छद्दिसिं ओसण्णकारणं पडुच्च वण्णओ हालिद्द सुक्किलाइं जाव आहारमाहारेंति, उववाओ तिरियमणुस्सेसु, ठिई जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, दुविहा वि मरंति, उव्वट्टित्ता णो णेरइएसु गच्छंति तिरियमणुस्सेसु जहा संभवं, णो देवेसु गच्छंति, दुगइया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, से तं ओराला तसा पाणा॥ ४२॥

भावार्थ - देवों में तीन शरीर होते हैं - वैक्रिय, तैजस और कार्मण। उनके शरीर की अवगाहना दो प्रकार की होती है - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। इनमें जो भवधारणीय है वह जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट सात हाथ की है। उत्तरवैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग उत्कृष्ट एक लाख योजन की है। देवों के शरीर में संहनन नहीं होते हैं क्योंकि उनमें न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हड्डी होती है, न शिरा और न स्नायु (छोटी नसें) होती है। जो पुद्गल इष्ट कांत यावत् मन को आह्लादकारी होते हैं उनके शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! देवों के संस्थान कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! देवों के संस्थान दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमें जो भवधारणीय है वह समचतुरस्र संस्थान है और जो उत्तरवैक्रिय है वह नाना प्रकार का है। देवों में चार कषाय, चार संज्ञा, छह लेश्या, पांच इन्द्रिय और पांच समुद्घात होते हैं वे संज्ञी भी हैं और असंज्ञी भी हैं। देव स्त्रीवेद वाले और पुरुषवेद वाले हैं किंतु नपुंसकवेद वाले नहीं हैं। उनमें पांच पर्याप्तियाँ और पांच अपर्याप्तियाँ, तीन दृष्टियाँ और तीन दर्शन होते हैं। देव ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं। उनमें साकार और अनाकार दोनों उपयोग होते हैं। तीनों योग होते हैं। वे नियम से छहों दिशाओं के पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं। प्राय: करके हालिद्र (पीले) और श्वेत वर्ण के यावत् शुभ गंध, शुभ रस, शुभ स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। वे तिर्यंचों और मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं। उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। वे दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं। वे यहां से मर कर नरक में उत्पन्न नहीं होते, यथासंभव तिर्यंचों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, देवों में उत्पन्न नहीं होते। इसलिये वे दो गति वाले दो आगति वाले प्रत्येक शरीरी और असंख्यात कहे गये हैं। यह देवों का वर्णन हुआ। यह पंचेन्द्रियों का वर्णन हुआ। इसी के साथ उदार त्रसों का निरूपण पूरा हुआ।

विवेचन - देवों के शरीर आदि २३ द्वारों का निरूपण इस प्रकार हैं -

१. शरीर द्वार - देवों में शरीर पावे तीन - वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

२. अवगाहना द्वार - देवों के भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट सात हाथ। उत्तरवैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट एक लाख योजन।

३. संहनन द्वार - देवों के शरीर में न अस्थि है, न शिरा है और न स्नायु है अत: उनमें संहनन नहीं होता किंतु जो पुद्गल शुभ होते हैं वे शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं।

४. संस्थान द्वार - देवों के भवधारणीय शरीर में एक समचौरस संस्थान और उत्तरवैक्रिय में विविध प्रकार का संस्थान होता है।

५. कषाय द्वार - देवों में चारों कषाय होती हैं।

६. संज्ञा द्वार - चारों संज्ञाएं होती हैं।

७. लेश्या द्वार - देवों में छहों लेश्याएं इस प्रकार होती है - भवनपति और वाणव्यंतर देवों में पहली चार लेश्याएं होती हैं। ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में तेजो लेश्या। तीसरे,चौथे, पांचवें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवलोक में पद्म लेश्या। छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक शुक्ल लेश्या और पांच अनुत्तर विमान में परम शुक्ल लेश्या होती है।

८. इन्द्रिय द्वार - देवों में पांचों इन्द्रियाँ होती हैं।

९. समुद्घात द्वार - देवों में पांच समुद्घात होते हैं - वेदनीय, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय और तैजस।

१०. संज्ञी द्वार - देव संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं।

११. वेद द्वार - ये स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी होते हैं किन्तु नपुंसकवेदी नहीं होते।

१२. पर्याप्ति द्वार - देवों में पांच पर्याप्तियाँ और पांच अपर्याप्तियाँ पाती है। भाषा और मन ये दोनों पर्याप्तियाँ शामिल कुछ ही अन्तर से बंधती है अतः पांच पर्याप्तियाँ ही कही है।

१३. दृष्टि द्वार - देवों में तीनों दृष्टियाँ पाती है।

१४. दर्शन द्वार - देवों में दर्शन पावे तीन-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन।

१५. ज्ञान द्वार - देव ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले होते हैं - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान। जो अज्ञानी होते हैं वे दो अज्ञान वाले भी होते हैं और तीन अज्ञान वाले भी होते हैं। जो तीन अज्ञान वाले हैं वे मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं वे मति अज्ञान श्रुत अज्ञान वाले हैं। जो असन्नियों से आकर उत्पन्न होते हैं उनमें दो अज्ञान होते हैं।

१६. योग द्वार - देव तीनों योग वाले होते हैं।

१७. उपयोग द्वार - देवों में साकार और अनाकार दोनों उपयोग होते हैं।

१८. आहार द्वार - देव छहों दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं।

१९. उपपात द्वार - देव, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं।

२०. स्थिति द्वार - देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की होती है।

२१. मरण द्वार - देव मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

२२. च्यवन द्वार - देव मर कर (च्यव कर) पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय में गर्भज और संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

२३. गति आगति द्वार - देव दो गति (मनुष्य, तिर्यंच) से आने वाले और इन दोनों गतियों में जाने वाले होते हैं।

इस प्रकार देवों का वर्णन हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रस और स्थावर की भव स्थिति

थावरस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्थावर की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! स्थावर जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति बावीस हजार वर्ष की है।

विवेचन - स्थावर जीवों की यह भवस्थिति पृथ्वीकाय की अपेक्षा समझनी चाहिये क्योंकि अन्य स्थावरकाय की इतनी उत्कृष्ट भवस्थिति संभव नहीं है।

तसस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! त्रस की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! त्रस की जघन्य स्थिति अंतर्मुहुर्त्त की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है।

विवेचन - त्रस की यह भवस्थिति देवों और नैरयिकों की अपेक्षा समझनी चाहिए। अन्य त्रस जीवों की इतनी उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती है।

त्रस और स्थावर की कायस्थिति

थावरे णं भंते! थावरत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणिओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोया असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइ भागो।

तसे णं भंते! तसत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोया।

कठिन शब्दार्थ - पोग्गल परियट्टा - पुद्गल परावर्त, **असंखेज्जइ भागो** - असंख्यातवां भाग।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्थावर जीव स्थावर के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से अनंतकाल तक - अनन्त उत्सर्पिणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवसर्पिणी तक। क्षेत्र से अनन्त लोक असंख्यात पुद्‌गल परावर्त तक। आवलिका के असंख्यातवें भाग जितने समय होते हैं उतने पुद्‌गल परावर्त तक स्थावर जीव स्थावर रूप में रह सकता है।

प्रश्न - हे भगवन्! त्रस जीव त्रस के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट असंख्यात काल-असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक क्षेत्र से असंख्यात लोक तक त्रस जीव त्रस के रूप में रह सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्थावर काय और त्रस काय की कायस्थिति का वर्णन किया गया है। स्थावर जीव स्थावर रूप से जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक रहता है। यह कथन वनस्पतिकाय की अपेक्षा है। इस उत्कृष्ट कायस्थिति में अनन्त उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल व्यतीत हो जाते हैं, क्षेत्र की अपेक्षा अनन्त लोक समाप्त हो जाते हैं इसका आशय यह है कि अनन्त लोकों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं उन प्रदेशों का एक-एक समय में अपहार करने पर अनन्त उत्सर्पिणियां और अनन्त अवसर्पिणियां हो जाती है। इन अनन्त उत्सर्पिणियों अवसर्पिणियों में असंख्यात पुद्‌गल परावर्त हो जाते हैं। उतने काल तक स्थावर जीव स्थावर काय में रहता है। पुद्‌गल परावर्तों की असंख्येयता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय होते हैं उतने पुद्‌गल परावर्त समझने चाहिये।

त्रसकाय जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक त्रस रूप में रहता है। इस असंख्यात काल में असंख्यात उत्सर्पिणियाँ और अवसर्पिणियां व्यतीत हो जाती है तथा क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक में जितने प्रदेश होते हैं उन्हें एक एक समय में अपहार करने (निकालने) में जितनी उत्सर्पिणियां अवसर्पिणियां लगती है उतने काल तक त्रस जीव त्रस के रूप में रह सकता है। त्रस की यह कायस्थिति गति त्रस-तेउकाय और वायुकाय की अपेक्षा कही गई है, लब्धि त्रस की अपेक्षा नहीं क्योंकि लब्धि त्रस की उत्कृष्ट कायस्थिति तो साधिक दो हजार सागरोपम की कही गई है।

त्रस और स्थावर जीव का अंतर

थावरस्स णं भंते! केवइकालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहा तससंचिट्ठणाए।

तसस्स णं भंते! केवइकालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

कठिन शब्दार्थ - **तससंचिट्ठणाए** - त्रससंस्थितौ-त्रस की संस्थिति में, **वणस्सइकालो** - वनस्पतिकाल।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! स्थावर का कितना अन्तर होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! स्थावर का अन्तर त्रस के संचिट्ठणकाल जितना होता है अर्थात् जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट असंख्यात काल। काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक।

प्रश्न - हे भगवन्! त्रस का अन्तर कितना है?

उत्तर - हे गौतम! त्रस का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्थावर और त्रस जीव का अन्तर (विरह काल) बताया गया है। असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल से और क्षेत्र से असंख्यात लोक जितना अन्तर स्थावर जीव के स्थावरत्व को छोड़ने के बाद पुनः स्थावर बनने में पड़ता है। यह अन्तर तेउकाय और वायुकाय में जाने की अपेक्षा समझना चाहिये।

त्रसकाय से त्रसत्व को छोड़ने के बाद पुनः त्रसत्व प्राप्त करने में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाय जितना समय लगता है। उत्कृष्ट वनस्पतिकाल अर्थात् काल से अनन्त उत्सर्पिणियां, अवसर्पिणियां और क्षेत्र से अनन्त लोक प्रमाण जिसमें असंख्यात पुद्गल परावर्त हो जाते हैं वे पुद्गल परावर्त आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय होते हैं उतने प्रमाण होते हैं।

त्रस और स्थावर का अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! तसाणं थावराण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा तसा थावरा अणंतगुणा, से त्तं दुविहा संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ ४३॥ पढमा दुविह पडिवत्ती समत्ता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन त्रस और स्थावर जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े त्रस हैं, उनसे स्थावर जीव अनन्तगुणा हैं। यह दो प्रकार के संसारी जीवों की प्ररूपणा हुई। द्विविधा प्रतिपत्ति नामक प्रथम प्रतिपत्ति पूर्ण।

विवेचन - सबसे थोड़े त्रस जीव कहे हैं क्योंकि वे असंख्यात हैं और उनसे स्थावर अनन्तगुणा हैं क्योंकि वे अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त हैं।

यह दो प्रकार के जीवों की प्रतिपत्ति रूप प्रथम प्रतिपत्ति का निरूपण हुआ।

॥ प्रथम प्रतिपत्ति समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोच्चा तिविहा पडिवत्ती

त्रिविधाख्या द्वितीय प्रतिपत्ति

प्रथम प्रतिपत्ति में दो प्रकार के संसारी जीवों का प्रतिपादन करने के बाद आगमकार इस दूसरी त्रिविधा नामक प्रतिपत्ति में तीन प्रकार के संसारी जीवों का प्रतिपादन करते हैं। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं –

तीन प्रकार के संसारी जीव

तत्थ जे ते एवमाहंसु तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु तंजहा – इत्थी पुरिसा णपुंसगा॥ ४४॥

कठिन शब्दार्थ – **एवं** – इस प्रकार, **आहंसु** – कहते हैं, **तिविहा** – त्रिविधा-तीन प्रकार के।

भावार्थ – नौ प्रतिपत्तियों में जो संसारी जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं – स्त्री, पुरुष और नपुंसक।

विवेचन – अपेक्षा भेद से संसार समापन्नक जीवों की नौ प्रतिपत्तियाँ कही गई हैं। उनमें से पहली प्रतिपत्ति में त्रस और स्थावर, इन दो प्रकार के जीवों का निरूपण २३ द्वारों के द्वारा किया गया है। अब इस दूसरी प्रतिपत्ति में स्त्री, पुरुष और नपुंसक के भेद से तीन प्रकार के संसारी जीवों का प्रतिपादन किया जाता है। संसारी जीवों के ये तीन भेद वेद की अपेक्षा कहे गये हैं।

नोकषाय मोहनीय कर्म के उदय से रमण की अभिलाषा 'वेद' कहलाती है। जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा हो, उसे स्त्रीवेद कहते हैं। जिस कर्म के उदय से स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा हो, उसे पुरुष वेद कहते हैं। जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करने की अभिलाषा हो, उसे नपुंसक वेद कहते हैं।

एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तथा नैरयिक जीव नपुंसक वेदी होते हैं। गर्भज तिर्यंचों और गर्भज मनुष्यों में तीनों वेद पाते हैं। देवों में दो वेद पाते हैं-स्त्री वेद और पुरुष वेद, वे नपुंसक वेदी नहीं होते हैं।

स्त्रियों के भेद-प्रभेद

से किं तं इत्थीओ?

इत्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा – तिरिक्खजोणिणित्थीओ, मणुस्सित्थिओ, देवित्थीओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंच स्त्रियों के भेद

से किं तं तिरिक्खजोणिणित्थीओ?

तिरिक्खजोणिणित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - जलयरीओ थलयरीओ खहयरीओ।

से किं तं जलयरीओ?

जलयरीओ पंचविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - मच्छीओ जाव सुंसुमारीओ। से तं जलयरीओ।

से किं तं थलयरीओ?

थलयरीओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - चउप्पईओ य परिसप्पीओ य।

से किं तं चउप्पईओ?

चउप्पईओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - एगखुरीओ जाव सणप्फईओ।

से किं तं परिसप्पीओ?

परिसप्पीओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-उरपरिसप्पीओ य भुयपरिसप्पीओ य।

से किं तं उरपरिसप्पीओ?

उरपरिसप्पीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - अहीओ अयगरीओ महोरगीओ य, से तं उरपरिसप्पीओ।

से किं तं भुयपरिसप्पीओ?

भुयपरिसप्पीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - गोहीओ * णउलीओ सेधाओ सेलीओ सरडीओ सेरंधीओ ससाओ खाराओ पंचलोइयाओ चउप्पइयाओ मूसियाओ, मंगुसियाओ घरोलियाओ गोल्हियाओ जोह्लियाओ विरसिरालियाओ से त्तं भुयपरिसप्पीओ।

से किं तं खहयरीओ?

खहयरीओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - चम्मपक्खिणीओ जाव विययपक्खिणीओ, से तं खहयरीओ, से तं तिरिक्खजोणिणित्थीओ॥

---

* पाठान्तर-सेरडीओ सेरंधीओ गोहीओ णउलीओ सेधाओ सरडीओ सिरसंधीओ भावीओ सोवीओ, खाराओ पल्लवाइयाओ चउप्पइयाओ मूसियाओ मुगुसियाओ घरोलियाओ गोहियाओ जोहियाओ विरचिरालियाओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - स्त्रियाँ कितने प्रकार की कही गई है?

स्त्रियाँ तीन प्रकार की कही गई है। वे इस प्रकार हैं - १. तिर्यंचयोनिक स्त्रियां २. मनुष्य स्त्रियां और ३. देव स्त्रियां।

तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ कितने प्रकार की कही गई हैं?

तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ तीन प्रकार की कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - १. जलचरी २. स्थलचरी और ३. खेचरी।

जलचर स्त्रियाँ कितने प्रकार की कही गई हैं?

जलचर स्त्रियाँ पांच प्रकार की कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - मत्स्यी (मछली) यावत् सुंसमारी।

स्थलचर स्त्रियाँ कितने प्रकार की कही गई है?

स्थलचर स्त्रियाँ दो प्रकार की कही गई हैं। यथा - चतुष्पदी और परिसर्पी।

चतुष्पदी स्त्रियां कितने प्रकार की कही गई हैं?

चतुष्पदी स्त्रियां चार प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - एक खुरवाली यावत् सनखपद वाली स्त्रियां।

परिसर्पी स्त्रियां कितने प्रकार की कही गई हैं?

परिसर्पी स्त्रियां दो प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - उरपरिसर्पिणी और भुजपरिसर्पिणी।

उरपरिसर्पिणी कितने प्रकार की कही गई हैं?

उरपरिसर्पिणी तीन प्रकार की कही गई हैं वे इस प्रकार हैं - अहि स्त्री, अजगर स्त्री (अजगरी) और महोरग स्त्री (महोरगी)। इस प्रकार उरपरिसर्प स्त्रियों का निरूपण हुआ।

भुजपरिसर्पिणी कितने प्रकार की कही गई हैं?

भुजपरिसर्पिणी अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - गोधिका, नकुली, सेधा, सेला, सरटी (गिरगिट स्त्री) शशकी (छिपकली) खारा, पंचलौकिक, चतुष्पदिका, मूषिका, मुंगुसिका (गिलहरी), घरोलिया, गोल्हिका, योधिका, वीरचिरालिका। यह भुजपरिसर्पी स्त्रियों का कथन हुआ।

खेचरी (खेचर स्त्रियाँ) कितने प्रकार की कही गई है?

खेचर स्त्रियाँ चार प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - चर्म पक्षिणी यावत् विततपक्षिणी। इस प्रकार खेचर स्त्रियों का वर्णन हुआ। यह तिर्यंचस्त्रियों का कथन हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तिर्यंचस्त्रियों का वर्णन किया गया है। तिर्यंचस्त्रियां तीन प्रकार की कही गई है -

१. जलचरी - जो जल में चलती है या जल में होती है वे जलचरी हैं।

२. स्थलचरी - जो स्थल में चलती है या स्थल में होती है वे स्थलचरी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. खेचरी - जो आकाश में चलती है, उड़ती है, वे खेचरी हैं।

जलचरस्त्रियों के पांच भेद हैं - १. मछली २. कच्छपी ३. मकरस्त्री ४. ग्राह स्त्री और ५. सुंसुमारी।

स्थलचर स्त्रियां दो प्रकार की कही गयी है - १. चतुष्पदस्त्रियां और २. परिसर्पिणी स्त्रियां। चतुष्पद स्त्रियाँ चार प्रकार की कही गई हैं - १. एक खुरी २. द्विखुरी ३. गण्डीपदी और ४. सनखपदी। परिसर्पिणी स्त्रियाँ दो प्रकार की होती है - १. उरपरिसर्पिणी - जो छाती के बल से चलती है और २. भुजपरिसर्पिणी - जो भुजाओं के बल से चलती है। उरपरिसर्पिणी तीन प्रकार की होती है - १. अहि स्त्री २. अजगर स्त्री और ३. महोरग स्त्री। भुजपरिसर्पिणियों के अनेक भेद होते हैं जिनके नाम भावार्थ में दिये गये हैं और जो देश से और लोक से - देश की भिन्न भिन्न भाषा और लोक के भिन्न भिन्न व्यवहार से जाने जा सकते हैं।

खेचरी के चार भेद हैं - १. चर्मपक्षिणी २. लोमपक्षिणी ३. समुद्गक पक्षिणी और ४. वितत पक्षिणी।

इस प्रकार तिर्यंचयोनिक स्त्रियों का भेद प्रभेद सहित कथन किया गया है।

मनुष्य स्त्रियों के भेद

से किं तं मणुस्सित्थीओ?

मणुस्सित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - कम्मभूमियाओ अकम्मभूमियाओ अंतरदीवियाओ।

भावार्थ - मनुष्य स्त्रियां कितने प्रकार की कही गई हैं?

मनुष्य स्त्रियाँ तीन प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कर्मभूमिज स्त्रियाँ २. अकर्मभूमिज स्त्रियाँ और ३. अन्तरद्वीपज स्त्रियाँ।

से किं तं अंतरदीवियाओ?

अंतरदीवियाओ अट्ठावीसइविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - एगूरूइयाओ आभासियाओ जाव सुद्धदंतीओ, से तं अंतरदीवियाओ।

भावार्थ - अन्तरद्वीपज स्त्रियां कितने प्रकार की कही गई हैं?

अन्तरद्वीपज स्त्रियां अट्ठावीस प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - एकोरूप द्वीप की मनुष्य स्त्रियाँ, आभाषिक द्वीप की मनुष्य स्त्रियां यावत् शुद्धदंत द्वीप की मनुष्य स्त्रियां। यह अंतरद्वीप की मनुष्य स्त्रियों का वर्णन हुआ।

से किं तं अकम्मभूमियाओ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अकम्मभूमियाओ तीसविहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - पंचसु हेमवएसु पंचसु एरण्णवएसु पंचसु हरिवासेसु पंचसु रम्मगवासेसु पंचसु देवकुरासु पंचसु उत्तरकुरासु से तं अकम्मभूमियाओ।

भावार्थ - प्रश्न - अकर्मभूमिज स्त्रियाँ कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उत्तर - अकर्मभूमिज स्त्रियाँ तीस प्रकार की कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - पांच हेमवत क्षेत्रों में उत्पन्न हुई, पांच ऐरण्यवत में उत्पन्न हुई, पांच हरिवर्ष में उत्पन्न हुई, पांच रम्यकवर्ष में उत्पन्न हुई, पांच देवकुरु में उत्पन्न हुई और पांच उत्तरकुरु में उत्पन्न हुई, इस प्रकार से ये तीस अकर्मभूमिज स्त्रियाँ हैं।

से किं तं कम्मभूमियाओ?

कम्मभूमियाओ पण्णरसविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - पंचसु भरहेसु, पंचसु एरवएसु पंचसु महाविदेहेसु, से तं कम्मभूमग मणुस्सित्थिओ, से तं मणुस्सित्थीओ॥

भावार्थ - प्रश्न - कर्मभूमिज स्त्रियां कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उत्तर - कर्मभूमिज स्त्रियां पन्द्रह प्रकार की कही गई हैं वे इस प्रकार हैं - पांच भरत में उत्पन्न, पांच ऐरवत में उत्पन्न और पांच महाविदेह क्षेत्रों में उत्पन्न स्त्रियाँ, इस प्रकार कर्मभूमिज स्त्रियाँ पन्द्रह प्रकार की कही गई हैं। यह मनुष्य स्त्रियों का वर्णन हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्य स्त्रियों के भेद बतलाये गये हैं। गर्भज मनुष्य के जैसे १०१ भेद कहे हैं उसी प्रकार मनुष्य स्त्रियों के भी १०१ भेद इस प्रकार होते हैं - पन्द्रह कर्मभूमि क्षेत्रों (पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह) में उत्पन्न होने वाली पन्द्रह कर्मभूमिज स्त्रियाँ, तीस अकर्मभूमि क्षेत्रों (५ हेमवत ५ ऐरण्यवत ५ हरिवास ५ रम्यकवास ५ देवकुरु और ५ उत्तरकुरु) में उत्पन्न होने वाली तीस अकर्मभूमिज स्त्रियाँ और छप्पन अंतरद्वीपों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की स्त्रियाँ कुल १०१ भेद होते हैं।

देव स्त्रियों के भेद

से किं तं देवित्थियाओ?

देवित्थियाओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - भवणवासि देवित्थियाओ वाणमंतर देवित्थियाओ जोइसिय देवित्थियाओ वेमाणिय देवित्थियाओ।

भावार्थ - प्रश्न - देव स्त्रियाँ कितनी प्रकार की कही गई हैं ?

उत्तर - देव स्त्रियाँ चार प्रकार की कही गई हैं वे इस प्रकार हैं - १. भवनवासी देव स्त्रियां २. वाणव्यंतर देव स्त्रियाँ ३. ज्योतिषी देव स्त्रियाँ और ४. वैमानिक देव स्त्रियाँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं भवणवासि देवित्थियाओ?

भवणवासि देवित्थियाओ दस विहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - असुरकुमार भवणवासि देवित्थियाओ जाव थणियकुमार भवणवासि देवित्थियाओ, से तं भवणवासि देवित्थियाओ।

भावार्थ - प्रश्न - भवनवासी देवस्त्रियाँ (देवियाँ) कितनी प्रकार की कही गई है?

उत्तर - भवनवासी देवियाँ दस प्रकार की कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - असुरकुमार भवनवासी देव स्त्रियाँ यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव स्त्रियाँ। यह भवनवासी देव स्त्रियों का वर्णन हुआ।

से किं तं वाणमंतर देवित्थियाओ?

वाणमंतर देवित्थियाओ अट्ठविहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - पिसाय वाणमंतर देवित्थियाओ जाव गंधव्व वाणमंतर देवित्थियाओ, से तं वाणमंतर देवित्थियाओ।

भावार्थ - प्रश्न - वाणव्यंतर देवस्त्रियाँ कितने प्रकार की कही गई हैं?

उत्तर - वाणव्यंतर देव स्त्रियाँ आठ प्रकार की कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - पिशाच वाणव्यंतर देवस्त्रियाँ यावत् गंधर्व वाणव्यंतर देवस्त्रियाँ। यह वाणव्यंतर देवस्त्रियों का वर्णन हुआ।

से किं तं जोइसिय देवित्थियाओ?

जोइसिय देवित्थियाओ पंचविहाओ पण्णत्ताओ तं जहा - चंदविमाण जोइसिय देवित्थियाओ सूर विमाण जोइसिय देवित्थियाओ गहविमाण जोइसिय देवित्थियाओ णक्खत्तविमाण जोइसिय देवित्थियाओ ताराविमाण जोइसिय देवित्थियाओ से तं जोइसिय देवित्थियाओ॥

भावार्थ - प्रश्न - ज्योतिषी देवस्त्रियाँ कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - ज्योतिषी देवस्त्रियाँ पांच प्रकार की कही गई हैं वे इस प्रकार हैं - १. चन्द्रविमान ज्योतिषी देवस्त्रियाँ २. सूर्यविमान ज्योतिषी देवस्त्रियाँ ३. ग्रहविमान ज्योतिषी देवस्त्रियाँ ४. नक्षत्रविमान ज्योतिषी देवस्त्रियाँ और ५. ताराविमान ज्योतिषी देवस्त्रियाँ। यह ज्योतिषी देवस्त्रियों का वर्णन हुआ।

से किं तं वेमाणिय देवित्थियाओ?

वेमाणिय देवित्थियाओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - सोहम्मकप्प वेमाणिय देवित्थियाओ, ईसाणकप्प वेमाणिय देवित्थियाओ, से तं वेमाणित्थीओ॥ ४५॥

भावार्थ - प्रश्न - वैमानिक देव स्त्रियाँ कितने प्रकार की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - वैमानिक देव स्त्रियाँ दो प्रकार की कही गई है। यथा - १. सौधर्म कल्प वैमानिक देव स्त्रियाँ और २. ईशानकल्प वैमानिक देव स्त्रियाँ। इस प्रकार वैमानिक देव स्त्रियाँ कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देव स्त्रियों का वर्णन किया गया है। देवों के चार भेद हैं - १. भवनवासी २. वाणव्यंतर ३. ज्योतिषी और ४. वैमानिक, उसी प्रकार देवस्त्रियाँ भी चार प्रकार की कही गई है। भवनपति देवों के दस भेदों के अनुसार भवनवासी देवियाँ दस प्रकार की होती है। वाणव्यंतर देवों के आठ भेदों के अनुसार उनकी स्त्रियाँ भी आठ प्रकार की होती है। ज्योतिषी देवों के पांच भेदों के अनुसार ज्योतिषी देव स्त्रियों के भी पांच भेद समझने चाहिये। वैमानिक देव स्त्रियों के दो भेद बताये हैं - सौधर्म कल्प वैमानिक देव स्त्रियां और ईशानकल्प वैमानिक देवस्त्रियां। वैमानिक देवों में दूसरे देवलोक तक ही स्त्रियाँ है आगे के देवलोकों में नहीं, इसलिये वैमानिक देव स्त्रियों के दो ही भेद किये गये हैं।

स्त्रियों की स्थिति

इत्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! एगेणं आएसेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं, एक्केणं आएसेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं णवपलिओवमाइं, एगेणं आएसेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तपलिओवमाइं, एगेणं आएसेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं॥ ४६॥

कठिन शब्दार्थ - **आएसेणं** - आदेश (प्रकार-अपेक्षा) से

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! स्त्रियों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! स्त्रियों की स्थिति एक (पहली) अपेक्षा से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है। एक (दूसरी) अपेक्षा से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की है। एक (तीसरी) अपेक्षा से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सात पल्योपम की है। एक (चौथी) अपेक्षा से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पचास पल्योपम की कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अपेक्षा भेद से स्त्रियों की चार प्रकार की भवस्थिति का निरूपण किया गया है जो इस प्रकार हैं -

१. एक अपेक्षा से स्त्रियों की भवस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है। यह तिर्यंच स्त्री और मनुष्य स्त्री की अपेक्षा समझना चाहिये। उत्कृष्ट स्थिति ५५ पल्योपम की है यह दूसरे देवलोक-ईशानकल्प की अपरिगृहीता देवी की अपेक्षा से समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. दूसरी अपेक्षा से स्त्रियों की भवस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की कही गई है। जघन्य स्थिति पूर्ववत् तिर्यंच स्त्री और मनुष्य स्त्री की अपेक्षा और उत्कृष्ट स्थिति ईशानकल्प की परिगृहीता देवी की अपेक्षा समझना चाहिये।

३. तीसरी अपेक्षा से स्त्रियों की भवस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सात पल्योपम की कही गई है। उत्कृष्ट स्थिति सौधर्म कल्प की परिगृहीता देवी की अपेक्षा समझनी चाहिये।

४. चौथी अपेक्षा से स्त्रियों की भवस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पचास पल्योपम की कही गई है। यह उत्कृष्ट स्थिति सौधर्म कल्प की अपरिगृहीता देवी की अपेक्षा से है।

तिर्यंच योनिक स्त्रियों की स्थिति

तिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

जलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

चउप्पयथलयर तिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहा तिरिक्खजोणित्थीओ।

उरपरिसप्पथलयर तिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

एवं भुयपरिसप्प थलयर तिरिक्खजोणित्थीणं। एवं खहयर तिरिक्खजोणित्थीणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच स्त्री की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! जलचर तिर्यंच स्त्री की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जलचरी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! चतुष्पद स्थलचर तिर्यंचयोनिक स्त्री की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे औघिक (सामान्य) तिर्यंच स्त्रियों की स्थिति कही है उसी प्रकार चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच स्त्री की स्थिति समझनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यंचयोनिक स्त्री की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यंच स्त्रियों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की कही गई है। इसी प्रकार भुजपरिसर्पिणी की स्थिति भी समझना चाहिये। इसी प्रकार खेचर तिर्यंच स्त्रियों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग की कही गई है।

विवेचन - औधिक रूप से तिर्यंच स्त्रियों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है। यह उत्कृष्ट स्थिति देवकुरु आदि क्षेत्रों में चतुष्पद तिर्यंच स्त्री की अपेक्षा समझनी चाहिये। जघन्य स्थिति सबकी अंतर्मुहूर्त्त है जबकि उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है - जलचर स्त्रियों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि की, स्थलचर स्त्रियों की तीन पल्योपम की, खेचर स्त्रियों की पल्योपम के असंख्यातवें भाग की, उरपरिसर्प तथा भुजपरिसर्प तिर्यंच स्त्रियों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि की है।

मनुष्य स्त्रियों की स्थिति

मणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णिपलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

कठिन शब्दार्थ - खेत्तं - क्षेत्र की, **पडुच्च** - अपेक्षा, **धम्मचरणं** - धर्माचरण (चारित्र धर्म) की, **देसूणा** - देशोन, **पुव्वकोडी** - पूर्वकोटि (एक करोड़ पूर्व)। ७० लाख ५६ हजार करोड़ (७०,५६,००००००००० सत्तर, छप्पन और दस शून्य) वर्षों का एक पूर्व होता है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य स्त्रियों की स्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है और धर्माचरण (चारित्र भाव) की अपेक्षा से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) पूर्वकोटि की कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्य स्त्रियों की भवस्थिति दो प्रकार से कही गई है - १. क्षेत्र की अपेक्षा से और २. धर्माचरण (चारित्र धर्म) की अपेक्षा से।

क्षेत्र की अपेक्षा मनुष्य स्त्रियों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है। यह उत्कृष्ट स्थिति देवकुरु आदि क्षेत्र तथा भरत आदि क्षेत्र में सुषम आदि काल की अपेक्षा से समझनी चाहिये। धर्माचरण (चारित्र धर्म) की अपेक्षा से मनुष्य स्त्रियों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उत्कृष्ट स्थिति देशोन (कुछ कम) पूर्व कोटि की है। जघन्य स्थिति उसी भव में परिणामों की धारा बदलने पर चारित्र से गिर जाने की अपेक्षा समझनी चाहिये। कम से कम अंतर्मुहूर्त्त काल तक तो चारित्र रहता ही है। किसी मनुष्य स्त्री ने तथाविध क्षयोपशम भाव से सर्वविरति रूप चारित्र अंगीकार किया और उसी भाव में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त बाद वह परिणामों की धारा बदलने से पतित होकर अविरत सम्यग्दृष्टि बन गई अथवा मिथ्यात्व में चली गई अथवा चारित्र अंगीकार करने के बाद मृत्यु हो गई तब भी सातवें गुणस्थान में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त काल तक रहने की तो संभावना है ही, इस अपेक्षा से चारित्र धर्म की अपेक्षा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की कही गई है।

दूसरी अपेक्षा से सर्वविरति के स्थान पर देशविरति रूप चारित्र धर्म होने पर भी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की संभव है क्योंकि देशविरति के भी बहुत से भंग होते हैं।

शंका - उभय रूप चारित्र की संभावना होते हुए भी देशविरति का ही ग्रहण क्यों किया जाय?

समाधान - यहां देशविरति का ग्रहण करने का कारण यह है कि प्रायः सर्वविरति, देशविरति पूर्वक होती है। टीका में भी कहा है कि -

सम्मत्तम्मि उ लद्धे पलिय पुहुत्तेण सावओ होइ।

चरणोवसमखयाणं सागर संखंतरा होंति॥

अर्थात् - सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् पल्योपम पृथक्त्वकाल में श्रावकत्व की प्राप्ति और चारित्र मोहनीय का उपशम या क्षय संख्यात सागरोपम के बाद होता है।

धर्माचरण की अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति देशोन पूर्व कोटि की कही गई है क्योंकि एक करोड़ पूर्व की आयु वाली स्त्रियों के आठ वर्ष की उम्र के पहले चारित्र परिणाम नहीं आते। आठ वर्ष की उम्र के बाद चारित्र अंगीकार करे और करोड़ पूर्व के अन्तिम समय तक चारित्र का पालन करे इस अपेक्षा से उत्कृष्ट स्थिति करोड़ पूर्व की कही है और आठ वर्ष कम होने से देशोन (कुछ कम) कहा गया है। इस प्रकार मनुष्य स्त्रियों की औघिक (सामान्य) भवस्थिति का दो अपेक्षाओं से कथन किया गया है। अब सूत्रकार अलग-अलग क्षेत्रों की मनुष्य स्त्रियों की स्थिति का वर्णन करते हैं -

कम्मभूमयमणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

भावार्थ- **प्रश्न**-हे भगवन्! कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! कर्मभूमि के मनुष्य स्त्रियों की स्थिति क्षेत्र की अपेक्षा से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है और चारित्र धर्म की अपेक्षा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति देशोन (कुछ कम) पूर्व कोटि की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भरहेरवयकम्मभूमग मणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भरत और ऐरवत क्षेत्र की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की स्थिति कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पूर्वविदेह और पश्चिम विदेह की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की स्थिति है धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की स्थिति कही गई है।

विवेचन - क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति भरत और ऐरवत में सुषमसुषम आरे में होती है। पूर्व पश्चिम विदेहों में पूर्वकोटि स्थिति है क्योंकि क्षेत्र स्वभाव से इससे अधिक आयु वहां नहीं होती है। अतः क्षेत्र की अपेक्षा कर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है। धर्माचरण की अपेक्षा स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की होती है जो औघिक मनुष्य स्त्रियों की स्थिति के अनुसार पूर्ववत् समझनी चाहिये।

अकम्मभूमग मणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग ऊणगं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

हेमवएरण्णवए जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं उक्कोसेणं पलिओवमं, संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिवासरम्मयवास अकम्मभूमग मणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगाइं उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

देवकुरु उत्तरकुरु अकम्मभूमग मणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगाइं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

अंतरदीवग अकम्मभूमग मणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणयं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी॥

कठिन शब्दार्थ - **जम्मणं** - जन्म की, **संहरणं** - संहरण की, **ऊणगं** - न्यून।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! अकर्मभूमि की मनुष्य स्त्रियों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की जन्म की अपेक्षा स्थिति जघन्य देशोन पल्योपम, पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की स्थिति है।

हेमवत हेरण्यवत क्षेत्र की मनुष्य स्त्रियों की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य देशोन पल्योपम, पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की और संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की है।

प्रश्न - हे भगवन्! हरिवर्ष रम्यकवर्ष की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जन्म की अपेक्षा देशोन दो पल्योपम, पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम और उत्कृष्ट दो पल्योपम की है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की है।

प्रश्न - हे भगवन्! देवकुरु-उत्तरकुरु की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जन्म की अपेक्षा जघन्य देशोन तीन पल्योपम, पल्योपम के असंख्यातवें भाग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की है।

प्रश्न - हे भगवन्! अन्तरद्वीपों की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जन्म की अपेक्षा जघन्य देशोन पल्योपम के असंख्यातवें भाग, पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की स्थिति है।

विवेचन - जन्म और संहरण की अपेक्षा अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति का वर्णन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। सामान्य रूप से जन्म की अपेक्षा अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की जघन्य स्थिति पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है। जघन्य स्थिति हैमवत् हैरण्यवत क्षेत्र की अपेक्षा से एवं उत्कृष्ट स्थिति देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र की अपेक्षा से समझनी चाहिये।

संहरण का अर्थ है - कर्मभूमिज स्त्रियों को अकर्मभूमि में ले जाना। कर्मभूमि से उठा कर अकर्मभूमि में संहृत की गई स्त्री अकर्मभूमि की कही जाती है। अतः संहरण की अपेक्षा अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की कही गई है।

हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष और देवकुरु-उत्तरकुरु की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की जन्म और संहरण की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अलग अलग भावार्थ में बतलायी गयी है। अंतरद्वीप की मनुष्य स्त्रियों की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य कुछ कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण की है। उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति से जघन्य स्थिति पल्योपम का असंख्यातवें भाग कम है।

देव स्त्रियों की स्थिति

देवित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देव स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! देव स्त्रियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देवियों की औघिक (सामान्य) स्थिति का कथन किया गया है। भवनपति और वाणव्यंतर देवियों की अपेक्षा जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति कही गई है तथा ईशान देवलोक की देवी की अपेक्षा उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की स्थिति कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवणवासि देवित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवास सहस्साइं उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं। एवं असुरकुमार भवणवासि देवित्थियाए, णागकुमार भवणवासि देवित्थियाए वि जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणाइं पलिओवमाइं, एवं सेसाण वि जाव थणियकुमाराणं।

वाणमंतरीणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भवनवासी देव स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! भवनवासी देवस्त्रियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम की कही गई है। इसी प्रकार असुरकुमार भवनवासी देवस्त्रियों की, नागकुमार भवनवासी देवस्त्रियों की जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की तथा शेष देवस्त्रियाँ यावत् स्तनितकुमार देवस्त्रियों की स्थिति समझनी चाहिये।

वाणव्यंतर देव स्त्रियों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति आधा पल्योपम की है।

जोइसिय देवित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिइं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अट्ठमं भागं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, चंदविमाणजोइसिय देवित्थियाए जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं तं चेव, सूरविमाणजोइसिय देवित्थियाए जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिमब्भहियं, गहविमाण जोइसिय देवीत्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं णक्खत्तविमाण जोइसिय देवित्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउभाग पलिओवमं साइरेगं ताराविमाणजोइसिय देवित्थियाए जहण्णेणं अट्ठभागं पलिओवमं उक्कोसेणं साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देव स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देवस्त्रियों की जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक आधा पल्योपम है।

चन्द्रविमान ज्योतिषी देव स्त्रियों की जघन्य स्थिति पल्योपम का चौथा भाग (पाव पल्योपम) और उत्कृष्ट स्थिति पचास हजार वर्ष अधिक आधा पल्योपम की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यविमान ज्योतिषी देव स्त्रियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक आधा पल्योपम है।

ग्रहविमान ज्योतिषी देव स्त्रियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट आधा पल्योपम।

नक्षत्र विमान ज्योतिषी देव स्त्रियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के चौथे भाग से कुछ अधिक।

तारा विमान ज्योतिषी देव स्त्रियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक।

वेमाणिय देवित्थियाए जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं। सोहम्मकप्प वेमाणिय देवित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं सत्तपलिओवमाइं।

ईसाणदेवित्थीणं जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं णवपलिओवमाइं ॥ ४७ ॥

भावार्थ - वैमानिक देव स्त्रियों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्योपम की है।

प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्मकल्प की वैमानिक देव स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक पल्योपम और उत्कृष्ट सात पल्योपम।

ईशानकल्प की वैमानिक देवस्त्रियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चारों प्रकार की देवियों की भवस्थिति का कथन किया गया है। सौधर्म कल्प की परिगृहीता देवियों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम और उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम की है। अपरिगृहीता देवियों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति पचास (५०) पल्योपम की है। ईशानकल्प की परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य कुछ अधिक एक पल्योपम और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की तथा अपरिगृहीता देवियों की जघन्य स्थिति पल्योपम से कुछ अधिक और उत्कृष्ट पचपन (५५) पल्योपम की है।

वैमानिक देवियों की स्थिति ओघ रूप से एक पल्योपम की कही गई है किन्तु सौधर्म ईशान देवलोक की अलग अलग पृच्छा में अपरिगृहीता देवियों की विवक्षा नहीं करते हुए परिगृहीता देवियों की अपेक्षा ही स्थिति बताई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

टीका में भी ५०-५५ पल्योपम के पाठ के लिए लिखा है - **"एतच्च सूत्रं समस्तमपि क्वापि साक्षाद् दृश्यते क्वचिच्चैवमतिदेशः- "एवं देवीणं ठिई भाणियव्वा जहा पण्णवणाए जाव ईसाण देवीण" मित्ति॥**

धारणा से ऐसा समझा जाता है कि सौधर्म ईशान देवलोक में क्रमशः सात व नौ पल्योपम की स्थिति वाली देवियां ही बताई है इसका कारण यह है कि इतनी स्थिति वाली देवियां वहां पर देवों के काम में आने वाली परिगृहीता देवियों की अपेक्षा समझना चाहिये। इससे ज्यादा स्थिति वाली देवियां आगे के देवलोकों में काम आती है, अतः यहां पर इतनी ही स्थिति की देवियां बताई गई है। ऐसी सम्भावना है।

स्त्री वेद की कायस्थिति

इत्थी णं भंते! इत्थित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! एक्केणाएसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं दसुत्तरं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं।

एक्केणाएसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अट्ठारस पलिओवमाइं पुव्वकोडी पुहुत्तमब्भहियाइं।

एक्केणाएसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं चउद्दस पलिओवमाइं पुव्वकोडी पुहुत्तमब्भहियाइं।

एक्केणाएसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं पलिओवमसयं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं।

एक्केणाएसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं पलिओवमपुहुत्तं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं।

कठिन शब्दार्थ - पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं - पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्त्री, स्त्री रूप में लगातार कितने काल तक रह सकती है?

उत्तर - १. हे गौतम! एक आदेश-अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम तक स्त्री, स्त्री रूप में रह सकती है।

२. एक आदेश से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम तक स्त्री, स्त्री रूप में रह सकती है।

३. एक आदेश (अपेक्षा) से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम तक स्त्री, स्त्री रूप में रह सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. एक आदेश से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक सौ पल्योपम तक स्त्री, स्त्री रूप में रह सकती है।

५. एक आदेश से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम पृथक्त्व तक स्त्री, स्त्री रूप में रह सकती है।

विवेचन - स्त्री, स्त्री के रूप में लगातार कितने समय तक रह सकती है? इस जिज्ञासा के समाधान में सूत्रकार पांच आदेश (अपेक्षाएं) बतलाते हैं, जो इस प्रकार है -

१. प्रथम आदेश (अपेक्षा) से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम तक स्त्री स्त्री रूप में लगातार रह सकती है।

कोई स्त्री उपशम श्रेणी पर आरूढ हुई और वहां उसने वेद त्रय का उपशमन किया और अवेदकता का अनुभव करने लगी तत्पश्चात् वह वहां से पतित हो गई तो एक समय तक स्त्रीवेद में रही और दूसरे समय काल करके देव पर्याय से उत्पन्न हो गई। इस अपेक्षा से उसका स्त्रीत्व काल जघन्य एक समय मात्र ही रहा। स्त्री का स्त्री रूप से उत्कृष्ट अवस्थान काल इस प्रकार समझना चाहिये-

कोई जीव पूर्वकोटि की आयु वाली मनुष्य स्त्रियों में या तिर्यंचस्त्रियों में उत्पन्न हो जाय और वह वहां पांच या छह बार उत्पन्न होकर ईशान कल्प की अपरिगृहीता देवी के रूप में उत्कृष्ट ५५ पल्योपम की स्थिति से उत्पन्न हो जाय। वहां से पुनः दूसरी बार ईशानकल्प में उत्कृष्ट ५५ पल्योपम स्थिति वाली अपरिगृहीता देवी के रूप में उत्पन्न हो जाय, इसके बाद वह अवश्य ही वेदान्तर को प्राप्त होती है। इस प्रकार पांच या छह बार पूर्वकोटि वाली मनुष्य स्त्री या तिर्यंच स्त्री के रूप में उत्पन्न होने का काल और दो बार ईशान देवलोक में उत्पन्न होने का काल (५५+५५) = ११० पल्योपम, ये दोनों मिलाकर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम का उत्कृष्ट काल हो जाता है। इतने काल तक स्त्री स्त्री रूप से लगातार रह सकती है इसके बाद अवश्य ही वेदान्तर होता है।

शंका - स्त्री का स्त्री रूप से उत्कृष्ट अवस्थान काल इतना ही क्यों कहा गया है। देवकुरु और उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों में उत्पन्न होने की अपेक्षा इससे अधिक भी तो संभव है?

समाधान - यह शंका उचित नहीं है क्योंकि देवी के भव से च्यवित देवी का जीव असंख्यात वर्ष की आयु वाली स्त्रियों में स्त्री रूप उत्पन्न नहीं होता और न वह असंख्यात आयुष्यवाली स्त्री उत्कृष्ट आयु वाली देवियों में उत्पन्न हो सकती है क्योंकि प्रज्ञापना सूत्र की टीका में कहा है कि - **"जतो असंखेज्जवासाउय उक्कोसियं ठिइं न पावेइ" अर्थात्** असंख्यात वर्ष की आयु वाली स्त्री उत्कृष्ट स्थिति को नहीं पा सकती है। अतः उपरोक्त उत्कृष्ट स्थिति से अधिक स्थिति संभव नहीं है।

२. द्वितीय आदेश से स्त्री का स्त्री रूप से अवस्थान काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम का कहा है जो इस प्रकार समझना चाहिये - कोई जीव पूर्वकोटि प्रमाण की आयु वाली मनुष्य स्त्रियों में या तिर्यंच स्त्रियों में पांच या छह बार उत्पन्न हो जाय और फिर वहां से ईशान देवलोक में दो बार उत्कृष्ट स्थिति वाली परिगृहीता देवियों में उत्पन्न हो, अपरिगृहीता देवियों में नहीं। इस प्रकार स्त्रीवेद का उत्कृष्ट अवस्थान काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम का सिद्ध हो जाता है।

३. तृतीय आदेश से स्त्रीवेद का अवस्थान काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम कहा है जो इस प्रकार है - कोई जीव पूर्वकोटि प्रमाण आयु वाली मनुष्य स्त्रियों में या तिर्यंच स्त्रियों में पांच या छह बार उत्पन्न हो जाय और इसके बाद सौधर्म कल्प में सात पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली परिगृहीता देवियों में दो बार उत्पन्न हो जाय तो यह उत्कृष्ट स्थिति होती है।

४. चतुर्थ आदेश से स्त्रीवेद का अवस्थान काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम कहा गया है, जो इस प्रकार हैं - कोई जीव पूर्वकोटि प्रमाण आयु वाली मनुष्य स्त्रियों में या तिर्यंच स्त्रियों में पांच अथवा छह बार उत्पन्न हो जाय और दो बार ५० पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली सौधर्म कल्प की अपरिगृहीता देवियों में देवी रूप से उत्पन्न हो तो यह उत्कृष्ट स्थिति होती है।

५. पंचम आदेश से स्त्रीवेद का अवस्थान काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम पृथक्त्व कहा गया है जो इस प्रकार है - कोई जीव पूर्व कोटि आयु वाली मनुष्य स्त्रियों में या तिर्यंच स्त्रियों में सात भव करके आठवें भव में देवकुरु आदि की तीन पल्योपम की स्त्रियों में स्त्री रूप से उत्पन्न हो और वहां से मर कर सौधर्म देवलोक की जघन्य स्थिति वाली देवियों में देवी रूप से उत्पन्न हो तो पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम पृथक्त्व प्रमाण स्त्रीवेद का अवस्थान काल सिद्ध होता है।

स्त्री की कायस्थिति में पांच मान्यता बताई है। ११० पल्य प्रत्येक करोड़ पूर्व आदि। स्त्री के लगातार आठ भव से अधिक नहीं होंगे। यद्यपि सन्नी की कायस्थिति प्रत्येक सौ सागर झाझेरी है। पर स्त्री रूप से ८ भव से अधिक नहीं। यदि देवी के साथ करे तो दो भव ही देवी के, ६ भव मनुष्यणी या तिर्यंचणी के करे। केवल मनुष्यणी या तिर्यंचणी के भी आठ से अधिक नहीं।

इस प्रकार सूत्रकार ने स्त्री, स्त्री रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकती है इसके उत्तर में पांच अपेक्षाओं से कथन किया है। ये पांचों ही आदेश अपनी अपनी अपेक्षा से सही है। उक्त पांच आदेशों में से कौनसा आदेश समीचीन है, इसका निर्णय अतिशय ज्ञानी या सर्वोत्कृष्ट श्रुतलब्धि सम्पन्न ही कर सकते हैं। वर्तमान में वैसी स्थिति न होने से सूत्रकार ने पांचों आदेशों का उल्लेख कर दिया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और अपनी ओर से कोई निर्णय नहीं दिया है। हमें "**तत्त्व केवलिगम्य**" मान कर पांचों आदेशों को- अलग अलग अपेक्षाओं को समझना चाहिये।

तिर्यंच स्त्री की कायस्थिति

तिरिक्ख जोणित्थी णं भंते! तिरिक्ख जोणित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडी पुहुत्तमब्भहियाइं, जलयरीए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं।

चउप्पय थलयर तिरिक्खजोणित्थी जहा ओहिया, तिरिक्खजोणित्थी।

उरपरिसप्पी भुयपरिसप्पीत्थीणं जहा जलयरीणं, खहयरित्थीणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच स्त्री, तिर्यंच स्त्री के रूप में लगातार कितने काल तक रह सकती है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच स्त्री, तिर्यंच स्त्री रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

जलचरी (जलचर स्त्री) जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व तक निरन्तर जलचर स्त्री रूप रह सकती है।

चतुष्पद स्थलचर स्त्री के विषय में औघिक (सामान्य) तिर्यंच स्त्री की तरह समझना चाहिये।

उरपरिसर्प स्त्री और भुजपरिसर्प स्त्री के विषय में जलचर स्त्री की तरह कह देना चाहिये।

खेचर स्त्री, खेचर स्त्री के रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रह सकती है।

विवेचन - तिर्यंच स्त्री का तिर्यंच स्त्री रूप में लगातार रहने का काल जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम का कहा गया है जो इस प्रकार समझना चाहिये -

कोई जीव तिर्यंच स्त्री रूप से कम से कम अन्तर्मुहूर्त्त काल तक रह कर मर कर दूसरे वेद को प्राप्त कर ले अथवा मनुष्य आदि विलक्षण भाव को प्राप्त कर ले तो जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की स्थिति होती है। उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार संभव है - मनुष्य और तिर्यंच उसी रूप में उत्कृष्ट आठ भव लगातार कर सकते हैं क्योंकि - '**णरतिरियाणं सतट्ठभवा**' ऐसा शास्त्र का कथन है। इनमें से सात भव तो संख्यात वर्ष की आयु वाले होते हैं और आठवां भव असंख्यात वर्ष की आयु वाला होता है। अर्थात् पर्याप्त मनुष्य अथवा पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच निरन्तर यथासंख्य सात पर्याप्त मनुष्य भव या सात पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के भवों को भोग कर यदि आठवें भव में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुनः पर्याप्त मनुष्य रूप से या पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच रूप से उत्पन्न हो तो वे नियम से असंख्यात वर्ष की आयु वाले ही उत्पन्न होते हैं, संख्यात वर्ष की आयु वाले नहीं होते। असंख्यात वर्ष की आयु वाला मर कर नियम से देवलोक में ही उत्पन्न होता है अतः लगातार नौवां भव मनुष्य या संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच का नहीं होता। अतएव जब पीछे के सातों भव उत्कृष्ट से पूर्व कोटि आयुष्य के हों और आठवां भव देवकुरु आदि में उत्कृष्ट तीन पल्योपम का हो, इस अपेक्षा से तिर्यंच स्त्री का उत्कृष्ट अवस्थान काल पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम का होता है।

जलचर स्त्रियाँ यदि निरन्तर रूप से जलचर स्त्रियों के रूप में होती है तो जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पूर्वकोटि पृथक्त्व तक होती है। पूर्व कोटि आयु वाले आठ भवों के बाद में अवश्य ही जलचरी भव छूट जाता है। चतुष्पद स्थलचर स्त्री का चतुष्पद स्थलचर स्त्री के रूप में लगातार रहने का काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है।

उरपरिसर्प स्त्री और भुज परिसर्प स्त्री का अवस्थान काल जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व है।

खेचरी का अवस्थान काल जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

मनुष्य स्त्री की कायस्थिति

मणुस्सित्थी णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी, एवं कम्मभूमियावि भरहेरवयावि, णवरं खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडी अब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! मनुष्य स्त्री, मनुष्य स्त्री रूप में लगातार कितने काल तक रहती है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य स्त्री मनुष्य स्त्री, रूप में क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक तथा चारित्र की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि तक रहती है। इसी प्रकार कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों और भरत ऐरवत क्षेत्र की मनुष्य स्त्रियों के विषय में भी समझना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि तक रहती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सामान्य रूप से मनुष्य स्त्री का अवस्थान काल क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम का कहा गया है। इसका स्पष्टीकरण तिर्यंच स्त्री के समान समझ लेना चाहिए। धर्माचरण (चारित्र धर्म) की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) पूर्व कोटि की स्थिति कही गयी है। सर्व विरति परिणाम का तदावरण कर्म के क्षयोपशम की विचित्रता से एक समय मात्र काल ही संभव है तदनन्तर मरण हो जाने से सर्व विरति परिणाम का प्रतिपात हो जाता है। चरम श्वासोच्छ्वास पर्यंत चारित्र पालने के कारण संपूर्ण चारित्र काल पूर्व कोटि कहा है। आठ वर्ष रूप देश से न्यून होने के कारण धर्माचरण की अपेक्षा उत्कृष्ट अवस्थान काल देशोन पूर्व कोटि कहा गया है।

भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्री मनुष्य स्त्री के रूप में लगातार जघन्य अंतर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है। उत्कृष्ट अवस्थान काल इस प्रकार समझना चाहिए -

पूर्व कोटि आयु वाली किसी पूर्व विदेह या पश्चिम विदेह की स्त्री को किसी ने भरतादि क्षेत्र में एकांत सुषमादि काल के समय संहृत किया, यद्यपि वह महाविदेह में उत्पन्न हुई तब भी भरत आदि क्षेत्र में ले आने के कारण भरत आदि की कही जाती है। वह स्त्री पूर्व कोटि तक जीवित रह कर अपनी आयु का क्षय होने पर वहीं भरतादि क्षेत्र में एकान्त सुषमादि काल के प्रारम्भ में उत्पन्न हुई। इस अपेक्षा से देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम का उसका अवस्थान काल हुआ। धर्माचरण की अपेक्षा अवस्थान काल कर्मभूमिज मनुष्य स्त्री के समान समझ लेना चाहिये।

पुव्वविदेह अवरविदेहित्थी णं खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडीपुहुत्तं, धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

भावार्थ - पूर्व विदेह पश्चिम विदेह की स्त्रियों का अवस्थान काल क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है।

अकम्मभूमियमणुस्सित्थी णं भंते! अकम्मभूमिग मणुस्सित्थि त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री के रूप में जन्म की अपेक्षा जघन्य देशोन पल्योगम का असंख्यातवां भाग न्यून एक पल्योपम और तीन पल्योपम तक तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

विवेचन - अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री का जन्म की अपेक्षा अवस्थान काल जघन्य से देशोन (कुछ कम) एक पल्योपम, देशोन कितना इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है - पल्योपम का असंख्यातवां भाग न्यून एक पल्योपम और उत्कृष्ट तीन पल्योपम। संहरण की अपेक्षा अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री का अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री रूप से रहने का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त्त है। यह अन्तर्मुहूर्त्त आयु के शेष रहते उसका संहरण होने की अपेक्षा से कहा गया है और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक तीन पल्योपम का अवस्थान काल इस प्रकार समझना चाहिये - जैसे कोई पूर्व विदेह या पश्चिम विदेह की देशोन पूर्व कोटि की आयु वाली मनुष्य स्त्री है उसका देवकुरु आदि में संहरण हुआ तो वह देवकुरु आदि की स्त्री कहलाई। वह वहाँ देशोन पूर्व कोटि तक जीवित रह कर और कालधर्म प्राप्त कर वहीं तीन पल्योपम की आयु से उत्पन्न हो जाय, इस अपेक्षा से देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम का अवस्थान काल सिद्ध हो जाता है।

संहरण की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अवस्थान से यह प्रतिपादित होता है कि कुछ न्यून अन्तर्मुहूर्त्त आयु शेष वाली स्त्री का तथा गर्भस्थ का संहरण नहीं होता है।

यह समुच्चय रूप से अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियों का अवस्थान काल हुआ। अब विशेष रूप में अलग-अलग क्षेत्र की मनुष्य स्त्रियों का अवस्थान काल कहा जाता है -

हेमवएरण्णवए अकम्मभूमग मणुस्सित्थी णं भंते! हेमवयएरण्णवय अकम्मभूमिय मणुस्सित्थि त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं, उक्कोसेणं पलिओवमं। संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! हेमवत ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री हेमवत ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है?

उत्तर - हे गौतम! हेमवत ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री हेमवत ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री के रूप में जन्म की अपेक्षा जघन्य देशोन पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक पल्योपम और उत्कृष्ट एक पल्योपम तक तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक एक पल्योपम तक रह सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिवास रम्मगवास अकम्मभूमग मणुस्सित्थी णं भंते!० जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगाइं उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडिमब्भहियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! हरिवास रम्यकवास अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री हरिवास रम्यकवास अकर्मभूमज मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है?

उत्तर - हे गौतम! हरिवास रम्यकवास अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री, हरिवास रम्यकवास अकर्म-भूमिज मनुष्य स्त्री के रूप में जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम दो पल्योपम तक और उत्कृष्ट दो पल्योपम तक तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक दो पल्योपम तक रह सकती है।

उत्तरकुरुदेवकुरूणं०, जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगाइं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उत्तरकुरु देवकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री उत्तरकुरु देवकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है?

उत्तर - हे गौतम! उत्तरकुरु देवकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री उत्तरकुरु देवकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री के रूप में जन्म की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम तीन पल्योपम और उत्कृष्ट से तीन पल्योपम तक तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

अंतरदीवाकम्मभूमगमणुस्सित्थी णं भंते! अंतरदीवा कम्मभूमग मणुस्सित्थीत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं। साहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अन्तरद्वीपज अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ अन्तरद्वीपज अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों के रूप में कितने काल तक रह सकती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अन्तरद्वीपज अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ अन्तरद्वीपज अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों के रूप में जन्म की अपेक्षा जघन्य देशोन पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम पल्योपम का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग तक तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक रह सकती है।

देव स्त्री की कायस्थिति

देवित्थी णं भंते! देवित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जच्चेव ठिई सच्चेव संचिट्ठणा भाणियव्वं॥ ४८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देव स्त्री, देव स्त्री के रूप में कितने काल तक रह सकती है?

उत्तर - हे गौतम! जो उसकी भवस्थिति है वही उसका अवस्थान काल है।

विवेचन - हेमवत ऐरण्यवत, हरिवर्ष रम्यकवर्ष, देवकुरु उत्तरकुरु और अन्तरद्वीपज स्त्रियों की जन्म की अपेक्षा जो जिसकी स्थिति है वही उसका अवस्थान काल है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से जिसकी जो स्थिति है उससे देशोन पूर्व कोटि अधिक अवस्थान काल समझना चाहिए।

मनुष्य स्त्रियों में क्षेत्र की अपेक्षा में सम्मुचय मनुष्य क्षेत्र होने से तीन पल्योपम और पूर्वकोटि पृथक्त्व कायस्थिति बताई गई है।

देवियों की जो भवस्थिति है वही उनका अवस्थानकाल है क्योंकि तथाविध भव स्वभाव से उनमें कायस्थिति नहीं होती है कारण देवी मरकर पुनः देवी नहीं होती।

स्त्रियों का अंतर

इत्थी णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतंकालं वणस्सइकालो, एवं सव्वासिं तिरिक्खित्थीणं।

मणुस्सित्थीए खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उवकोसेणं वणस्सइकालो। धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अणंतंकालं जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं जाव पुव्वविदेह अवर विदेहियाओ।

कठिन शब्दार्थ - वणस्सइकालो - वनस्पतिकाल, **अवड्ढपोग्गलपरियट्टं** - अपार्द्ध (अर्द्ध) पुद्गल परावर्त।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्त्री के पुनः स्त्री होने में कितने काल का अंतर होता है?

उत्तर - हे गौतम! स्त्री पर्याय का त्याग कर पुनः स्त्री पर्याय प्राप्त करने में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल का अन्तर होता है। ऐसा सभी तिर्यंच स्त्रियों के विषय में समझना चाहिए।

मनुष्य स्त्रियों का अन्तर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् देशोन अपार्ध (अर्द्ध) पुद्गल परावर्तन। इसी प्रकार यावत् पूर्वविदेह और पश्चिम विदेह की मनुष्य स्त्रियों के विषय में कहना चाहिये।

विवेचन - स्त्री पर्याय का त्याग कर जितने काल में स्त्री, पुनः स्त्री पर्याय को धारण करती है वह काल का व्यवधान अन्तर कहलाता है। औघिक (सामान्य) रूप से स्त्रीवेद का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) कहा गया है जो इस प्रकार समझना चाहिए - किसी स्त्री ने मरकर परभव से एक अन्तर्मुहूर्त्त तक पुरुष वेद या नपुंसक वेद का अनुभव किया तत्पश्चात् वह वहाँ से मर कर पुनः स्त्री रूप में उत्पन्न हो गई, इस अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का अन्तर होता है। उत्कृष्ट अन्तर अनंतकाल, वनस्पतिकाल की अपेक्षा से कहा गया है। इस वनस्पतिकाल रूप अनंतकाल में **"अणंताओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गल परियट्टा"** - काल की अपेक्षा अनन्त उत्सर्पिणियाँ अवसर्पिणियां बीत जाती है, क्षेत्र से अनन्त लोक और असंख्यात पुद्गल परावर्त्त हो जाते हैं। ये पुद्गल परावर्त्त आवलिका के असंख्यातवें भाग रूप होते हैं। इतना काल वनस्पतिकाल कहा गया है। इतने लम्बे काल तक स्त्रीत्व का व्यवच्छेद हो जाता है और फिर स्त्रीत्व की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार सामान्य रूप से जलचर स्थलचर खेचर तिर्यंच स्त्रियों का और औघिक मनुष्य स्त्रियों का पुनः स्त्रीत्व की प्राप्ति का विरह काल समझना चाहिये।

कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों का अन्तर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट से अनन्तकाल अर्थात् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त्त जितना है अर्थात् प्राप्त की गई चरणलब्धि इतने समय पर्यन्त रह सकती है इसके बाद तो वह अवश्य प्रतिपतित हो जाती है इसी प्रकार भरत ऐरवत मनुष्य स्त्रियों का और पूर्वविदेह पश्चिम विदेह की स्त्रियों का अन्तर क्षेत्र और धर्माचरण की अपेक्षा से समझना चाहिये।

नोट :- यहाँ पर धर्माचरण की अपेक्षा मनुष्य स्त्रियों का अन्तर जघन्य एक समय बताया है। वह पाठ लिपि प्रमाद से हो जाना संभव है। अन्तर्मुहूर्त्त का पाठ होना उचित लगता है। अनेकों प्रतियों में और टीका आदि में भी यही पाठ (एक समय का) मिलने से यहाँ पर मूल पाठ नहीं सुधारा गया है। विवेचन में इसको समझाया गया है। आगे भी कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों एवं भरत ऐरावत पूर्वविदेह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पश्चिम विदेह की स्त्रियों के पाठ में भी धर्माचरण की अपेक्षा एक समय के अन्तर का पाठ अशुद्ध होने की संभावना है। उपर्युक्त सभी स्थानों में अन्तर्मुहूर्त्त का पाठ होना उचित लगता है।

अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं जाव अंतरदीवियाओ।

भावार्थ-प्रश्न- हे भगवन्! अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों का अंतर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जन्म की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। इसी प्रकार यावत् अन्तरद्वीपों की स्त्रियों का अंतर समझना चाहिये।

विवेचन - अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों का जन्म की अपेक्षा अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का कहा गया है। जघन्य अंतर इस प्रकार समझना चाहिये - कोई अकर्मभूमिज स्त्री मर कर जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव रूप में उत्पन्न हुई वहां वह दस हजार वर्ष की आयु को भोग कर और वहां से च्यव कर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की स्थिति वाले कर्मभूमिज मनुष्य पुरुष या मनुष्य स्त्री के रूप में उत्पन्न हुई क्योंकि देवलोक से च्यव कर जीव सीधा अकर्मभूमि में उत्पन्न नहीं होता वहां वह अंतर्मुहूर्त्त की आयु भोग कर फिर अकर्मभूमि की स्त्री रूप से उत्पन्न हुई, इस अपेक्षा से अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्री का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का कहा गया है। संहरण की अपेक्षा अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। जघन्य और उत्कृष्ट अंतर का स्पष्टीकरण इस प्रकार हैं - कोई अकर्मभूमिज स्त्री संहृत होकर कर्मभूमि में लाई जावे और यहाँ एक अंतर्मुहूर्त्त तक के काल में फिर विचारधारा के परिवर्त्तन हो जाने से वह पुनः वहीं ले जाई जावे इस अपेक्षा से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त कहा गया है। कोई अकर्मभूमिज स्त्री कर्मभूमि में संहृत होकर लाई जावे और अपनी आयु के क्षय होने के बाद फिर वह अनन्त काल तक वनस्पति आदि में परिभ्रमण करके फिर वहां से किसी के द्वारा संहृत हो जावे तो इस प्रकार अकर्मभूमिज स्त्री का संहरण की अपेक्षा उत्कृष्ट कालमान कहा गया है।

इसी प्रकार हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु और अन्तरद्वीपों की मनुष्य स्त्रियों का भी अन्तर जन्म और संहरण की अपेक्षा समझ लेना चाहिये।

देवित्थियाणं सव्वासिं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो॥ ४९॥

भावार्थ - सभी देवस्त्रियों का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - देवस्त्रियों का जघन्य अंतर इस प्रकार होता है - कोई देवी, देवी भाव से च्यव कर गर्भज तिर्यंच में उत्पन्न हुई, वहां वह पर्याप्ति की पूर्णता के पश्चात् ही तथाविध अध्यवसाय से मर कर पुनः देवी रूप में उत्पन्न हो गई। इस प्रकार देवी पर्याय से पुनः देवी रूप में उत्पन्न होने में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त का काल हुआ। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल का है जो पूर्ववत् समझना चाहिये। इसी प्रकार असुरकुमार देवी से लगा कर ईशान देवलोक की देवी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल होता है।

स्त्रियों का अल्पबहुत्व

एयासिं णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं मणुस्सित्थियाणं देवित्थियाणं कयरा कयराहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ मणुस्सित्थियाओ तिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ देवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इन तिर्यंच स्त्रियों में, मनुष्य स्त्रियों में और देवस्त्रियों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ी मनुष्य स्त्रियां हैं, उनसे तिर्यंच स्त्रियां असंख्यातगुणी और उनसे देवस्त्रियां असंख्यातगुणी हैं।

विवेचन - सामान्य रूप से तीन प्रकार की स्त्रियों में सबसे थोड़ी मनुष्य स्त्रियां हैं क्योंकि उनकी संख्या कोटाकोटि प्रमाण ही है। उनसे तिर्यंच स्त्रियां असंख्यातगुणी हैं क्योंकि प्रत्येक द्वीप और समुद्र में तिर्यंच स्त्रियों की बहुलता है और द्वीप समुद्र असंख्यात हैं। उनसे देवस्त्रियां असंख्यातगुणी हैं क्योंकि भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, सौधर्म और ईशान देवलोक की देवियाँ असंख्यात श्रेणी के आकाश प्रदेश प्रमाण कही गई है। इस प्रकार यह प्रथम अल्पबहुत्व हुआ।

एयासिं णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीण य कयरा कयराहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ थलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इन तिर्यंचयोनिक स्त्रियों में जलचरी, स्थलचरी और खेचरी में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ी खेचर तिर्यंचयोनिक स्त्रियां हैं, उनसे स्थलचर तिर्यंच स्त्रियां संख्यात गुणी और उनसे जलचर तिर्यंचयोनिक स्त्रियां संख्यात गुणी हैं।

विवेचन - इस दूसरे अल्पबहुत्व में तिर्यंच स्त्रियों का अल्पबहुत्व कहा गया है-सबसे थोड़ी खेचर तिर्यंच स्त्रियां हैं उनसे स्थलचर तिर्यंच स्त्रियां संख्यातगुणी हैं क्योंकि खेचर स्त्रियों की अपेक्षा स्थलचर स्त्रियां स्वभाव से ही प्रचुर मात्रा में होती है। स्थलचर तिर्यंच स्त्रियों से जलचर स्त्रियां संख्यातगुणी हैं क्योंकि लवण समुद्र में, कालोदधि समुद्र में और स्वयंभूरमण समुद्र में मत्स्यों (मछलियों) की प्रचुरता है और स्वयंभूरमण समुद्र सभी द्वीप समुद्रों में सबसे बड़ा है। तीसरा अल्पबहुत्व इस प्रकार है -

एयासिं णं भंते! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाण य कयराकयराहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ अंतरदीवग अकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ देवकुरु त्तरकुरु अकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ, हरिवास रम्मयवास अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ, हेमवएरण्णवय अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ, भरहेरवयकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ, पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अंतरद्वीपज मनुष्य स्त्रियों में कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ी अंतरद्वीपों की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ हैं, उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यात गुणी हैं, उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी हैं, उनसे हेमवत ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी हैं, उनसे भरत ऐरवत क्षेत्र की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी हैं, उनसे पूर्व विदेह पश्चिम विदेह की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी हैं।

विवेचन - तीसरा मनुष्य स्त्रियों का अल्पबहुत्व इस प्रकार है - सबसे थोड़ी अंतरद्वीपों की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ हैं, क्योंकि वह क्षेत्र छोटा है। उनसे देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ क्षेत्र समान होने से दोनों परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी अधिक हैं। उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष क्षेत्रों की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी हैं क्योंकि देवकुरु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरकुरु से हरिवर्ष रम्यकवर्ष का क्षेत्र अति विस्तृत है। उनसे हैमवत हैरण्यवत क्षेत्र की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं और परस्पर तुल्य है। यद्यपि हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्रों की अपेक्षा हैमवत हैरण्यवत क्षेत्र विस्तार की अपेक्षा कम है किंतु अल्पकाल की स्थिति वाली स्त्रियाँ यहां अधिक होती है। उनसे भरत और ऐरवत क्षेत्रों की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं क्योंकि स्वभाव से ही उनकी प्रचुरता है। स्वस्थान में परस्पर तुल्य है क्योंकि दोनों क्षेत्र समान है। उनसे पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह क्षेत्रों की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं क्योंकि क्षेत्र की प्रचुरता है और क्षेत्र समान होने से परस्पर तुल्य है। चौथा अल्पबहुत्व इस प्रकार है -

एयासि णं भंते! देवित्थियाणं भवणवासीणं वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीणं य कयरा कयराहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ वेमाणिय देवित्थियाओ, भवणवासि देवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ, वाणमंतर देवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ, जोइसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव स्त्रियों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ी वैमानिक देवस्त्रियाँ उनसे भवनवासी देवस्त्रियाँ असंख्यातगुणी, उनसे वाणव्यंतर देवियाँ असंख्यातगुणी और उनसे भी ज्योतिषी देवस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं।

विवेचन - चौथे अल्पबहुत्व में चार प्रकार की देवस्त्रियों के अल्पबहुत्व का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है - सबसे थोड़ी वैमानिक देवियाँ हैं क्योंकि अंगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेश राशि के दूसरे वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जितनी प्रदेश राशि आती है उतने प्रमाण वाली घनीकृत लोक की एक देश वाली श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश हैं उनका बत्तीसवां भाग कम करने पर जो राशि आवे उतने प्रमाण की सौधर्म देवलोक की देवियाँ और ईशान देवलोक की देवियां हैं। उनसे भवनवासी देवियाँ असंख्यातगुणी कही गई हैं क्योंकि अंगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेश राशि के प्रथम वर्ग मूल के संख्यातवें भाग में जितनी प्रदेश राशि होती है उतनी श्रेणियों के जितने आकाश प्रदेश हैं उनका बत्तीसवां भाग कम करने पर जो राशि होती है उतने प्रमाण की भवनवासी देवियाँ हैं। उनसे वाणव्यंतर देवियाँ असंख्यातगुणी हैं क्योंकि एक प्रतर में संख्यात योजन प्रमाण वाले एक प्रदेशी श्रेणी प्रमाण जितने खण्ड हों उनमें से बत्तीसवां भाग कम करने पर जो राशि आती है उतने प्रमाण की वाणव्यंतर देवियाँ हैं। वाणव्यंतर देवियों से भी ज्योतिषी देवियाँ संख्यात गुणी हैं क्योंकि २५६ अंगुल प्रमाण के जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं उनमें से बत्तीसवां भाग कम करने पर जितनी प्रदेश राशि होती है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उतनी ज्योतिषी देवियाँ हैं। यह चौथा अल्पबहुत्व हुआ। अब सभी स्त्रियों की अपेक्षा पांचवां अल्पबहुत्व कहते हैं -

एयासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं-जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं, मणुस्सित्थियाणं-कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं देवित्थियाणं भवणवासिणीणं वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीण य कयरा कयराहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ अंतरदीवग अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ देवकुरु उत्तरकुरु अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ, हरिवास रम्मगवास अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दोऽवि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ, हेमवएरण्णवय अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दोऽवि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ, भरहेरवय कम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दोऽवि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दोऽवि संखेज्जगुणाओ, वेमाणिय देवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ, भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ, खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ, थलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, जलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, जोइसिय देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ॥ ५०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक जलचर स्त्रियों, स्थलचर स्त्रियों, खेचर स्त्रियों, कर्मभूमिज अकर्मभूमिज और अंतरद्वीपज मनुष्य स्त्रियों तथा भवनवासी देवियों, वाणव्यंतर देवियों, ज्योतिषी देवियों और वैमानिक देवियों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ी अंतरद्वीपज अकर्मभूमि की मनुष्य स्त्रियाँ हैं उनसे देवकुरु उत्तरकुरु की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यात गुणी, उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी, उनसे हैमवत हैरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी, उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी, उनसे पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी, उनसे वैमानिक देवियां असंख्यातगुणी, उनसे भवनवासी देवियां असंख्यातगुणी, उनसे खेचर तिर्यंच स्त्रियां असंख्यातगुणी, उनसे स्थलचर तिर्यंच स्त्रियां संख्यातगुणी, उनसे जलचर तिर्यंच स्त्रियां संख्यातगुणी, उनसे वाणव्यंतर देवियां संख्यातगुणी, उनसे ज्योतिषी देवियां संख्यातगुणी हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - समस्त स्त्रियों का पांचवां अल्पबहुत्व इस प्रकार हैं - सभी स्त्रियों में सबसे कम अंतरद्वीप की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ हैं, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ संख्यातगुणी और स्व क्षेत्र की अपेक्षा दोनों तुल्य है। उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष क्षेत्र की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यात गुणी हैं। उनसे हैमवत हैरण्यवत क्षेत्र की अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ परस्पर तुल्य और संख्यात गुणी अधिक हैं। उनसे भरत ऐरवत क्षेत्र की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां परस्पर तुल्य और संख्यात गुणी हैं। उनसे पूर्वविदेह पश्चिम विदेह क्षेत्र की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां परस्पर तुल्य और संख्यात गुणी अधिक हैं। पूर्वविदेह पश्चिम विदेह की कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों से वैमानिक देवस्त्रियाँ असंख्यातगुणी कही गई है क्योंकि वे असंख्यात श्रेणी आकाश के जितने प्रदेश होते हैं उतने प्रमाण वाली है। वैमानिक देवियों से भवनवासी देवियाँ असंख्यातगुणी हैं। भवनवासी देवियों से खेचर तिर्यंच स्त्रियां असंख्यातगुणी अधिक कही गई है क्योंकि प्रतर के असंख्यातवें भाग में रहे हुए असंख्यात श्रेणी के आकाश प्रदेशों की जितनी राशि होती है उतनी प्रमाण खेचर स्त्रियां कही गई हैं। उनसे स्थलचर तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं क्योंकि संख्यात गुण बड़े प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों के आकाश प्रदेश जितनी स्थलचरस्त्रियाँ हैं। उनसे जलचरस्त्रियाँ संख्यात गुणी हैं क्योंकि वे बृहत्तम प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों के आकाश प्रदेश जितनी हैं। जलचर स्त्रियों से वाणव्यंतर देव स्त्रियाँ संख्यात गुणी हैं क्योंकि संख्यात कोटाकोटि योजन प्रमाण एक प्रदेशों की श्रेणी के जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं उनमें से बत्तीसवां भाग कम करने पर जो राशि बचती है उतनी कही गई है। वाणव्यंतर देवियों से ज्योतिषी देवियाँ संख्यातगुणी हैं इसका स्पष्टीकरण पूर्व में दिया जा चुका है। इस प्रकार यह समस्त स्त्रियों का पांचवां अल्पबहुत्व हुआ। अब सूत्रकार स्त्रीवेद की स्थिति का निरूपण करते हैं -

स्त्रीवेद कर्म की बंध स्थिति

इत्थिवेयस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्डो सत्तभागो पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागेणं ऊणो उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवम कोडाकोडीओ, पण्णरस वाससयाइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेओ॥

कठिन शब्दार्थ - **अबाहा** - अबाधा, **अबाहूणिया** - अबाधाकाल से रहित, **कम्मणिसेओ** - कर्म निषेक-कर्म दलिकों की रचना।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! स्त्रीवेद कर्म की बंध स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! स्त्रीवेद कर्म की बंध स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सागरोपम के सातवें भाग ($\frac{१॥}{७}$) और उत्कृष्ट पन्द्रह कोटाकोटि सागरोपम की है। पन्द्रह सौ वर्षों का अबाधाकाल हैं। अबाधाकाल से रहित जो कर्मस्थिति है वही अनुभव योग्य होती है अतः वही कर्मनिषेक है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्त्रीवेद की जघन्य और उत्कृष्ट बंध स्थिति का कथन किया गया है जो इस प्रकार है - स्त्रीवेद कर्म की बंध स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के डेढ़ सातिया भाग ($\frac{१॥}{७}$) और उत्कृष्ट पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। जघन्य स्थिति दो प्रकार से समझी जाती है-

१. जिस प्रकृति की जो उत्कृष्ट स्थिति है उसमें मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने पर जो राशि आती है उसमें पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम करने पर उस प्रकृति की जघन्य स्थिति प्राप्त होती है। जैसे-स्त्रीवेद की उत्कृष्ट स्थिति १५ कोडाकोडी सागरोपम है इसमें मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने पर $\frac{१५}{७०}$ कोडाकोडी सागरोपम प्राप्त होता है। इस राशि में छेद-छेदक सिद्धान्त के अनुसार दस का भाग देने पर $\frac{१॥}{७}$ कोडाकोडी सागरोपम आता है इसमें पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम करने पर स्त्रीवेद कर्म की जघन्य बंध स्थिति होती है। यह व्याख्या मूल टीकानुसार है।

२. कर्मप्रकृति संग्रहणीकार ने जघन्य स्थिति की विधि इस प्रकार बताई है -

वग्गुक्कोसठिईणं मिच्छत्तुक्कोसगेण जं लद्धं।

सेसाणं तु जहण्णं पलियासंखेज्जगेणूणं॥

अर्थात् - जिस जिस कर्म का जो प्रकृति समुदाय है वह उसका वर्ग कहलाता है जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का प्रकृति समुदाय ज्ञानावरणीय वर्ग कहा जाता है। वर्गों की जो अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति है उसमें मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति का भाग देने पर जो राशि प्राप्त होती है उससे पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम करने से उस वर्ग की जघन्य स्थिति प्राप्त होती है। जैसे स्त्रीवेद नोकषाय मोहनीय कर्म की प्रकृति है। नोकषाय मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम है उसमें मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने पर $\frac{२}{७}$ कोडाकोडी सागरोपम (दो कोडाकोडी सागरोपम का सातवां भाग) आता है उसमें से पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम करने से स्त्रीवेद कर्म की जघन्य बंध स्थिति आती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति दो प्रकार की कही गई है - १. कर्मरूपतावस्थान रूप और २. अनुभव योग्य। यहां जो स्थिति बताई गई है वह कर्मरूपतावस्थान रूप है। अनुभव योग्य स्थिति तो अबाधाकाल से हीन होती है। जिस कर्म की जितने कोडाकोडी सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है उतने ही सौ वर्ष उसका अबाधाकाल होता है। जैसे स्त्रीवेद की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है तो उसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्षों का होता है अर्थात् पन्द्रह सौ वर्ष तक स्त्रीवेद कर्म प्रकृति उदय में नहीं आती और अपना फल नहीं देती है। अबाधाकाल से हीन कर्म स्थिति ही अनुभव योग्य होती है। अबाधाकाल बीतने पर ही कर्मदलिकों की रचना होती है अर्थात् वह प्रकृति उदय में आती है जिसे कर्मनिषेक कहा जाता है।

स्त्री वेद का स्वभाव

इत्थिवेए णं भंते! किं पगारे पण्णत्ते?

गोयमा! फुंफु अग्गिसमाणे पण्णत्ते, से त्तं इत्थियाओ॥ ५१॥

कठिन शब्दार्थ - किंपगारे - किस प्रकार का, **फुंफुअग्गिसमाणे** - फुंफुक (करीष-छाणे) की अग्नि समान।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्त्रीवेद किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! स्त्रीवेद फुंफुक (करिष-छाणे-कण्डे की) अग्नि के समान होता है। इस प्रकार स्त्रियों का निरूपण हुआ।

विवेचन - स्त्रीवेद फुम्फुक-छाणे (कण्डे) की अग्नि के समान कहा गया है जैसे कण्डे की अग्नि धीरे धीरे जागृत होती है और देर तक बनी रहती है उसी प्रकार स्त्रीवेद का स्वभाव होता है। इस प्रकार स्त्रीवेद का अधिकार पूर्ण हुआ।

पुरुष के भेद

से किं तं पुरिसा?

पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - तिरिक्खजोणियपुरिसा, मणुस्सपुरिसा देवपुरिसा॥

भावार्थ - पुरुष कितने प्रकार के कहे गये हैं?

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. तिर्यंचयोनिक पुरुष २. मनुष्य पुरुष और ३. देव पुरुष।

से किं तं तिरिक्खजोणियपुरिसा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - जलयरा थलयरा खहयरा, इत्थि भेदो भाणियव्वो जाव खहयरा, से त्तं खहयरा से त्तं तिरिक्खजोणियपुरिसा॥

भावार्थ - तिर्यंचयोनिक पुरुष कितने प्रकार के कहे गये हैं?

तिर्यंचयोनिक पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - जलचर, स्थलचर और खेचर। जिस प्रकार स्त्री के भेद कहे गये हैं उसी प्रकार खेचर तक समझना चाहिये। यह खेचर का वर्णन हुआ। इस प्रकार तिर्यंचयोनिक पुरुष का वर्णन हुआ।

से किं तं मणुस्स पुरिसा?

मणुस्स पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा, से त्तं मणुस्स पुरिसा॥

भावार्थ - मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

मनुष्य तीन प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अंतरद्वीपिक। यह मनुष्यों का वर्णन हुआ।

से किं तं देवपुरिसा?

देवपुरिसा चउव्विहा पण्णत्ता, इत्थीभेओ भाणियव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धा॥ ५२॥

भावार्थ - देव पुरुष कितने प्रकार के कहे गये हैं?

देवपुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जिस प्रकार स्त्री अधिकार में भेद कहे गये हैं उसी प्रकार यावत् सर्वार्थसिद्ध तक देवों के भेद कहने चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्त्री की तरह पुरुषों के भेद कहे गये हैं।

तिर्यंचपुरुष के तीन भेद हैं - १. जलचर २. स्थलचर और ३. खेचर। मनुष्य पुरुष के तीन भेद हैं - १. कर्मभूमिज २. अकर्मभूमिज और ३. अंतरद्वीपज। देवपुरुष के चार भेद हैं - १. भवनवासी २. वाणव्यतंर ३. ज्योतिषी और ४. वैमानिक। भवनवासी देवों के असुरकुमार आदि दस भेद हैं। वाणव्यंतर देवों के पिशाच आदि आठ भेद हैं। ज्योतिषी देवों के चन्द्र आदि पांच भेद हैं। वैमानिक देवों के दो भेद हैं - १. कल्पोपपन्न और २. कल्पातीत। कल्पोपपन्न के सौधर्म देवलोक आदि बारह भेद हैं और कल्पातीत देवों के दो भेद हैं - नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान। नवग्रैवेयक के नौ भेद हैं। अनुत्तरविमान के पांच भेद हैं - १. विजय २. वैजयंत ३. जयंत ४. अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध।

पुरुष वेद की स्थिति

पुरिसस्स णं भंते! केवइयं कालठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। तिरिक्ख-जोणियपुरिसाणं मणुस्साणं जा चेव इत्थीणं ठिई सा चेव भाणियव्वा।

देवपुरिसाणवि जाव सव्वट्ठसिद्धाणं ठिई जहा पण्णवणाए (ठिइपए) तहा भाणियव्वा॥ ५३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरुष की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पुरुष की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट तेत्तीस सागरोपम की है। तिर्यंच योनिक पुरुषों और मनुष्य पुरुषों की स्थिति तिर्यंच स्त्रियों और मनुष्य स्त्रियों की तरह कह देनी चाहिये। देवपुरुषों यावत् सर्वार्थसिद्ध पुरुषों की स्थिति प्रज्ञापना सूत्र के स्थिति पद के अनुसार समझनी चाहिये।

विवेचन - पुरुषवेद की कालस्थिति का प्रस्तुत सूत्र में कथन किया गया है। अंतर्मुहूर्त्त में मरण हो जाने की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त्त की जघन्य स्थिति कही गई है। अनुत्तरौपपातिक देवों की अपेक्षा तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति कही गई है। तिर्यंच पुरुषों, मनुष्यों और देवों की अलग अलग स्थिति इस प्रकार है -

जलचर पुरुषों की जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि, चतुष्पद स्थलचर पुरुषों की जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम, उरपरिसर्प स्थलचर पुरुषों की जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि, भुजपरिसर्प स्थलचर पुरुषों तथा खेचर पुरुषों की जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति है।

भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य पुरुषों की क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है चारित्र धर्म की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है। पूर्वविदेह पश्चिमविदेह पुरुषों की क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है। चारित्र धर्म की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है।

अकर्मभूमिज मनुष्यों में हैमवत ऐरण्यवत के मनुष्य पुरुषों की जन्म की अपेक्षा स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम की तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की है। हरिवर्ष रम्यकवर्ष के मनुष्य पुरुषों की स्थिति जन्म की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम दो पल्योपम की और उत्कृष्ट दो पल्योपम की है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है। देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्य पुरुषों की जन्म की अपेक्षा जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम तीन पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देशोन पूर्वकोटि की है। अंतरद्वीपों के मनुष्य पुरुषों की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की है।

प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार देवपुरुषों की स्थिति इस प्रकार हैं -

असुरकुमार देवपुरुषों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी। नागकुमार आदि शेष नौ निकाय देवपुरुषों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की है।

वाणव्यंतर देवपुरुषों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट एक पल्योपम।

ज्योतिषी देवपुरुषों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

वैमानिक देवपुरुषों में - पहले देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम, उत्कृष्ट दो सागरोपम।

दूसरे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १ पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट दो सागरोपम झाझेरी।

तीसरे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य दो सागरोपम, उत्कृष्ट सात सागरोपम।

चौथे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य दो सागरोपम झाझेरी, उत्कृष्ट सात सागरोपम झाझेरी।

पांचवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य सात सागरोपम, उत्कृष्ट दस सागरोपम।

छठे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १० सागरोपम, उत्कृष्ट १४ सागरोपम।

सातवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १४ सागरोपम, उत्कृष्ट १७ सागरोपम।

आठवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १७ सागरोपम, उत्कृष्ट १८ सागरोपम।

नववें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १८ सागरोपम, उत्कृष्ट १९ सागरोपम।

दसवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १९ सागरोपम, उत्कृष्ट २० सागरोपम।

ग्यारहवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य २० सागरोपम, उत्कृष्ट २१ सागरोपम।

बारहवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य २१ सागरोपम, उत्कृष्ट २२ सागरोपम।

पहले ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २२ सागरोपम, उत्कृष्ट २३ सागरोपम।

दूसरे ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २३ सागरोपम, उत्कृष्ट २४ सागरोपम।

तीसरे ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २४ सागरोपम, उत्कृष्ट २५ सागरोपम।

चौथे ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २५ सागरोपम, उत्कृष्ट २६ सागरोपम।

पांचवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २६ सागरोपम, उत्कृष्ट २७ सागरोपम।

छठें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २७ सागरोपम, उत्कृष्ट २८ सागरोपम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सातवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २८ सागरोपम, उत्कृष्ट २९ सागरोपम।

आठवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २९ सागरोपम, उत्कृष्ट ३० सागरोपम।

नौवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य ३० सागरोपम, उत्कृष्ट ३१ सागरोपम।

चार अनुत्तर विमान के देवों की स्थिति जघन्य ३१ सागरोपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

पुरुष की काय स्थिति

पुरिसे णं भंते! पुरिसे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं।

तिरिक्खजोणियपुरिसे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं एवं तं चेव, संचिट्ठणा जहा इत्थीणं जाव खहयरतिरिक्खजोणिय पुरिसस्स संचिट्ठणा।

मणुस्स पुरिसाणं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी एवं सव्वत्थ जाव पुव्वविदेह अवरविदेह, अकम्मभूमगमणुस्स पुरिसाणं जहा अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं जाव अंतरदीवगाणं जच्चेव ठिई सच्चेव संचिट्ठणा जाव सव्वट्ठसिद्धगाणं॥ ५४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरुष, पुरुष रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! पुरुष, पुरुष रूप में निरन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सागरोपम शत पृथक्त्व से कुछ अधिक काल तक रह सकता है।

प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच पुरुष, तिर्यंच पुरुष रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच पुरुष, तिर्यंच पुरुष रूप में निरन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है। इस प्रकार जैसे स्त्रियों की संचिट्ठणा कही वैसे ही खेचर तिर्यंच पुरुष तक संचिट्ठणा समझनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य पुरुष, मनुष्य पुरुष रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य पुरुष, मनुष्य पुरुष के रूप में निरन्तर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि तक रह सकता है। इसी प्रकार सर्वत्र पूर्व विदेह पश्चिम विदेह के कर्मभूमिज मनुष्य पुरुषों तक के लिए कह देना चाहिए।

जिस प्रकार अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों के लिए कहा है उसी प्रकार अकर्मभूमिज मनुष्य पुरुषों के लिए भी समझना चाहिए। इसी प्रकार अंतरद्वीपज के अकर्मभूमि मनुष्यों तक की वक्तव्यता कह देनी चाहिये।

देव पुरुषों की जो स्थिति कही है वही उसका संचिट्ठणा काल है। ऐसा ही कथन सर्वार्थसिद्ध के देव पुरुषों तक कह देना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पुरुष का पुरुष रूप में निरन्तर रहने का कालमान बताया गया है। सामान्य रूप से पुरुष जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट दो सौ सागरोपम से नौ सौ सागरोपम से कुछ अधिक काल तक पुरुष पर्याय में रह सकता है। इससे अधिक काल तक निरन्तर पुरुष नाम कर्म का उदय नहीं रह सकता अतः नियम से वह स्त्री आदि भाव को प्राप्त करता है। सातिरेक (कुछ अधिक) काल मनुष्य भवों की अपेक्षा समझना चाहिये। विशेष विवक्षा में तिर्यंच पुरुष, मनुष्य पुरुष और देव पुरुष की अलग-अलग काय स्थिति इस प्रकार है -

तिर्यंच पुरुष, तिर्यंच पुरुष रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है। उत्कृष्ट काल में सात भव तो पूर्व कोटि आयुष्य के पूर्व विदेह आदि में और आठवां भव तीन पल्योपम की आयुष्य का देवकुरु या उत्तरकुरु में हो तो पूर्व कोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की कायस्थिति होती है। जलचर पुरुष की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व है यह उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि आयु वाले तिर्यंच पुरुष के पुनः पुनः आठ बार वहीं उत्पन्न होने की अपेक्षा समझना चाहिए। चतुष्पद स्थलचर पुरुष की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की औधिक (सामान्य) तिर्यंच पुरुष की कायस्थिति के अनुसार समझनी चाहिये। जलचर पुरुष की तरह उरपरिसर्प स्थलचर पुरुष और भुजपरिसर्प स्थलचर पुरुष की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व की है। खेचर तिर्यंच पुरुष की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग की कही गई है। खेचर पुरुष सात बार तक पूर्व कोटि की स्थिति वाले खेचर पुरुषों में उत्पन्न होकर आठवें भव में पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले अंतरद्वीप आदि के खेचर पुरुषों में उत्पन्न होने की अपेक्षा यह उत्कृष्ट कालमान समझना चाहिये।

सामान्य से मनुष्य पुरुष के निरन्तर मनुष्य पुरुष रूप में उत्पन्न होने का काल क्षेत्र की अपेक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है। उत्कृष्ट स्थिति में सात भव तो कर्मभूमिक में पूर्वकोटि आयुष्य के और आठवां भव देवकुरु आदि में तीन पल्योपम की स्थिति का समझना चाहिये। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की कायस्थिति है।

भरत ऐरवत क्षेत्र के कर्मभूमिज मनुष्य पुरुषों की क्षेत्र की अपेक्षा कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक तीन पल्योपम की है। यह पूर्वकोटि आयु वाले किसी महाविदेह क्षेत्र के पुरुष को भरत आदि क्षेत्र में संहरण कर लाने पर वह भरत आदि क्षेत्र का कहलाता है वह अपने भवसंबंधी आयु के क्षय होने पर एकांत सुषमा काल में उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षा से समझना चाहिये। धर्माचरण की अपेक्षा अवस्थान काल जघन्य एक समय का है क्योंकि सर्वविरति परिणाम एक समय का भी संभव है द्वितीय समय में मरण की संभावना है और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्व कोटि रूप है क्योंकि समग्र चारित्र काल भी इतना ही है। पूर्वकोटि के आयु वाले मनुष्य को आठ वर्ष की उम्र के बाद चारित्र धर्म की प्राप्ति होती है अतः देशोन पूर्वकोटि कहा है। पूर्व विदेह पश्चिम विदेह के कर्मभूमिज मनुष्य की कायस्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व है। वह बार-बार वहीं आठ बार उत्पत्ति की अपेक्षा समझना चाहिये। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि।

अकर्मभूमिज मनुष्य पुरुष का अकर्मभूमिज मनुष्य पुरुष के रूप में निरन्तर उत्पन्न होने का कालमान जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक पल्योपम और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक तीन पल्योपम का काल कहा है। यह देशोन पूर्व कोटि आयु वाले पुरुष का उत्तरकुरु आदि में संहरण हो और वह वहीं मर कर उत्पन्न हो जाय, इस अपेक्षा से है। देशोन गर्भकाल की अपेक्षा से कहा है। अलग-अलग कायस्थिति इस प्रकार है -

हैमवत हैरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य उसी रूप में निरन्तर जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक पल्योपम और उत्कृष्ट एक पल्योपम तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक एक पल्योपम तक रह सकता है। हरिवर्ष रम्यक वर्ष अकर्मभूमिज मनुष्य पुरुष जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम दो पल्योपम और उत्कृष्ट दो पल्योपम तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक दो पल्योपम तक उसी रूप में रह सकता है। देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य पुरुष जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम तीन पल्योपम और उत्कृष्ट तीन पल्योपम तक तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि अधिक तीन पल्योपम तक उसी रूप में रह सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतरद्वीपज मनुष्य जन्म की अपेक्षा देशोन पल्योपम का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग तक तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक उसी रूप में रह सकता है।

देव मर कर अनन्तर भव में पुनः देव नहीं होते अतः यह कहा गया है कि जो देवों की भवस्थिति है वही उनकी संचिट्ठणा (कायस्थिति) है।

पुरुषों का अंतर

पुरिसस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। तिरिक्खजोणिय पुरिसाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो एवं जाव खहयर-तिरिक्खजोणियपुरिसाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरुष, पुरुष पर्याय छोड़ने के बाद कितने काल के पश्चात् पुरुष होता है अर्थात् पुरुष का अंतर कितने काल का होता है?

उत्तर - हे गौतम! पुरुष का अंतर जघन्य एक समय उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है।

तिर्यंच योनिक पुरुष का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार खेचर तिर्यंच पुरुष तक समझना चाहिये।

विवेचन - जीव अपनी वर्तमान पर्याय को छोड़ने के बाद पुनः उस पर्याय को जितने समय बाद प्राप्त करता है उसे अंतर कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में सामान्य रूप से पुरुष का अंतर जघन्य एक समय उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का कहा है। जब कोई पुरुष उपशम श्रेणी चढ़कर पुरुष वेद को उपशांत कर देता है और एक समय बाद ही मर कर वह नियम से देवपुरुष में उत्पन्न होता है इस अपेक्षा से जघन्य अंतर एक समय का कहा है। यहाँ पर अनुत्तर विमान में जाने पर पुरुषवेद तो मिल जाता है परन्तु धर्माचरण नहीं होता है अतः यहाँ पर धर्माचरण की विवक्षा नहीं समझनी चाहिये। आगमों में अन्यत्र भी इस प्रकार का विवक्षा भेद बताया गया है। जैसे प्रज्ञापना सूत्र के १८ वें पद में सयोगी केवली अनाहारक का अंतर जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त का बताया है। यहाँ पर भी सयोगीपने की गौणता की गई है। उत्कृष्ट वनस्पतिकाल अर्थात् काल से अनंत उत्सर्पिणियाँ अवसर्पिणियाँ और क्षेत्र से असंख्यात पुद्गल परावर्त बीत जाते हैं वे पुद्गल परावर्त आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं।

तिर्यंच पुरुष, तिर्यंच पुरुष पर्याय को छोड़ने के बाद जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पश्चात् पुनः तिर्यंच पुरुष पर्याय को प्राप्त करता है। जिस प्रकार सामान्य तिर्यंच पुरुष का अंतर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहा है उसी प्रकार जलचर स्थलचर खेचर पुरुषों का अंतर भी जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का होता है।

मणुस्स पुरिसाणं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अणंतंकालं अणंताओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणिओ जाव अवड्डपोग्गल परियट्टं देसूणं, कम्मभूमगाणं जाव विदेहो जाव धम्म चरणे एक्को समओ सेसं, जहित्थी णं जाव अंतरदीवगाणं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य पुरुषों का अन्तर कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य पुरुषों का अंतर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनंत काल अर्थात् अनंत उत्सर्पिणियाँ अवसर्पिणियां यावत् देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त का होता है। कर्मभूमिज मनुष्य पुरुषों यावत् महाविदेह के मनुष्यों का अंतर यावत् धर्माचरण की अपेक्षा एक समय आदि जिस प्रकार मनुष्य स्त्रियों के लिए कहा गया है उसी प्रकार अंतरद्वीपज मनुष्य पुरुषों तक यहाँ भी कह देना चाहिये।

विवेचन - सामान्य मनुष्य पुरुष का अंतर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का होता है। चारित्र धर्म की अपेक्षा जघन्य एक समय का अंतर होता है क्योंकि अवेदी बनने के प्रथम समय में काल करके अनुत्तर विमान में जाने पर पुरुष वेद मिल जाता है। यहां पर भी धर्माचरण की विवक्षा नहीं है क्योंकि अनुत्तर विमान देवों में धर्माचरण नहीं होता है। उत्कृष्ट देश ऊणा अर्द्ध पुद्गल परावर्त्त का अंतर होता है। इसी प्रकार भरत, ऐरवत, पूर्व विदेह, पश्चिम विदेह के कर्मभूमिज मनुष्य पुरुषों का अंतर जन्म एवं चारित्र की अपेक्षा कह देना चाहिये।

सामान्य अकर्मभूमिज मनुष्य पुरुष का जन्म की अपेक्षा अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का होता है क्योंकि वह मर कर जघन्य स्थिति के देवों में उत्पन्न होकर वहाँ से च्यव कर कर्मभूमि में स्त्री या पुरुष रूप में पैदा हो कर पुनः अकर्मभूमिज मनुष्य रूप में उत्पन्न हो सकता है। बीच में कर्मभूमि का भव इसलिए कहा गया है कि देवभव से च्यव कर कोई जीव सीधा अकर्मभूमि में मनुष्य या संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय रूप में उत्पन्न नहीं होता है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल का है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त का कहा है क्योंकि किसी पुरुष को कोई देव विशेष संहरण करके कर्मभूमि में ले जावे फिर अंतर्मुहूर्त्त के बाद उसकी बुद्धि में परिवर्तन होने से पुनः उसे अकर्मभूमि में लाकर रख देवे उस अपेक्षा से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त का अंतर होता है उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार हेमवत हैरण्यवत आदि अकर्मभूमियों के मनुष्य पुरुषों एवं अंतरद्वीपज मनुष्य पुरुषों का अंतर पूर्व में कहे हुए मनुष्य स्त्रियों के अन्तर के समान समझ लेना चाहिए।

मनुष्य पुरुष का अंतर बताने के बाद अब सूत्रकार देव पुरुष का अंतर बताते हैं -

देव पुरिसाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। भवणवासि देवपुरिसाणं ताव जाव सहस्सारो, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

आणयदेवपुरिसाणं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं वासपुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं जाव गेवेज्ज देवपुरिसस्सवि। अणुत्तरोववाइयदेव पुरिसस्स जहण्णेणं वासपुहुत्तं उक्कोसेणं संखिज्जाइं सागरोवमाइं साइरेगाणं॥ (अणुत्तराणं अंतरे एक्को आलावओ?)॥ ५५॥

भावार्थ - देव पुरुषों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार भवनवासी देवपुरुष से यावत् सहस्रार कल्प के देव पुरुषों तक जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अंतर समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! आनत कल्प के देव पुरुषों का अंतर कितने काल का कहा गया है।

उत्तर - हे गौतम! आनत देव पुरुषों का अंतर जघन्य वर्ष पृथक्त्व और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक देव पुरुषों तक समझना चाहिये। अनुत्तरौपपातिक देव पुरुषों का अंतर जघन्य वर्ष पृथक्त्व उत्कृष्ट संख्यात सागरोपम से कुछ अधिक का होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देव पुरुष का अंतर बताया गया है। सामान्य से देव पुरुष का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का कहा गया है। कोई जीव देव भव से च्यव कर गर्भज मनुष्य में उत्पन्न हुआ और वहाँ पर्याप्ति पूरी होने के बाद तथाविध अध्यवसाय से मर कर पुनः वह देव रूप में उत्पन्न हो सकता है इस अपेक्षा से जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त का होता है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल का है। इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और पहले देवलोक से लगा कर आठवें देवलोक तक के देवों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का कह देना चाहिये।

नौवें आनत देवलोक के देवों का अंतर जघन्य वर्ष पृथक्त्व (नौ वर्ष) उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। क्योंकि आनत आदि देवलोक से च्यव कर कोई जीव यदि पुनः आनत आदि देवलोक में उत्पन्न होगा वह नियम से मनुष्य भव में चारित्र ले कर ही उत्पन्न होगा, बिना चारित्र लिये वह वहाँ उत्पन्न नहीं हो सकता और चारित्र आठ वर्ष से पूर्व नहीं होता अतः जघन्य अन्तर वर्ष पृथक्त्व का कहा गया है। यहाँ पर वर्ष पृथक्त्व का आशय नौ वर्ष के पहले कोई उपक्रम नहीं लगेगा अर्थात् काल नहीं करेगा। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये। उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अंतर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आनत देवों के समान ही प्राणत, आरण, अच्युत कल्प के देव पुरुषों और ग्रैवेयक देव पुरुषों का अंतर जघन्य वर्ष पृथक्त्व और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का होता है। अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत देव पुरुषों का अंतर जघन्य वर्ष पृथक्त्व और उत्कृष्ट कुछ अधिक संख्यात सागरोपम का है। वैमानिक देव पुरुषों में उत्पत्ति की अपेक्षा संख्यात सागरोपम और मनुष्य भवों में उत्पत्ति की अपेक्षा कुछ अधिकता कही गई है।

अनुत्तरौपपातिक देव पुरुषों का यह अन्तर विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित विमानों की अपेक्षा ही समझना चाहिये क्योंकि सर्वार्थ सिद्ध विमान में तो एक बार ही उत्पत्ति होती है अतः वहाँ अन्तर नहीं होता।

पुरुषों का अल्पबहुत्व

अप्पा बहुयाणि जहेवित्थीणं जाव एएसि णं भंते! देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा वेमाणिय देव पुरिसा, भवणवइदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा वाणमंतरदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा, जोइसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा।

एएसि णं भंते! तिरिक्खजोणिय पुरिसाणं-जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्स पुरिसाणं-कम्मभूमगाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवगाणं, देवपुरिसाणं-भवणवासीणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं सोहम्माणं जाव सव्वट्ठसिद्धगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा अंतरदीवगमणुस्स पुरिसा देवकुरूत्तरकुरु अकम्मभूमगमणुस्स पुरिसा दो वि संखेज्जगुणा हरिवास रम्मगवास अकम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दो वि संखेज्जगुणा हेमवयहेरण्णवयवास अकम्मभूमग मणुस्स पुरिसा दो वि संखेज्जगुणा भरहेरवयवास कम्मभूमग मणुस्स पुरिसा दोवि संखेज्जगुणा पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्स पुरिसा दो वि संखेज्जगुणा अणुत्तरोववाइय देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, उवरिम गेविज्ज देवपुरिसा संखेज्जगुणा मज्झिम गेविज्ज देवपुरिसा संखेज्जगुणा हेट्ठिम गेविज्ज देव पुरिसा संखेज्जगुणा अच्चुयकप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा जाव आणयकप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा, सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा जाव माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा सणंकुमार कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा ईसाणकप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा, भवणवासिदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा खहयर-तिरिक्खजोणियपुरिसा असंखेज्जगुणा थलयर तिरिक्खजोणियपुरिसा संखेज्जगुणा, जलयरतिरिक्खजोणिय पुरिसा संखेज्जगुणा, वाणमंतरदेवपुरिसा संखेज्जगुणा, जोइसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा॥ ५६॥

भावार्थ - स्त्रियों का जिस प्रकार अल्पबहुत्व कहा है यावत् हे भगवन्! देव पुरुषों - भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिकों में कौन किससे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े वैमानिक देव पुरुष, उनसे भवनपति देव पुरुष असंख्यातगुणा, उनसे वाणव्यंतर देव पुरुष असंख्यातगुणा, उनसे ज्योतिषी देव पुरुष संख्यातगुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन तिर्यंच योनिक पुरुषों - जलचर, स्थलचर और खेचर, मनुष्य पुरुषों - कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अंतरद्वीपज, देव पुरुषों-भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक - सौधर्म देवलोक यावत् सर्वार्थसिद्ध देव पुरुषों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अंतरद्वीपज मनुष्य पुरुष, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य संख्यातगुणा, उनसे हैमवत हैरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य पुरुष दोनों संख्यातगुणा, उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य पुरुष दोनों संख्यातगुणा, उनसे पूर्व विदेह पश्चिम विदेह कर्मभूमिज मनुष्य पुरुष दोनों संख्यातगुणा, उनसे अनुत्तरौपपातिक देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे उपरिम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणा, उनसे मध्यम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यात गुणा, उनसे अधस्तन ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणा, उनसे अच्युतकल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा, उनसे यावत् आनतकल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा, उनसे सहस्रारकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे महाशुक्रकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा उनसे यावत् महेन्द्रकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे सनत्कुमार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे ईशान कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे सौधर्म कल्प के देव पुरुष संख्यातगुणा, उनसे भवनवासी देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे खेचर तिर्यंच पुरुष असंख्यातगुणा, उनसे स्थलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, उनसे जलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, उनसे वाणव्यंतर देव पुरुष संख्यातगुणा और उनसे ज्योतिषी देव पुरुष संख्यातगुणा हैं।

विवेचन - जिस प्रकार सामान्य स्त्रियों का अल्पबहुत्व कहा गया है, उसी प्रकार सामान्य पुरुषों का अल्प बहुत्व समझना चाहिये।

प्रस्तुत सूत्र में पांच अल्पबहुत्व का कथन किया गया है जो इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. सामान्य से तिर्यंच, मनुष्य और देव पुरुषों का अल्पबहुत्व – सबसे कम मनुष्य पुरुष, उनसे तिर्यंच पुरुष असंख्यातगुणा और उनसे देवपुरुष असंख्यातगुणा होते हैं। यह प्रथम अल्प बहुत्व है।

२. तिर्यंच योनिक पुरुषों का अल्पबहुत्व – सबसे थोड़े खेचर तिर्यंच पुरुष हैं, उनसे स्थलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, उनसे जलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा है। यह दूसरा अल्प बहुत्व है।

३. मनुष्य पुरुषों का अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अंतरद्वीपज मनुष्य है, उनसे देवकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्य परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा, उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष के मनुष्य परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा, उनसे हैमवत हैरणयवत् के मनुष्य परस्पर तुल्य संख्यातगुणा, उनसे भरत ऐरवत के मनुष्य परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा, उनसे पूर्व विदेह अपरविदेह के मनुष्य परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा अधिक है। इन तीन अल्पबहुत्वों का ग्रहण यावत् पद से हुआ है। ये तीनों अल्पबहुत्व स्त्री प्रकरण के अनुसार ही है।

४. देव पुरुषों का अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अनुत्तरौपपातिक देवपुरुष हैं क्योंकि उनका प्रमाण क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती आकाशप्रदेशों की राशि तुल्य है। उनसे उपरिम ग्रैवेयक देव पुरुष संख्यातगुणा हैं क्योंकि वे वृहत्तर क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती आकाश प्रदेशों की राशि प्रमाण है। विमानों की अधिकता के कारण अनुत्तरविमान देवपुरुषों से उपरितन ग्रैवेयक देव पुरुष संख्यात गुणा हैं क्योंकि अनुत्तर देवों के पांच विमान हैं और उपरितन ग्रैवेयक देवों के १०० विमान हैं। प्रत्येक विमान में असंख्यातदेव हैं। जैसे-जैसे विमान नीचे हैं उनमें देवों की संख्या अधिक है। उपरितन ग्रैवेयक देवपुरुषों से मध्यम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणा हैं। उनसे अधस्तन ग्रैवेयक देव पुरुष संख्यातगुणा हैं उनसे अच्युत कल्प के देव संख्यातगुणा हैं, उनसे आरण कल्प के देव पुरुष संख्यातगुणा हैं।

शंका – यद्यपि आरण और अच्युत कल्प दोनों समश्रेणी वाले और समान विमान संख्या वाले हैं फिर भी अच्युत कल्प की अपेक्षा आरण कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा कैसे कहे हैं?

समाधान – क्योंकि आरणकल्प दक्षिण दिशा का देवलोक है और कृष्णपाक्षिक जीव तथाविध स्वभाव से दक्षिण दिशा में अधिकता से उत्पन्न होते हैं, इसलिए अच्युत कल्प के देवपुरुषों की अपेक्षा आरण कल्प के देवपुरुष अधिक कहे गये हैं।

प्रश्न – कृष्णपाक्षिक जीव किसे कहते हैं?

उत्तर – जीव दो प्रकार के कहे गये हैं – १. कृष्णपाक्षिक और २. शुक्लपाक्षिक। जिन जीवों का अर्द्ध पुद्गल परावर्त्त काल से लेकर अन्तर्मुहूर्त्त तक का संसार शेष रहा है वे शुक्ल पाक्षिक कहलाते हैं इसलिए विपरीत जो जीव दीर्घ संसारी हैं वे कृष्णपाक्षिक कहलाते हैं। कहा भी है –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जेसिम वड्ढो पुग्गल परियट्टो, सेसओ य संसारो।

ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण कण्ह पक्खीया॥

अल्प संसारी जीव थोड़े होने से शुक्लपाक्षिक जीव थोड़े हैं। कृष्ण पाक्षिक जीव बहुत हैं क्योंकि दीर्घ संसारी जीव अनन्तानन्त हैं।

शंका - यह कैसे माना जाय कि कृष्णपाक्षिक जीव दक्षिण दिशा में प्रचुरता से पैदा होते हैं?

समाधान - उनका स्वभाव ही ऐसा होता है। कृष्णपाक्षिक प्रायः दीर्घ संसारी होते हैं और दीर्घ संसारी बहुत पाप कर्म के उदय से होते हैं। बहुत पाप के उदय वाले जीव प्रायः क्रूरकर्मा होते हैं और क्रूरकर्मा जीव तथास्वभाव से भवसिद्धिक होते हुए भी दक्षिण दिशा में उत्पन्न होते हैं। कहा भी है -

पायमिह कूरकम्मा भवसिद्धिया वि दाहिणिल्लेसु।

णेरइय-तिरिय-मणूया सुराइठाणेसु गच्छन्ति॥

दक्षिण दिशा में कृष्णपाक्षिकों की प्रचुरता होने से अच्युतकल्प देवपुरुषों की अपेक्षा आरणकल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा हैं। आरणकल्प के देवपुरुषों से प्राणत कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा हैं। उनसे आनत कल्प के देव पुरुष संख्यातगुणा हैं। आनतकल्प के देवपुरुषों से सहस्रार कल्प के देव पुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणी के असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश हैं उनके तुल्य हैं। उनसे महाशुक्र कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे वृहत्तर श्रेणी के असंख्यातवें भागवर्ती आकाश प्रदेश राशि तुल्य है। विमानों की बहुलता के कारण यह असंख्यातपना समझना चाहिये क्योंकि सहस्रारकल्प में छह हजार विमान हैं जबकि महाशुक्र कल्प में चालीस हजार विमान हैं। नीचे नीचे के विमानों में ऊपर के विमानों की अपेक्षा अधिक देवपुरुष होते हैं। महाशुक्रकल्प के देवपुरुषों से लान्तक देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे वृहत्तम श्रेणी के असंख्यातवें भागवर्ती आकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे ब्रह्मलोक कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे अधिक वृहत्तम श्रेणी के असंख्यातवें भागवर्ती आकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे माहेन्द्र कल्पवासी देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे और अधिक वृहत्तमश्रेणी के असंख्यातवें भागवर्ती आकाश प्रदेशराशि प्रमाण हैं। उनसे सनत्कुमार के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि विमानों की बहुलता है। सनत्कुमार कल्प में बारह लाख विमान है और माहेन्द्र कल्प में आठ लाख विमान हैं। सनत्कुमार कल्प दक्षिण दिशा में है और माहेन्द्र कल्प उत्तरदिशा में है। दक्षिण दिशा में कृष्णपाक्षिक की प्रचुरता है अतः माहेन्द्रकल्प के देव पुरुषों से सनत्कुमार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं। सहस्रार कल्प से सनत्कुमार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं। सहस्रार कल्प से सनत्कुमार कल्प तक के देव सभी अपने-अपने स्थान में घनीकृत लोक की एक श्रेणी के असंख्यातवें भाग में रहे हुए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकाश प्रदेशों की राशि प्रमाण हैं परन्तु श्रेणी का असंख्यातवां भाग असंख्यात रूप होने से असंख्यातगुणा कहने में कोई विरोध नहीं आता है।

सनत्कुमार कल्प के देवपुरुषों से ईशान कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे अंगुल मात्र क्षेत्र की प्रदेश राशि के द्वितीय वर्ग मूल को तृतीय वर्गमूल से गुणा करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है उतनी घनीकृत लोक की एक प्रदेश की श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं उसका जो बत्तीसवां भाग हैं उतने हैं। ईशान कल्प के देवपुरुषों से सौधर्म कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा हैं क्योंकि ईशान कल्प में २८ लाख विमान हैं और सौधर्म कल्प में ३२ लाख विमान हैं। सौधर्म कल्प दक्षिण दिशा में है और ईशानकल्प उत्तरदिशा में है। दक्षिण दिशा में कृष्णपाक्षिक अधिक उत्पन्न होते हैं अतः ईशान कल्प के देवपुरुषों से सौधर्म कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा हैं।

सौधर्म कल्प के देवपुरुषों से भवनवासी देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे अंगुल मात्र क्षेत्र की प्रदेश राशि के प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग में जितनी प्रदेश राशि होती है उतनी घनीकृत लोक की एक प्रदेश वाली श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश हैं उनके बत्तीसवें भाग प्रमाण हैं। भवनवासी देवों से वाणव्यंतर देव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे एक प्रतर के संख्यात कोडाकोडी योजन प्रमाण एक प्रदेश वाली श्रेणी प्रमाण जितने खण्ड होते हैं उनके बत्तीसवें भाग प्रमाण है। वाणव्यंतर देवों से भी ज्योतिषी देव संख्यातगुणा हैं क्योंकि दो सौ छप्पन (२५६) अंगुल प्रमाण एक प्रदेशवाली श्रेणी जितने एक प्रतर में खण्ड होते हैं उनके बत्तीसवें भाग प्रमाण हैं।

५. शामिल अल्प बहुत्व - सबसे थोड़े अन्तरद्वीपज मनुष्य पुरुष हैं क्योंकि उनका क्षेत्र थोड़ा है उनसे देवकुरु उत्तरकुरु के मनुष्य पुरुष परस्पर तुल्य संख्यातगुणा हैं क्योंकि क्षेत्र बहुत है और समान है। उनसे हरिवर्ष रम्यक् वर्ष के मनुष्य पुरुष संख्यात गुणा और स्वस्थान में परस्पर तुल्य हैं क्योंकि क्षेत्र अति बहुल है। उनसे हैमवत हैरण्यवत के मनुष्यपुरुष संख्यातगुणा हैं क्योंकि क्षेत्र अल्प होने पर भी स्थिति की अल्पता के कारण उनकी प्रचुरता है। स्वस्थान में परस्पर तुल्य हैं। उनसे भरत ऐरवत के कर्मभूमिज मनुष्य पुरुष संख्यातगुणा और स्वस्थान में परस्पर तुल्य है क्योंकि स्वभाव से ही मनुष्य पुरुषों की प्रचुरता है। उनसे पूर्वविदेह अपरविदेह के मनुष्य पुरुष संख्यातगुणा हैं क्योंकि क्षेत्र की बहुलता होने से स्वभाव से ही मनुष्य पुरुषों की प्रचुरता है। स्वस्थान में परस्पर तुल्य हैं। यहाँ पर पूर्व विदेह और अपरविदेह के मनुष्यों को तुल्य बताया है। वह सामान्य कथन समझना चाहिये। प्रज्ञापना सूत्र के तीसरे पद में दिशानुपात के वर्णन में पूर्वविदेह से अपरविदेह में मनुष्य विशेषाधिक बताये हैं। यहां पर उस विशेषाधिकता को गौण कर दिया गया है।

पूर्वविदेह और अपर विदेह के मनुष्य पुरुषों से अनुत्तरौपपातिक देव पुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती आकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे उपरितन ग्रैवेयक देव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरुष, मध्यम ग्रैवेयक देव पुरुष, अधस्तन ग्रैवेयक देव पुरुष, अच्युतकल्प देव पुरुष, आरणकल्प देव पुरुष, प्राणतकल्प देव पुरुष, आनतकल्प देव पुरुष क्रमशः उत्तरोत्तर संख्यातगुणा हैं। उनसे सहस्रार कल्प देव पुरुष, लान्तक कल्प देव पुरुष, ब्रह्मलोक कल्प देव पुरुष, माहेन्द्रकल्प देव पुरुष, सनत्कुमार कल्प देव पुरुष, ईशान कल्प देव पुरुष क्रमशः उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा हैं। ईशानकल्प देव पुरुष से सौधर्म कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा हैं। सौधर्म कल्प के देव पुरुष से भवनवासी देव पुरुष असंख्यातगुणा हैं।

भवनवासी देव पुरुष से खेचर तिर्यंच पुरुष असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती असंख्यातश्रेणी के आकाश प्रदेश राशि तुल्य हैं। उनसे स्थलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, उनसे जलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, उनसे वाणव्यंतर देव पुरुष संख्यातगुणा हैं क्योंकि वे एक प्रतर में संख्यात योजन कोटि प्रमाण एक प्रदेश वाली श्रेणि के जितने खण्ड होते हैं उनके बत्तीसवें भाग प्रमाण हैं। उनसे ज्योतिषी देव संख्यातगुणा हैं क्योंकि दो सौ छप्पन अंगुल प्रमाण एक प्रदेश वाली श्रेणी के एक प्रतर में जितने खण्ड होते हैं उनके बत्तीसवें भाग प्रमाण हैं। यह पांचवां अल्पबहुत्व हुआ।

इस पांचवें अल्पबहुत्व का सारांश यह है कि तिर्यंच पुरुष, मनुष्य पुरुष और देव पुरुषों में सबसे थोड़े अंतरद्वीपज मनुष्य पुरुष होते हैं और सबसे अधिक ज्योतिषी देव पुरुष होते हैं।

पुरुष वेद की बंध स्थिति

पुरिसवेयस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधट्ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठसंवच्छराणि, उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दसवाससयाइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेओ।

कठिन शब्दार्थ - **संवच्छराणि** - संवत्सर (वर्ष), **अबाहा** - अबाधाकाल, **अबाहुणिया** - अबाधाकाल से रहित, **कम्मठिई** - कर्म स्थिति, **कम्मणिसेओ** - कर्मनिषेक-कर्मदलिकों की उदयावलिका में आने की रचना विशेष।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! पुरुषवेद की बंधस्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पुरुषवेद की बंधस्थिति जघन्य आठ वर्ष और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की है। दस सौ (एक हजार) वर्ष का अबाधाकाल है। अबाधाकाल से रहित कर्म स्थिति कर्म निषेक है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पुरुषवेद की बंध स्थिति कही गई है। पुरुषवेद की जघन्य स्थिति आठ वर्ष की है क्योंकि इससे कम स्थिति के पुरुष वेद के बंध योग्य अध्यवसाय ही नहीं होते। उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। कर्म स्थिति दो प्रकार से होती है - १. कर्म रूप से अवस्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और २. अनुभव योग्य। दस कोडाकोडी सागरोपम की यह स्थिति कर्म अवस्थान रूप है। अनुभव योग्य जो कर्म स्थिति होती है वह अबाधाकाल से रहित होती है। अबाधाकाल पूरा हुए बिना कोई कर्म उदय में नहीं आता। जिस कर्म की उत्कृष्ट स्थिति जितने कोडाकोडी सागरोपम की होती है उसका अबाधाकाल उतने ही सौ वर्ष का होता है। पुरुषवेद की उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की कही गई है तो पुरुष वेद का अबाधाकाल दस सौ अर्थात् एक हजार वर्ष का होता है। अबाधा काल से रहित स्थिति ही अनुभव योग्य होती है और यही कर्मनिषेक है।

पुरुष वेद का स्वभाव

पुरिस वेए णं भंते! किं पगारे पण्णत्ते?

गोयमा! वणदवग्गि जाल समाणे पण्णत्ते। से त्तं पुरिसा॥ ५७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरुष वेद किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पुरुष वेद वन की अग्नि (दावाग्नि) ज्वाला के समान है। यह पुरुष वेद का निरूपण हुआ।

विवेचन - जिस प्रकार वन की अग्नि प्रारम्भ में तीव्र दाह वाली होती है उसी प्रकार पुरुषवेद का प्रारम्भ तो तीव्र कामाग्नि रूप से होता है किन्तु वह शीघ्र शांत भी हो जाता है। यह पुरुष का अधिकार हुआ।

नपुंसक के भेद

से किं तं नपुंसगा?

णपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा - णेरइय णपुंसगा, तिरिक्खजोणिय णपुंसगा मणुस्स णपुंसगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नपुंसक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. नैरयिक नपुंसक २. तिर्यंचयोनिक नपुंसक और ३. मनुष्य नपुंसक।

विवेचन - पुरुषवेद का निरूपण करने के पश्चात् सूत्रकार नपुंसकवेद का कथन करते हैं। गति की अपेक्षा नपुंसक के तीन भेद हैं-नैरयिक नपुंसक, तिर्यंच नपुंसक और मनुष्य नपुंसक। देव नपुंसक नहीं होते हैं। अब सूत्रकार नपुंसक के अलग-अलग भेदों का कथन करते हैं -

से किं तं णेरइय णपुंसगा?

णेरइया णपुंसगा सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा-रयणप्पभापुढविणेरइय णपुंसगा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सक्करपभा पुढविणेरइय णपुंसगा जाव अहेसत्तमपुढवि णेरइय णपुंसगा। से त्तं णेरइय णपुंसगा।

भावार्थ - नैरयिक नपुंसक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

नैरयिक नपुंसक सात प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक, शर्कराप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसक। यह नैरयिक नपुंसक का निरूपण हुआ।

विवेचन - नैरयिक नपुंसकों के सात भेद इस प्रकार होते हैं - १. रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक २. शर्कराप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक ३. बालुकाप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक ४. पंकप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक ५. धूमप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक ६. तमःप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक ७. अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसक।

से किं तं तिरिक्खजोणिय णपुंसगा?

तिरिक्खजोणिय णपुंसगा पंचविहा पण्णत्ता तंजहा-एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा, बेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा, तेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा, चउरिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा, पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा।

से किं तं एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा?

एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा - पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा जाव वणस्सइकाइय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा, से तं एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा।

से किं तं बेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा?

बेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा अणेगविहा पण्णत्ता। से तं बेइंदिय तिरिक्ख जोणिय णपुंसगा एवं तेइंदिया वि चउरिंदिया वि।

से किं तं पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा?

पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा - जलयरा थलयरा खहयरा।

से किं तं जलयरा?

जलयरा सो चेव पुव्वत्त भेदो आसालिय सहिओ भाणियव्वो, से तं पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा।

भावार्थ - तिर्यंच योनिक नपुंसक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

तिर्यंच योनिक नपुंसक पांच प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक, बेइन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक, तेइन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक, चउरिन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक।

एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक कितने प्रकार के कहे गये हैं? एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक पांच प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक। यह एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक का निरूपण हुआ।

बेइंदिय तिर्यंच योनिक नपुंसक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

बेइंदिय तिर्यंच योनिक नपुंसक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। यह बेइन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक का निरूपण हुआ। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय के विषय में भी कह देना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा-जलचर, स्थलचर और खेचर।

जलचर कितने प्रकार के हैं?

जलचर के पूर्वोक्त भेद से यावत् आसालिक को ग्रहण करके कहना चाहिये। यह पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक का वर्णन हुआ।

विवेचन - तिर्यंच नपुंसक के जाति की अपेक्षा पांच भेद कहे गये हैं - १. एकेन्द्रिय नपुंसक २. बेइन्द्रिय नपुंसक ३. तेइन्द्रिय नपुंसक ४. चउरिन्द्रिय नपुंसक और ५. पंचेन्द्रिय नपुंसक। एकेन्द्रिय नपुंसकों के पांच भेद हैं - १. पृथ्वीकाय नपुंसक २. अप्काय नपुंसक ३. तेजस्काय नपुंसक ४. वायुकाय नपुंसक और ५. वनस्पतिकाय नपुंसक। बेइन्द्रिय नपुंसक, तेइन्द्रिय नपुंसक, चउरिन्द्रिय नपुंसक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। प्रथम प्रतिपत्ति में जो भेद प्रभेद बताये हैं, वे सब यहाँ कहने चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक के तीन भेद हैं - १. जलचर तिर्यंच नपुंसक २. स्थलचर तिर्यंच नपुंसक और ३. खेचर तिर्यंच नपुंसक। इनके भेद प्रभेद प्रथम प्रतिपत्ति के अनुसार कह देना चाहिए किन्तु उरपरिसर्प में आसालिक का कथन भी कहना चाहिये क्योंकि आसालिक नियमा सम्मूर्च्छिम होने से नपुंसकवेदी ही होता है अतः यहाँ पर पूर्वोक्त (स्त्रीवेद और पुरुषवेद के) वर्णन से इसमें विशेषता है कि आसालिक को यहाँ पर सम्मिलित समझना चाहिए।

से किं तं मणुस्स णपुंसगा?

मणुस्स णपुंसगा तिविहा पण्णत्ता तंजहा - कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा भेदो जाव भाणियव्वो॥ ५८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - मनुष्य नपुंसक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

मनुष्य नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कर्मभूमिज, २. अकर्मभूमिज और ३. अंतरद्वीपज, पूर्व में कहे अनुसार भेद कह देने चाहिये।

विवेचन - प्रथम प्रतिपत्ति में कहे अनुसार मनुष्य नपुंसक के भेद प्रभेद कहने चाहिये।

नपुंसक की स्थिति

णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नपुंसक की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नपुंसक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

विवेचन - सामान्य नपुंसक की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की स्थिति तिर्यंच और मनुष्य नपुंसक की अपेक्षा से है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति सातवीं नरक के नैरयिक नपुंसक की अपेक्षा समझनी चाहिये।

णेरइय णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। सव्वेसि ठिई भाणियव्वा जाव अहेसत्तमापुढवि णेरइया॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक नपुंसक की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम। यहाँ सभी रत्नप्रभा आदि नैरयिकों की जिनकी जितनी स्थिति है उतनी यावत् सातवीं (अधःसप्तम) पृथ्वी के नैरयिक तक कह देनी चाहिए।

विवेचन - सामान्य से नैरयिक नपुंसक की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। विशेष विवक्षा से नैरयिक नपुंसकों की अलग अलग स्थिति इस प्रकार है -

१. रत्नप्रभा नैरयिक नपुंसक की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम।

२. शर्कराप्रभा नैरयिक नपुंसक की जघन्य स्थिति १ सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम।

३. बालुकाप्रभा नैरयिक नपुंसक की जघन्य स्थिति ३ सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम।

४. पंकप्रभा नैरयिक नपुंसक की जघन्य स्थिति ७ सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम।

५. धूमप्रभा नैरयिक नपुंसक की जघन्य स्थिति १० सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागरोपम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. तमःप्रभा नैरयिक नपुंसक की जघन्य स्थिति १७ सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति बावीस सागरोपम।

७. अधःसप्तम नैरयिक नपुंसक की जघन्य स्थिति २२ सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम।

तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

एगिंदियतिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

पुढवीकाय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं सव्वेसिं एगिंदिय णपुंसगाणं ठिई भाणियव्वा, बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय णपुंसगाणं ठिई भाणियव्वा।

पंचिंदिय तिरिक्खजोणियणपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी एवं जलयर तिरिक्ख० चप्पय थलयर उरपरिसप्पभुयपरिसप्प खहयर तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं सव्वेसिं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच योनिक नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच योनिक नपुंसक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की है।

प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्षों की है।

हे भगवन्! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की है। सभी एकेन्द्रिय नपुंसकों की स्थिति कह देनी चाहिये। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय नपुंसकों की स्थिति भी कहनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की स्थिति है इसी प्रकार जलचर तिर्यंचयोनिक, चतुष्पद स्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, खेचर तिर्यंचयोनिक नपुंसक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सामान्य तिर्यंच नपुंसक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की है। विशेष विवक्षा में अलग-अलग तिर्यंच नपुंसकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है -

समुच्चय एकेन्द्रिय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष।

पृथ्वीकाय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष।

अप्काय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष।

तेजस्काय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन अहोरात्रि।

वायुकाय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

वनस्पतिकाय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष।

बेइन्द्रिय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष।

तेइन्द्रिय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट उनपचास अहोरात्रि।

चउरिन्द्रिय नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट छह मास।

सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि वर्ष।

जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि वर्ष।

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि वर्ष।

उरपरिसर्प पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि वर्ष।

भुजपरिसर्प पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि वर्ष।

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि वर्ष।

मणुस्स णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। कम्मभूमग भरहेरवयपुव्वविदेह अवरविदेह मणुस्स णपुंसगस्स वि तहेव, अकम्मभूमगमणुस्स णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी एवं जाव अंतरदीवगाणं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य नपुंसक की स्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की है।

कर्मभूमिज भरत ऐरवत पूर्व विदेह अवरविदेह के मनुष्य नपुंसक की स्थिति भी उसी प्रकार कहनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक की जन्म की अपेक्षा स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त, संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि। इसी प्रकार यावत् अन्तरद्वीपज मनुष्य नपुंसकों तक की स्थिति कहनी चाहिये।

विवेचन - समुच्चय मनुष्य नपुंसक की स्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की है। कर्म भूमिज भरत ऐरवत, पूर्वविदेह पश्चिम विदेह के मनुष्य नपुंसक की स्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की स्थिति है। अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक की जन्म की अपेक्षा स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की है। जघन्य के अंतर्मुहूर्त्त से उत्कृष्ट का जो अंतर्मुहूर्त्त है वह वृहत्तर होता है। अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक सम्मूर्च्छिम ही होते हैं, गर्भज नहीं। युगलियों में नपुंसक नहीं होते। संहरण की अपेक्षा अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की है। जिस प्रकार अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक की स्थिति कही है उसी प्रकार हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक वर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु और अंतरद्वीपज मनुष्य नपुंसकों की स्थिति होती है।

नपुंसक की कायस्थिति (संचिट्ठणा)

णपुंसए णं भंते! णपुंसए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तरुकालो।

णेरइय णपुंसए णं भंते!० ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं एवं पुढवीए ठिई भाणियव्वा।

तिरिक्खजोणियणपुंसए णं भंते!०

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो एवं एगिंदिय णपुंसगस्स णं, वणस्सइकाइयस्स वि एवमेव, सेसाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणिओ कालओ खेत्तओ असंखेज्जा लोया।

बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय णपुंसगाण य जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जकालं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं णं भंते!० ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं। एवं जलयर तिरिक्ख चउप्पय थलयर उरगपरिसप्प भुयपरिसप्प खहयराण वि।

मणुस्स णपुंसगस्स णं भंते!० ?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं। धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। एवं कम्मभूमग भरहेरवय पुव्वविदेह अवरविदेहेसु वि भाणियव्वं।

अकम्मभूमग मणुस्स णपुंसए णं भंते!० ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं मुहुत्त पुहुत्तं। साहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी, एवं सव्वेसिं जाव अंतरदीवगाणं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नपुंसक, नपुंसक रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! नपुंसक, नपुंसक रूप में निरन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रह सकता है।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक नपुंसक, नैरयिक नपुंसक रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक नपुंसक, नैरयिक नपुंसक रूप मे निरन्तर जघन्य दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम तक रह सकता है। इसी प्रकार सभी नरक पृथ्वियों की स्थिति कह देनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक नपुंसक, तिर्यंच योनिक नपुंसक रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच योनिक नपुंसक, तिर्यंच योनिक नपुंसक रूप में निरन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रह सकता है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय नपुंसक और वनस्पतिकायिक नपुंसक के विषय में समझना चाहिये। शेष पृथ्वीकाय आदि नपुंसक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल की है जिसमें असंख्यात उत्सर्पिणियां अवसर्पिणियां बीत जाती है क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय नपुंसक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात काल है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक के रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक रूप में निरन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व तक रह सकते हैं। इसी प्रकार जलचर तिर्यंच, चतुष्पद स्थलचर उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर नपुंसकों की कायस्थिति के विषय में समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य नपुंसक के विषय में पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य नपुंसक की कायस्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व की है। धर्माचरण की अपेक्षा कायस्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की है। इसी प्रकार कर्मभूमिज भरत, ऐरवत, पूर्वविदेह, पश्चिम विदेह नपुंसकों के विषय में भी कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक, अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक के रूप में निरन्तर कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक, अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक के रूप में निरन्तर जन्म की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट मुहूर्त्त पृथक्त्व तक तथा संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक उसी रूप में रह सकता है।

विवेचन - पूर्व सूत्र में नपुंसक की भवस्थिति बताने के बाद इस सूत्र में उनकी कायस्थिति बताई गई है। किसी दूसरी जाति में जन्म न धारण करके किसी एक ही जाति में-पर्याय में लगातार जन्म धारण करते रहना कायस्थिति है। उसे संचिट्ठणा भी कहते हैं। सामान्य नपुंसक, नपुंसक पर्याय को छोड़े बिना लगातार जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रह सकता है। कोई जीव उपशम श्रेणी पर आरूढ हुआ वहाँ उसने नपुंसक वेद का उपशम किया और उपशम श्रेणी से गिरा। नपुंसक वेद का उदय हो जाने पर एक समय के बाद काल कर देव हो गया, पुरुष वेद का उदय हो गया, इस प्रकार जघन्य एक समय की कायस्थिति हुई। उत्कृष्ट वनस्पतिकाल, वनस्पतिकाल आवलिका के असंख्यात भाग के जितने समय हैं उतने पुद्गल परावर्तकाल का होता है इस काल में अनन्त उत्सर्पिणियां और अनंत अवसर्पिणियां व्यतीत हो जाती है।

नैरयिक मर कर नैरयिक नहीं होते अतः उनकी भवस्थिति ही कायस्थिति समझनी चाहिये। सभी नैरयिक नियमा नपुंसक वेदी ही होते हैं। अतः यहां पर नैरयिक नपुंसक की कायस्थिति उसकी भवस्थिति के समान है।

सामान्य तिर्यंच नपुंसक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेष विवक्षा में पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय नपुंसक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल। इसमें काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणियाँ अवसर्पिणियाँ व्यतीत हो जाती है। क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक समाप्त हो जाते हैं। अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक नपुंसक की कायस्थिति भी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल है। वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय नपुंसक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय नपुंसक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट संख्यात काल है। यह संख्यात काल संख्याता वर्षों का समझना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व की है। इसमें निरन्तर सात भव पूर्व कोटि आयु के तिर्यंच पंचेन्द्रिय नपुंसक के करने की अपेक्षा से है। इसके बाद अवश्य वेद या भव का परिवर्तन होता है। इसी प्रकार जलचर, स्थलचर और खेचर नपुंसकों की कायस्थिति समझनी चाहिये।

सामान्य से मनुष्य नपुंसक की कायस्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व की है। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की है। इसी प्रकार कर्म भूमि के भरत, ऐरावत, पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह के मनुष्य नपुंसकों की कायस्थिति समझनी चाहिये।

सामान्य से अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक की कायस्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त पृथक्त्व है। संहरण की अपेक्षा कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की है। हैमवत, हैरण्यवत्, हरिवर्ष, रम्यक वर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु और अन्तरद्वीपज मनुष्य नपुंसकों की कायस्थिति भी जन्म और संहरण की अपेक्षा इसी प्रकार समझनी चाहिये।

अकर्मभूमि एवं अन्तर द्वीप के नपुंसक नियमा सम्मूर्च्छिम ही होते हैं। उनकी काय स्थिति यहाँ पर मुहूर्त्त पृथक्त्व बताई गई है। इसका आशय अन्तर्मुहूर्त्त पृथक्त्व ही समझना चाहिये क्योंकि सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के लगातार अनेकों भवों का कालमान भी अन्तर्मुहूर्त्त जितना ही होता है। एकभव की स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त होती है। काय स्थिति में अनेकों भवों का कालमान मिलाने पर भी अन्तर्मुहूर्त्त ही होता है। परन्तु यहाँ पर भवस्थिति और कायस्थिति सरीखी न समझ लेवें उसके लिए शब्दों में भिन्नता के लिए अन्तर्मुहूर्त्त पृथक्त्व शब्द दिया है।

नपुंसकों का अंतर

णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नपुंसक का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! नपुंसक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट कुछ अधिक (सातिरेक) सागरोपम शत पृथक्त्व का होता है।

विवेचन - नपुंसक, नपुंसक पर्याय को छोड़ने के पश्चात् कितने काल के बाद पुनः नपुंसक होता है उस काल को नपुंसक का अंतर कहते हैं। सामान्य नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शत पृथक्त्व का कहा है क्योंकि व्यवधान रूप में पुरुषत्व और स्त्रीत्व का कालमान इतना ही होता है।

संग्रहणी गाथाओं में भी कहा है -

इत्थिनपुंसा संचिट्ठणेसु पुरिसंतरे य समओ उ।

पुरिस नपुंसा संचिट्ठणंतरे सागरपुहुत्तं॥

अर्थात् - स्त्री और नपुंसक की संचिट्ठणा (कायस्थिति) और पुरुष का अंतर जघन्य एक समय है तथा पुरुष की संचिट्ठणा और नपुंसक का अंतर उत्कृष्ट से सागर पृथक्त्व (पदैकदेशे पदसमुदायोपचार से सागरोपम शत पृथक्त्व) है।

णेरइय णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तरुकालो, रयणप्पभापुढवी णेरइय णपुंसगस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तरुकालो, एवं सव्वेसिं जाव अहेसत्तमा।

कठिन शब्दार्थ - तरुकालो - वनस्पतिकाल।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक नपुंसक का अंतर कितने काल का होता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त का और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है इसी प्रकार अधः सप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसक का अंतर कह देना चाहिये।

विवेचन - सामान्य रूप से नैरयिक नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। सातवीं नरक से निकल कर तंदुल मत्स्यादि भव में अंतर्मुहूर्त्त तक रह कर पुनः सातवीं नरक में जाने की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त कहा गया है। उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अंतर नरक भव से निकल कर परम्परा से निगोद में अनंतकाल तक रहने की अपेक्षा समझना चाहिये। इसी प्रकार सातों नरक पृथ्वियों के नपुंसकों का अंतर समझना चाहिये।

तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं।

एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सागरोवमसहस्साइं संखिज्जवासमब्भहियाइं, पुढवि आउतेउवाऊणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, वणस्सइकाइयाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव असंखेज्जालोया, सेसाणं बेइंदियाईणं जाव खहयराणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

भावार्थ - तिर्यंचयोनिक नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शत पृथक्त्व का है। एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम तथा पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। वनस्पतिकायिक नपुंसकों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट असंख्यातकाल यावत् असंख्यात लोक का है। शेष बेइन्द्रिय आदि यावत् खेचर नपुंसकों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है।

विवेचन - सामान्य तिर्यंच नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सातिरेक (कुछ अधिक) सागरोपम शत पृथक्त्व का है। एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम का कहा है क्योंकि एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक जीव मरकर त्रसकायों में उत्पन्न होवे तो त्रसकाय की व्यवधान रूप काल स्थिति इतनी ही होती है इसके बाद वह पुनः एकेन्द्रिय होता है। यह एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक का सामान्य अंतर है। विशेष कथन इस प्रकार है -

पृथ्वीकायिक नपुंसक, अप्कायिक नपुंसक, तेजस्कायिक नपुंसक और वायुकायिक नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। वनस्पतिकायिक नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट असंख्यातकाल है। यह असंख्यात काल, काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप होता है और क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण होता है। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी का असंख्यातपना इस प्रकार समझना चाहिये - असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों में से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश अपहार करने पर समस्त प्रदेशों के समाप्त होने में जितनी उत्सर्पिणियाँ अवसर्पिणियां व्यतीत हो उतना असंख्यात काल है। वनस्पति भव से निकल कर उत्कृष्ट इतने काल तक जीव अन्य भवों में रह सकता है इसके बाद वह नियम से पुनः वनस्पतिकाय में उत्पन्न होता है।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और जलचर, स्थलचर, खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल है, यह अनंतकाल वनस्पतिकाल प्रमाण है।

मणुस्स णपुंसगस्स खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढपोग्गल परियट्टं देसूणं एवं कम्मभूमगस्स वि भरहेरवयस्स पुव्वविदेह अवरविदेहगस्स वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अकम्मभूमगमणुस्स णपुंसगस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ? गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। संहरणं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं जाव अंतरदीवगत्ति॥ ५९॥

भावार्थ - मनुष्य नपुंसक का अंतर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। धर्माचरण की अपेक्षा अंतर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त का है। इसी प्रकार कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक, भरत ऐरवत पूर्व विदेह पश्चिम विदेह मनुष्य नपुंसक का अंतर भी कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक का अन्तर कितने काल का होता है?

उत्तर - हे गौतम! अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक का जन्म की अपेक्षा अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है तथा संहरण की अपेक्षा अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार अंतरद्वीपज मनुष्य नपुंसक तक का अंतर समझ लेना चाहिये।

विवेचन - सामान्य मनुष्य नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। कर्म भूमिज मनुष्य नपुंसक का अंतर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पति काल तथा धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय का अंतर कहा है। यहां पर एक समय का अन्तर का पाठ लिपि प्रमाद से होना संभव है। अन्तर्मुहूर्त्त का पाठ होना ही उचित संभव है। जैसे स्त्रीवेद का धर्माचरण की अपेक्षा एक समय का पाठ अशुद्ध समझ कर अन्तर्मुहूर्त्त का पाठ शुद्ध होने की संभावना बताई गई थी वैसे ही यहाँ पर भी समझना चाहिये। इसका खुलासा स्त्रीवेद के समान समझ लेना चाहिये। उत्कृष्ट अंतर अनंतकाल यावत् देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त है। इस अनन्तकाल में अनन्त उत्सर्पिणियां अवसर्पिणियां व्यतीत हो जाती है तथा क्षेत्र की अपेक्षा अनंत लोक समाप्त हो जाते हैं, यह देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त जितना है। इसी प्रकार भरत, ऐरवत, पूर्व विदेह, पश्चिम विदेह कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसकों का अंतर समझना चाहिये।

अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक का जन्म की अपेक्षा अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि अन्य गतियों में जाने की अपेक्षा इतना ही व्यवधान होता है उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। संहरण की अपेक्षा अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। किसी ने कर्मभूमि के मनुष्य नपुंसक का संहरण किया और उसे अकर्म भूमि में ले गया जिससे वह अकर्मभूमिज कहलाया तथा कुछ काल बाद तथाविध बुद्धि परिवर्तन से वह पुनः कर्मभूमि में संहरण करके लाया गया, अंतर्मुहूर्त्त काल रहने के कारण जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त का कहा गया है। उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल है जैसा सामान्य अकर्मभूमिज मनुष्य का अंतर कहा गया है उसी प्रकार हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक वर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य तथा अंतर द्वीपज मनुष्य नपुंसक का अंतर समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नपुंसकों का अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! णेरइय णपुंसगाणं तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं मणुस्स णपुंसगाणं य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्स णपुंसगा, णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा तिरिक्खजोणिय णपुंसगा अणंतगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन नैरयिक नपुंसक, तिर्यंचयोनिक नपुंसक और मनुष्य नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मनुष्य नपुंसक, उनसे नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे तिर्यंच योनिक नपुंसक अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नपुंसकों का सामान्य अल्पबहुत्व बताया गया है जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े मनुष्य नपुंसक हैं क्योंकि वे श्रेणी के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों की राशि प्रमाण हैं। उनसे नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे अंगुल मात्र क्षेत्र की प्रदेश राशि के प्रथम वर्गमूल को द्वितीय वर्गमूल से गुणा करने पर जो प्रदेश राशि होती है उसके बराबर घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश हैं उनके बराबर हैं। उनसे तिर्यंच नपुंसक अनन्तगुणा हैं क्योंकि निगोद के जीव अनन्त हैं। यह प्रथम अल्पबहुत्व हुआ। दूसरा अल्पबहुत्व इस प्रकार है -

एएसि णं भंते! रयणप्पहापुढवि णेरइय णपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढविणेरइय णपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढविणेरइय णपुंसगा छट्ठपुढवि णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा जाव दोच्चपुढविणेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसकों में यावत् अधःसप्तमपृथ्वी नैरयिक नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक हैं, उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा यावत् दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक क्रमशः असंख्यात-असंख्यातगुणा, उनसे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - इस दूसरे अल्पबहुत्व में नैरयिकों के सात भेदों का अल्पबहुत्व है जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े सातवीं नरक पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक हैं क्योंकि इनका प्रमाण आभ्यन्तर श्रेणी के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंख्यात भागवर्ती आकाश प्रदेश राशि तुल्य है। उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं। उनसे पांचवीं पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे चौथी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे तीसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि ये सभी पूर्व पूर्व नैरयिकों के परिमाण की हेतुभूत श्रेणी के असंख्यातवें भाग की अपेक्षा असंख्यातगुणा असंख्यातगुणा श्रेणी के भागवर्ती आकाशप्रदेश राशि प्रमाण है। दूसरी नरक के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि ये अंगुल मात्र प्रदेश की प्रदेश राशि के प्रथम वर्ग मूल को द्वितीय वर्गमूल से गुणा करने पर जितनी प्रदेश राशि होती है उसके बराबर घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश हैं उतने प्रमाण वाले हैं।

प्रत्येक नरक पृथ्वी के पूर्व, उत्तर, पश्चिम दिशा के नैरयिक सबसे थोड़े हैं उनसे दक्षिण दिशा के नैरयिक असंख्यातगुणा हैं। पूर्व पूर्व की नरक पृथ्वियों की दक्षिण दिशा के नैरयिक नपुंसकों की अपेक्षा पश्चानुपूर्वी से आगे आगे की पृथ्वियों से उत्तर और पश्चिम दिशा में रहे हुए नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा अधिक हैं। प्रज्ञापना सूत्र के तीसरे पद में भी ऐसा ही वर्णन है। यह दूसरा अल्पबहुत्व हुआ।

एएसि णं भंते! तिरिक्खजोणियणपुंसगाणं एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं पुढवीकाइय जाव वणस्सइकाइय एगिंदियतिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसगाणं जलयराणं थलयराणं खहयराण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा खहयरतिरिक्खजोणियणपुंसगा थलयरतिरिक्खजोणियणपुंसगा संखेज्जगुणा जलयरतिरिक्खजोणिय णपुंसगा संखेज्जगुणा चउरिंदिय तिरिक्खजोणियणपुंसगा विसेसाहिया तेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया बेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया तेउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा असंखेज्जगुणा पुढविक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया णपुंसगा विसेसाहिया एवं आउवाऊवणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा अणंतगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तिर्यंचयोनिक नपुंसकों में एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों में-पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों में, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसकों में जलचरों में, स्थलचरों में, खेचरों में, कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े खेचर तिर्यंच योनिक नपुंसक, उनसे स्थलचर तिर्यंचयोनिक नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे जलचर तिर्यंचयोनिक नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे चउरिन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक, उनसे तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक, एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुसंक विशेषाधिक और उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - इस तीसरे अल्पबहुत्व में तिर्यंच नपुंसकों के भेदों की अपेक्षा अल्पबहुत्व का कथन किया गया है जो इस प्रकार है -

सबसे थोड़े खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय नपुंसक हैं क्योंकि वे प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती असंख्यात श्रेणीगत आकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे स्थलचर तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा हैं क्योंकि वे बृहत्तर प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती असंख्यात श्रेणीगत आकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे जलचर तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा हैं क्योंकि वे बृहत्तम प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती असंख्यात श्रेणीगत प्रदेशराशि प्रमाण हैं। उनसे चउरिन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक हैं क्योंकि वे असंख्यात योजन कोटाकोटि प्रमाण आकाश प्रदेश राशि प्रमाण घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश हैं उतने प्रमाण वाले हैं। उनसे तेइन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक हैं क्योंकि वे प्रभूततर श्रेणीगत आकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे बेइन्द्रिय नपुंसक विशेषाधिक है क्योंकि वे प्रभूततम श्रेणीगत आकाश प्रदेश राशि प्रमाण है।

उनसे तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे सूक्ष्म और बादर मिल कर असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है। उनसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक हैं क्योंकि वे प्रभूत असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। उनसे अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक हैं क्योंकि वे प्रभूततर असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। उनसे वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक हैं क्योंकि वे प्रभूततम असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक अनन्तगुणा हैं क्योंकि वे अनन्त लोकाकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। यह तीसरा अल्प बहुत्व हुआ।

एएसि णं भंते! मणुस्स णपुंसगाणं कम्मभूमि णपुंसगाणं अकम्मभूमि णपुंसगाणं अंतरदीवगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवा अंतरदीवग अकम्मभूमगमणुस्स णपुंसगा देवकुरु उत्तरकुरु अकम्मभूमग मणुस्स णपुंसगा दो वि संखेज्जगुणा एवं जाव पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्स णपुंसगा दो वि संखेज्जगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन मनुष्य नपुंसकों में कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसकों में, अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसकों में और अन्तरद्वीपों के मनुष्य नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अन्तरद्वीपज मनुष्य नपुंसक, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणा इस प्रकार यावत् पूर्वविदेह पश्चिमविदेह के कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणा हैं।

विवेचन - इस चौथे अल्प बहुत्व में मनुष्य के भेदों की अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े अन्तरद्वीपज मनुष्य नपुंसक सम्मूर्च्छिम जन्म वाले होते हैं क्योंकि गर्भज मनुष्य नपुसंकों की अंतरद्वीप में संभावना नहीं है। वहां जो गर्भज मनुष्य नपुंसक होते हैं वे कर्मभूमि से संहरण किये हुए ही संभव हैं क्योंकि वहां के जन्मे हुए मनुष्य नपुंसक नहीं हो सकते। उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा अधिक हैं क्योंकि अंतरद्वीपज गर्भज मनुष्यों से देवकुरु उत्तरकुरु के गर्भज मनुष्य संख्यातगुणा हैं और गर्भज मनुष्यों के उच्चार आदि अशुचि स्थानों में मनुष्यों की उत्पत्ति होती है। स्वस्थान में परस्पर तुल्य हैं। देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक से हरिवर्ष रम्यकवर्ष अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा और स्वस्थान में परस्पर तुल्य हैं। उनसे हैमवत हैरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा हैं और स्वस्थान में तुल्य हैं। उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा हैं और स्वस्थान में तुल्य हैं। उनसे पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा हैं और स्वस्थान में परस्पर तुल्य हैं। इस प्रकार यह मनुष्य नपुंसक विषयक चौथा अल्पबहुत्व है।

एएसि णं भंते! णेरइयणपुंसगाणं रयणप्पभापुढविणेरइय णपुंसगाणं जाव अहेसत्तमा पुढविणेरइय णपुंसगाणं तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्स णपुंसगाणं कम्मभूमिगाणं अकम्मभूमिगाणं अंतरदीवगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवा अहेसत्तम पुढवि णेरइय णपुंसगा छट्ठं पुढवि णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा जाव दोच्चपुढवि णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा अंतरदीवगमणुस्स णपुंसगा असंखेज्जगुणा देवकुरु उत्तरकुरु अकम्मभूमगमणुस्स णपुंसगा दो वि संखेज्जगुणा जाव पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्स णपुंसगा दो वि संखेज्जगुणा रयणप्पभा पुढवि णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा खहयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा असंखेज्जगुणा, थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा संखिज्जगुणा, जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा संखिज्जगुणा, चउरिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया, तेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया, बेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया, तेउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा असंखेज्जगुणा, पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया, आउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया, वाउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया, वणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा अणंतगुणा॥ ६०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन नैरयिक नपुंसक-रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसक यावत् अधः सप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसकों में, तिर्यंच योनिक नपुंसकों में-एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों, पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों में, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों में, जलचरों में, स्थलचरों में, खेचरों में, मनुष्य नपुंसकों में-कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसकों में, अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसकों में और अंतरद्वीपज मनुष्य नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसक, उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा उनसे यावत् दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे अन्तरद्वीपज मनुष्य नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणा उनसे यावत् पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणा, उनसे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे चउरिन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे पृथ्वीकायिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक विशेषाधिक और उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक नपुंसक अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - इस पांचवें अल्पबहुत्व में सामान्य और विशेष दोनों प्रकारों का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार हैं - सबसे थोड़े अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसक, उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे पांचवीं पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे चौथी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे तीसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे अन्तरद्वीपज मनुष्य नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे हैमवत हैरणयवत अकर्म भूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक संख्यातगुणा और स्वस्थान में परस्पर तुल्य हैं। उनसे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे चउरिन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं उनसे तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं, उनसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं, उनसे अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक हैं। उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक अनन्तगुणा हैं।

इस प्रकार यह पांचवां नैरयिक, तिर्यंच और मनुष्य नपुंसक संबंधी शामिल अल्पबहुत्व हुआ।

नपुंसक वेद की बंध स्थिति

णपुंसगवेयस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगा उक्कोसेणं वीसं सागरोवम कोडाकोडी, दोण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेगो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नपुंसकवेद कर्म की कितने काल की बंध स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नपुंसकवेद कर्म की जघन्य स्थिति सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग में पल्योपम का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंख्यातवां भाग कम और उत्कृष्ट बीस कोडाकोडी सागरोपम की कही गई है। दो हजार वर्ष का अबाधा काल है। अबाधाकाल से हीन स्थिति का कर्मनिषेक है।

विवेचन - नपुंसकवेद की बंधस्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम के $\frac{२}{७}$ (दो सातिया भाग) भाग तथा उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। जघन्य स्थिति इस प्रकार समझनी चाहिये-जिस प्रकृति की जो उत्कृष्ट स्थिति होती है उसमें मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने पर जो राशि प्राप्त होती है उससे पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम कर देने पर जघन्य बंध स्थिति प्राप्त होती है। नपुंसकवेद की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है उसमें सत्तर कोडाकोडी का भाग देने पर $\frac{२}{७}$ सागरोपम आता है इसमें पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम करने पर नपुंसक वेद की जघन्य स्थिति प्राप्त होती है।

जिस कर्म प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति जितने कोडाकोडी सागरोपम की है उतने सौ वर्ष का उसका अबाधाकाल होता है। नपुंसकवेद की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम होने से उसका अबाधाकाल २० सौ अर्थात् दो हजार वर्ष का है। बंध स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर जो स्थिति होती है वह अनुभव योग्य (उदयावलिका में आने योग्य) स्थिति कहलाती है। अतः अबाधाकाल से रहित स्थिति का कर्मनिषेक होता है अर्थात् अनुभव योग्य कर्मदलिकों की रचना होती है-कर्मदलिक उदय में आने लगते हैं।

इस प्रकार नपुंसकवेद की बंध स्थिति का प्रस्तुत सूत्र में कथन किया गया है।

नपुंसक वेद का स्वभाव

णपुंसग वेए णं भंते! किं पगारे पण्णत्ते?

गोयमा! महाणगरदाहसमाणे पण्णत्ते समणाउसो! से तं णपुंसगा॥ ६१॥

कठिन शब्दार्थ - महाणगरदाहसमाणे - महानगर के दाह समान-चारों ओर धधकती हुई तीव्र अग्नि समान

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नपुंसकवेद किस प्रकार का है?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण गौतम! नपुंसक वेद महानगर के दाह के समान कहा गया है। यह नपुंसक का निरूपण हुआ।

विवेचन - जैसे किसी महानगर में फैली हुई आग की ज्वालाएं चिरकाल तक धधकती रहती है उसी प्रकार नपुंसक की कामाग्नि भी उत्कृष्ट अतितीव्र और चिरकाल तक धधकती रहती है। इस प्रकार नपुंसक संबंधी कथन पूर्ण हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नव विध अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! इत्थीणं पुरिसाणं णपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पुरिसा इत्थीओ संखेज्जगुणा णपुंसगा अणंतगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन स्त्रियों में, पुरुषों में और नपुंसकों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े पुरुष, उनसे स्त्रियाँ संख्यातगुणी और उनसे नपुंसक अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - यह सामान्य से स्त्री, पुरुष और नपुंसक का प्रथम अल्पबहुत्व है।

एएसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं तिरिक्खजोणिय पुरिसाणं तिरिक्खजोणिय णपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणियपुरिसा तिरिक्खजोणित्थीओ असंखेज्जगुणाओ तिरिक्खजोणिय णपुंसगा अणंतगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तिर्यंच योनिक स्त्रियों में, तिर्यंचयोनिक पुरुषों में और तिर्यंचयोनिक नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े तिर्यंचयोनिक पुरुष, उनसे तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ असंख्यातगुणी और उनसे तिर्यंचयोनिक नपुंसक अनंतगुणा हैं।

विवेचन - यह दूसरा अल्पबहुत्व सामान्य से तिर्यंच स्त्री, पुरुष और नपुंसक के विषय में है।

एएसि णं भंते! मणुस्सित्थीणं मणुस्सपुरिसाणं मणुस्स णपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्स पुरिसा मणुस्सित्थीओ संखेज्जगुणाओ मणुस्स णपुंसगा असंखेज्जगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन मनुष्य स्त्रियों में, मनुष्य पुरुषों में और मनुष्य नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मनुष्य पुरुष, उनसे मनुष्य स्त्रियाँ संख्यातगुणी और उनसे मनुष्य नपुंसक असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - सामान्य से मनुष्य स्त्री, पुरुष और नपुंसक विषयक यह तीसरा अल्पबहुत्व है।

एएसि णं भंते! देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइय णपुंसगा, देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, देवित्थीओ संखेज्जगुणाओ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन देवस्त्रियों, देवपुरुषों और नैरयिक नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े नैरयिक नपुंसक, उनसे देवपुरुष असंख्यातगुणा और उनसे भी देवस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं।

विवेचन - सामान्य देवस्त्री, देवपुरुष और नैरयिक नपुंसक विषयक यह चौथा अल्पबहुत्व कहा गया है।

एएसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं मणुस्सित्थीणं मणुस्सपुरिसाणं मणुस्सणपुंसगाणं देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइय णपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सपुरिसा मणुस्सित्थीओ संखेज्जगुणाओ मणुस्स णपुंसगा असंखेज्जगुणा णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणियपुरिसा असंखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ तिरिक्खजोणिय णपुंसगा अणंतगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तिर्यंचयोनिक स्त्रियों, तिर्यंचयोनिक पुरुषों, तिर्यंचयोनिक नपुंसकों में, मनुष्यस्त्रियों, मनुष्य पुरुषों और मनुष्य नपुंसकों में, देव स्त्रियों, देवपुरुषों और नैरयिक नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मनुष्य पुरुष, उनसे मनुष्य स्त्रियाँ संख्यातगुणी, उनसे मनुष्य नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे तिर्यंचयोनिक पुरुष असंख्यातगुणा, उनसे तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ संख्यातगुणी, उनसे देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे देवस्त्रियाँ संख्यातगुणी उनसे तिर्यंचयोनिक नपुंसक अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - पांचवें अल्पबहुत्व में सामान्य की अपेक्षा पूर्व में कहे गये अल्पबहुत्वों का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है।

एएसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणिय पुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं बेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं तेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं चउरिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा, खहयर तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियपुरिसा संखेज्जगुणा, थलयर पंचिंदियतिरिक्ख जोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, जलयर तिरिक्खजोणिय पुरिसा संखेज्जगुणा, जलयर तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, खहयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा असंखेज्जगुणा थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा संखेज्जगुणा जलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा संखेज्जगुणा, चउरिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया, तेइंदिय णपुंसगा विसेसाहिया, बेइंदिय णपुंसगा विसेसाहिया, तेउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा असंखेज्जगुणा पुढवीकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया, आउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया वाउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा विसेसाहिया वणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगा अणंतगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तिर्यंचयोनिक स्त्रियों-जलचरी, स्थलचरी, खेचरी, तिर्यंचयोनिक पुरुषों-जलचर, स्थलचर, खेचर, तिर्यंचयोनिक नपुंसकों-एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों, पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों, बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों, तेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों, चउरिन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों-जलचर स्थलचर और खेचर नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े खेचर तिर्यंच पुरुष, उनसे खेचर तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यातगुणी, उनसे स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, उनसे स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यातगुणी, उनसे जलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा, उनसे जलचर तिर्यंच स्त्रियां संख्यातगुणी, उनसे खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा, उनसे चउरिन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे बेइंद्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे तेजस्कायिक एकेन्द्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंच नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - यह छठा अल्पबहुत्व तिर्यंचयोनिक स्त्री, पुरुष और नपुंसक के विशेष भेदों की अपेक्षा कहा गया है।

एएसि णं भंते! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं, अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं, मणुस्स पुरिसाणं कम्मभूमगाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवगाणं, मणुस्स णपुंसगाणं कम्मभूमगाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! अंतरदीविया मणुस्सित्थियाओ मणुस्स पुरिसा य एएणं दो वि तुल्ला सव्वत्थोवा देवकुरु उत्तरकुरु अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ मणुस्स पुरिसा य एए णं दोण्णि वि तुल्ला संखेज्जगुणा हरिवासरम्मगवास अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा य एए णं दोण्णि वि तुल्ला संखेज्जगुणा, हेमवय हेरण्णवय अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ मणुस्स पुरिसा य दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा, भरहेरवयकम्मभूमग मणुस्स पुरिसा दो वि संखेज्जगुणा भरहेरवय कम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि संखेज्जगुणाओ, पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्स पुरिसा दो वि संखेज्जगुणा, पुव्वविदेह अवरविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि संखेज्जगुणाओ, अंतरदीवग मणुस्स णपुंसगा असंखेज्जगुणा, देवकुरु उत्तरकुरु अकम्मभूमग मणुस्स णपुंसगा दो वि संखेज्जगुणा तहेव चेव जाव पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्स णपुंसगा दो वि संखेज्जगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन मनुष्य स्त्रियों-कर्मभूमिज स्त्रियों, अकर्मभूमिज स्त्रियों और अंतरद्वीपज स्त्रियों में, मनुष्य पुरुषों-कर्मभूमिज पुरुषों, अकर्मभूमिज पुरुषों और अंतरद्वीपज पुरुषों में, मनुष्य नपुंसकों-कर्मभूमिज नपुंसकों, अकर्मभूमिज नपुंसकों और अंतरद्वीपज नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! अन्तरद्वीपज मनुष्य स्त्रियाँ और मनुष्य पुरुष ये दोनों परस्पर तुल्य और सबसे थोड़े, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां और मनुष्य पुरुष परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा, उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां और मनुष्य पुरुष परस्पर तुल्य और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संख्यातगुणा, उनसे हैमवत हैरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां और मनुष्य पुरुष परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा, उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य पुरुष दोनों संख्यातगुणा, उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां दोनों संख्यातगुणी, उनसे पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य पुरुष दोनों संख्यातगुणा, उनसे पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ दोनों संख्यातगुणी, उनसे अंतरद्वीपज मनुष्य नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणा इसी तरह यावत् पूर्वविदेह कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक, पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणा हैं।

विवेचन - यह सातवां अल्पबहुत्व मनुष्य स्त्री, मनुष्य पुरुष और मनुष्य नपुंसक के विशेष भेदों की अपेक्षा कहा गया है।

एएसि णं भंते! देवित्थीणं भवणवासिणीणं वाणमंतरिणीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीणं, देवपुरिसाणं भवणवासीणं जाव वेमाणियाणं सोहम्मगाणं जाव गेवेज्जगाणं अणुत्तरोववाइयाणं, णेरइयणपुंसगाणं रयणप्पभापुढविणेरइयणपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढवि णेरइयणपुंसगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा अणुत्तरोववाइय देवपुरिसा, उवरिमगेवेज्ज देवपुरिसा संखेज्जगुणा, तं चेव जाव आणए कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा, अहेसत्तमाए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, छट्ठीए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, पंचमाए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, लंतए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, चउत्थीए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, तच्चाए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, सणंकुमार कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, दोच्चाए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, ईसाणे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा, सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, भवणवासि देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, भवणवासिदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, इमीसे रयणप्पभापुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, वाणमंतर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, वाणमंतर देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, जोइसिय देवपुरिसा संखेज्जगुणा, जोइसिय देवित्थियाओ संखेज्जगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन देवस्त्रियों में, भवनवासी देवियों में, वाणव्यंतर देवियों में, ज्योतिषी देवियों में, वैमानिक देवियों में, देवपुरुषों में भवनवासी यावत् वैमानिकों में, सौधर्मकल्प यावत् ग्रैवेयक देवों में अनुत्तरौपपातिक देवों में, नैरयिक नपुंसकों में-रत्नप्रभा नैरयिक नपुंसकों यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसकों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अनुत्तरौपपातिक देवपुरुष हैं, उनसे उपरिम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणा इसी प्रकार यावत् आनत कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा, उनसे अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे सहस्रारकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे महाशुक्र कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे पांचवीं पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे लान्तक कल्प के देव असंख्यातगुणा, उनसे चौथी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे ब्रह्मलोक कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे तीसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे माहेन्द्रकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे सनत्कुमार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे ईशानकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे ईशानकल्प की देवस्त्रियां संख्यातगुणी, उनसे सौधर्म कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा, उनसे सौधर्म कल्प की देवस्त्रियां संख्यातगुणी, उनसे भवनवासी देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे भवनवासी देवस्त्रियां संख्यातगुणी, उनसे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा, उनसे वाणव्यंतर देवपुरुष असंख्यातगुणा, उनसे वाणव्यंतर देवस्त्रियां संख्यातगुणी, उनसे ज्योतिषी देवपुरुष संख्यातगुणा, उनसे ज्योतिषी देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं।

विवेचन - यह आठवां अल्पबहुत्व विशेष भेदों की अपेक्षा से देव स्त्री, पुरुष और नैरयिक नपुंसकों के विषय में कहा गया है।

एयासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणिय पुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं, आउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं बेइंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं तेइंदियतिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं चउरिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सित्थीणं कम्मभूमिगाणं अकम्मभूमिगाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतरदीवियाणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवयाणं मणुस्स णपुंसगाणं कम्मभूयगाणं अकम्मभूयगाणं अंतरदीवगाणं देवित्थीणं भवणवासिणीणं वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीणं देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं सोहम्मगाणं जाव गेवेज्जगाणं अणुत्तरोववाइयाणं णेरइयणपुंसगाणं रयणप्पभापुढवि णेरइय णपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढवि णेरइय णपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! अंतरदीव अकम्मभूमगमणुस्सित्थीओ मणुस्सपुरिसा य एएणं दो वि तुल्ला सव्वत्थोवा, देवकुरुउत्तरकुरु अकम्मभूमग मणुस्सइत्थीओ पुरिसा य एए णं दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा एवं हरिवास रम्मगवास अकम्मभूमग मणुस्सित्थीओ मणुस्सपुरिसा य एएणं दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा एवं हेमवय हेरण्णवय अकम्मभूमग मणुस्सित्थीओ मणुस्स पुरिसा य एएणं दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा, भरहेरवयकम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दो वि संखेज्जगुणा भरहेरवय कम्मभूमिगमणुस्सित्थीओ दो वि संखेज्जगुणाओ पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्स पुरिसा दो वि संखेज्जगुणा, पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि संखेज्जगुणाओ अणुत्तरोववाइय देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, उवरिम गेवेज्ज देवपुरिसा संखेज्जगुणा जाव आणए कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा अहेसत्तमाए पुढवीए णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा छट्ठीए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा पंचमाए पुढवीए णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा, लंतए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा चउत्थीए पुढवीए णेरइय णपुंसगा असंखेज्जगुणा बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा तच्चाए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, सणंकुमारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा दोच्चाए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, अंतरदीवग अकम्मभूमगमणुस्सणपुंसगा असंखेज्जगुणा, देवकुरु-उत्तरकुरु अकम्मभूमगमणुस्सणपुंसगा दोवि संखेज्जगुणा एवं जाव विदेहत्ति, ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, ईसाणकप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा, सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवणवासिदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा, भवणवासिदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखेज्जगुणा खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ थलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखेज्जगुणा, थलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, जलयरतिरिक्खजेणिय पुरिसा संखेज्जगुणा जलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ वाणमंतरदेवपुरिसा संखेज्जगुणा वाणमंतर देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जोइसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा जोइसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ खहयर पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसगा संखेज्जगुणा, थलयरणपुंसगा संखेज्जगुणा जलयरणपुंसगा संखेज्जगुणा, चउरिंदियणपुंसगा विसेसाहिया तेइंदिय णपुंसगा विसेसाहिया, बेइंदिय णपुंसगा विसेसाहिया, तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसगा असंखेज्जगुणा, पुढवीकाइयएगिंदिय तिरिक्खजोणियणपुंसगा विसेसाहिया, आउक्काइयएगिंदिय तिरिक्खजोणियणपुंसगा विसेसाहिया, वाउक्काइयएगिंदिय तिरिक्खजोणियणपुंसगा विसेसाहिया वणस्सइकाइय एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसगा अणंतगुणा॥ ६२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तिर्यंचयोनिक स्त्रियों-जलचरी, स्थलचरी और खेचरियों में, तिर्यंचयोनिक पुरुषों-जलचर, स्थलचर, खेचरों में, तिर्यंचयोनिक नपुंसकों-एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसकों, पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों, अपकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों में, बेइन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों में, तेइन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों में, चउरिन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों में, पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसकों-जलचर, स्थलचर, खेचर नपुंसकों में, मनुष्य स्त्रियों-कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज स्त्रियों में, मनुष्य पुरुषों-कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज पुरुषों में, मनुष्य नपुंसकों-कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज नपुंसकों में देवस्त्रियों-भवनवासी देवस्त्रियों, वाणव्यंतरियों, ज्योतिषी देवस्त्रियों में, वैमानिक देवियों में, देवपुरुषों में, भवनवासी वाणव्यंतर ज्योतिषी वैमानिक देवों में सौधर्मकल्प यावत् ग्रैवेयकों में, अनुत्तरौपपातिक देवों में, नैरयिक नपुंसकों-रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसकों यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! अन्तरद्वीपज, अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ और मनुष्य पुरुष-ये दोनों परस्पर तुल्य और सबसे थोड़े हैं, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ और पुरुष परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा हैं, उनसे अकर्मभूमिज हरिवर्ष रम्यकवर्ष की मनुष्यस्त्रियां और मनुष्य पुरुष दोनों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा हैं, उनसे हैमवत हैरण्यवत के स्त्री पुरुष परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा हैं। उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य पुरुष परस्पर तुल्य और संख्यातगुणा हैं, उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियाँ दोनों संख्यातगुणा हैं, उनसे पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य पुरुष दोनों संख्यातगुणा हैं, उनसे पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियां दोनों संख्यातगुणी हैं, उनसे अनुत्तरौपपातिक देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे उपरिम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुणा हैं, उनसे यावत् आनत कल्प के देवपुरुष उत्तरोत्तर संख्यातगुणा हैं, उनसे अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे सहस्रार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे महाशुक्रकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे पांचवीं पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे लान्तक कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे चौथी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे ब्रह्मलोककल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे तीसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे माहेन्द्रकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे सनत्कुमार कल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे अन्तर्द्वीपज अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिज मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुणा हैं इसी प्रकार यावत् विदेह तक उत्तरोत्तर संख्यात गुणा कहना चाहिये, उनसे ईशानकल्प के देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे ईशानकल्प की देवस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, उनसे सौधर्म कल्प के देवपुरुष संख्यातगुणा हैं, उनसे सौधर्मकल्प की देवस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, उनसे भवनवासी देवपुरुष असंख्यातगुणा हैं, उनसे भवनवासी देवस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, उनसे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे खेचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा हैं, उनसे खेचर तिर्यंचस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, उनसे स्थलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा हैं, उनसे स्थलचर तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, उनसे जलचर तिर्यंच पुरुष संख्यातगुणा हैं, उनसे जलचर तिर्यंच स्त्रियां संख्यातगुणी हैं, उनसे वाणव्यंतर देवपुरुष संख्यातगुणा हैं, उनसे वाणव्यंतर देवियां संख्यातगुणी हैं, उनसे ज्योतिषी देवपुरुष संख्यातगुणा हैं, उनसे ज्योतिषी देवस्त्रियां संख्यातगुणी हैं, उनसे खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा हैं, उनसे स्थलचर तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा हैं, उनसे जलचर तिर्यंच नपुंसक संख्यातगुणा हैं, उनसे चउरिन्द्रिय नपुंसक विशेषाधिक हैं, उनसे तेइन्द्रिय नपुंसक विशेषाधिक हैं, उनसे बेइन्द्रिय नपुंसक विशेषाधिक हैं, उनसे तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक असंख्यातगुणा हैं, उनसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक हैं, उनसे अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक हैं, उनसे वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक विशेषाधिक हैं, उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक अनन्तगुणा हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - इस नौवें अल्पबहुत्व में तिर्यंच स्त्री, पुरुष और नपुंसक, मनुष्य स्त्री, पुरुष और नपुंसक, देव स्त्री पुरुष तथा नैरयिक नपुंसकों का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है।

मलयगिरि टीका में आठ ही अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। पहला अल्पबहुत्व जो सामान्य स्त्री पुरुष नपुंसक का है उसका कथन टीका में नहीं किया गया है। टीकाकार ने **एयासि णं भंते! तिरिक्खजोणिय इत्थीणं...** पाठ से ही अल्पबहुत्व का प्रारंभ किया है।

स्त्री-पुरुष-नपुंसक की स्थिति आदि

इत्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! एगेणं आएसेणं जहा पुव्विं भणियं, एवं पुरिसस्स वि णपुंसगस्स वि, संचिट्ठणा पुणरवि तिण्हं पि जहा पुव्विं भणिया, अंतरं पि तिण्हं पि जहापुव्विं भणियं तहा णेयव्वं।। ६३।।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्त्रियों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! एक अपेक्षा से जैसा पूर्व में कहा गया है वैसा ही यहां समझना चाहिये। इसी प्रकार पुरुष की स्थिति और नपुंसक की स्थिति आदि का कथन भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिये। तीनों (स्त्री, पुरुष और नपुंसक) की संचिट्ठणा (कायस्थिति) और अन्तर भी पूर्व में जिस प्रकार कहा गया है उसी प्रकार यहां भी कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्त्रियों आदि की स्थिति का कथन किया गया है। जैसे पूर्व में स्त्री प्रकरण में स्त्रियों की पृथक् पृथक् रूप से स्थिति का प्रतिपादन किया गया है उसी प्रकार यहां समुदाय रूप से स्त्रियों की स्थिति आदि का प्रतिपादन समझ लेना चाहिये, अतः यहां पुनरुक्ति दोष नहीं हैं। इसी प्रकार समुदाय रूप से पुरुषों और नपुंसकों की भी स्थिति समझ लेनी चाहिये। स्त्री, पुरुष और नपुंसकों की कायस्थिति (संचिट्ठणा) और अन्तर का पूर्व में पृथक् पृथक् रूप से कथन किया गया है उसी को यहां समुदाय रूप से समझ लेना चाहिये।

पुरुषों से स्त्रियों की अधिकता

तिरिक्खजोणित्थियाओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिगुणाओ तिरूवाहियाओ, मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसेहिंतो सत्तावीसइ गुणाओ सत्तावीसइरूवाहियाओ, देवित्थियाओ देवपुरिसेहिंतो बत्तीसइगुणाओ बत्तीसइरूवाहियाओ। से त्तं तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिविहेसु होइ भेओ ठिई य संचिट्ठणंतरऽप्पबहुं।
वेयाण य बंध ठिई वेओ तह किंपगारो उ॥ १॥
से त्तं तिविहा संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ ६४॥

॥ दोच्चा तिविहा पडिवत्ती समत्ता॥

कठिन शब्दार्थ - **तिरूवाहियाओ** - तीन रूप अधिक, **सत्तावीसइरूवाहियाओ** - सत्तावीस रूप अधिक, **बत्तीस रूवाहियाओ** - बत्तीस रूप अधिक।

भावार्थ - तिर्यंचयोनिक स्त्रियां तिर्यंचयोनिक पुरुषों से तीन गुनी और तीन रूप अधिक है। मनुष्य स्त्रियां, मनुष्य पुरुषों से सत्तावीस गुनी और सत्तावीस रूप अधिक है। देवस्त्रियां देव पुरुषों से बत्तीस गुनी और बत्तीस रूप अधिक हैं।

गाथार्थ - तीन वेद रूप इस दूसरी प्रतिपत्ति में सबसे पहले भेद विषयक अधिकार है। इसके बाद स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् वेदों की बंधस्थिति तथा वेदों के अनुभव का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार संसार समापन्नक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं।

॥ त्रिविधसंसार समापन्नक जीव वक्तव्यता रूप द्वितीय प्रतिपत्ति समाप्त॥

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पुरुषों से स्त्रियां कितनी अधिक है इस शंका का समाधान किया गया है। तिर्यंचस्त्रियां तिर्यंच पुरुषों से तीन गुनी है, मनुष्य स्त्रियां मनुष्य पुरुषों से सत्तावीसगुनी है और देवस्त्रियां देवपुरुषों से बत्तीसगुनी हैं। अन्यत्र भी इसी प्रकार कहा है -

तिगुणा तिरूव अहिया तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा।
सत्तावीस गुणा पुण मणुयाणं तदहिया चेव॥ १॥
बत्तीसगुणा बत्तीस रूप अहिया उ होंति देवाणं।
देवीओ पण्णत्ता जिणेहिं जियराग दोसेहिं॥ २॥

अन्त में उपसंहार रूप दूसरी प्रतिपत्ति के विषय को संकलित करने वाली गाथा दी गई है। दूसरी प्रतिपत्ति में तीन वेद वाले जीवों के क्रमशः भेद, स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर, अल्पबहुत्व, वेदों की बंधस्थिति और वेदों के अनुभव का कथन किया गया है।

॥ द्वितीय त्रिविधा प्रतिपत्ति समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तच्चा चउव्विह पडिवत्ती

चतुर्विधाख्या तृतीय प्रतिपत्ति

पढमो णेरइय उद्देसो - प्रथम नैरयिक उद्देशक

दस प्रकार की प्रतिपत्तियों में से दूसरी प्रतिपत्ति में जीवों के तीन भेदों का विवेचन किया गया है। इस तीसरी प्रतिपत्ति में चार प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का प्रतिपादन किया जाता है, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

चार प्रकार के संसारी जीव

तत्थ जे ते एवमाहंसु चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु तं जहा - णेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा॥ ६५॥

भावार्थ - जो आचार्य इस प्रकार कहते हैं कि संसारसमापन्नक जीव चार प्रकार के कहे गये हैं वे ऐसा प्रतिपादन करते हैं यथा - नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव।

विवेचन - संसारसमापन्नक जीवों के दस भेदों की अपेक्षा नौ प्रतिपत्तियां कही गई है। जो आचार्य संसारी जीवों के चार भेद कहते हैं वे इस प्रकार हैं - १. नरक गति के नैरयिक जीव २. तिर्यंचगति के तिर्यंचयोनिक जीव ३. मनुष्य गति के जीव-मनुष्य और ४. देवगति के जीव-देव। प्रथम उद्देशक में नैरयिक जीवों का वर्णन प्रारंभ करते हैं -

नैरयिक जीवों के भेद

से किं तं णेरइया?

णेरइया सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा - पढमा पुढविणेरइया दोच्चा पुढवि णेरइया तच्चा पुढवि णेरइया चउत्था पुढवि णेरइया पंचमा पुढवि णेरइया छट्ठा पुढवि णेरइया सत्तमा पुढवि णेरइया॥ ६६॥

भावार्थ - नैरयिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

नैरयिक सात प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. प्रथम पृथ्वी के नैरयिक २. द्वितीय पृथ्वी के नैरयिक ३. तृतीय पृथ्वी के नैरयिक ४. चतुर्थ पृथ्वी के नैरयिक ५. पंचम पृथ्वी के नैरयिक ६. षष्ठ पृथ्वी के नैरयिक और ७. सप्तम पृथ्वी के नैरयिक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सात नरकभूमियों की अपेक्षा नैरयिक जीवों के सात प्रकार कहे गये हैं। यथा - प्रथम पृथ्वी नैरयिक, द्वितीय पृथ्वी नैरयिक, तृतीय पृथ्वी नैरयिक, चतुर्थ पृथ्वी नैरयिक, पंचम पृथ्वी नैरयिक, षष्ठ पृथ्वी नैरयिक और सप्तम पृथ्वी नैरयिक।

सात पृथ्वियों के नाम और गोत्र

पढमा णं भंते! पुढवी किं णामा किं गोत्ता पण्णत्ता?

गोयमा! णामेणं घम्मा गोत्तेणं रयणप्पभा।

दोच्चा णं भंते! पुढवी किं णामा किं गोत्ता पण्णत्ता?

गोयमा! णामेणं वंसा गोत्तेणं सक्करप्पभा, एवं एएणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, णामाणि इमाणि सेला तच्चा अंजणा चउत्थी रिट्ठा पंचमी मघा छट्ठी माघवई सत्तमा जाव तमतमा गोत्तेणं पण्णत्ता॥ ६७॥

कठिन शब्दार्थ - **णामा** - नाम, **गोत्ता** - गोत्र।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! प्रथम पृथ्वी का नाम और गोत्र क्या कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम पृथ्वी का नाम 'घम्मा' और उसका गोत्र 'रत्नप्रभा' है।

प्रश्न - हे भगवन्! द्वितीय पृथ्वी का नाम और गोत्र क्या कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! द्वितीय पृथ्वी का नाम 'वंशा' और गोत्र 'शर्करा प्रभा' है। इसी प्रकार सभी पृथ्वियों के संबंध में पृच्छा करनी चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं - तीसरी शैला, चौथी अंजना, पांचवीं रिष्टा, छठी मघा और सातवीं माघवती। इनके गोत्र क्रमशः इस प्रकार कहे गये हैं - तीसरी पृथ्वी का गोत्र बालुकाप्रभा, चौथी पृथ्वी का पंकप्रभा, पांचवीं पृथ्वी का धूमप्रभा, छठी पृथ्वी का तमः प्रभा और सातवीं पृथ्वी का गोत्र तमस्तमःप्रभा है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सात पृथ्वियों के नाम और गोत्र कहे गये हैं।

शंका - नाम और गोत्र में क्या अंतर है?

समाधान - नाम में उसके अनुरूप गुण होना आवश्यक नहीं है जबकि गोत्र गुण प्रधान होता है तथा नाम अनादिकाल सिद्ध होता है और अन्वर्थ रहित होता है। नाम की अपेक्षा गोत्र की प्रधानता है।

किन्हीं किन्हीं प्रतियों में इन सात पृथ्वियों के नाम और गोत्र को बतलाने वाली दो संग्रहणी गाथाएं इस प्रकार दी गई हैं -

घम्मा वंसा सेला अंजण रिट्ठा मघा या माघवती
सत्तण्हं पुढवीणं एए नामा उ नायव्वा॥ १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रयणा सक्कर वालुयं पंका धूमा तमा य तमतमा।

सत्तण्हं पुढवीणं एए गोत्ता मुणेयव्वा॥ २॥

प्रश्न - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि नाम किस कारण से दिये गये हैं?

उत्तर - पहली नरक पृथ्वी में रत्नकाण्ड है जिससे वहां रत्नों की प्रभा पड़ती है इसलिये उसे रत्नप्रभा कहते हैं। दूसरी नरक में शर्करा अर्थात् तीखे पत्थरों के टुकड़ों की अधिकता है इसलिये उसे शर्कराप्रभा कहते हैं। तीसरी पृथ्वी में बालुका अर्थात् बालू रेत अधिक है। वह भडभुंजा की भाड से अनन्तगुणा अधिक तपती है, इसलिये उसे बालुकाप्रभा कहते हैं। चौथी पृथ्वी में रक्त मांस के कीचड की अधिकता है इसलिये उसे पंकप्रभा कहते हैं। पांचवीं पृथ्वी में धूम (धूंआ) अधिक है। वह सोमिल खार से भी अनन्तगुणा अधिक खारा है इसलिये उसे धूमप्रभा कहते हैं। छठी नारकी में तमः (अंधकार) की अधिकता है इसलिये उसे तमःप्रभा कहते हैं। सातवीं पृथ्वी में महा तमस् अर्थात् गाढ़ अंधकार है इसलिये उसे महातमः प्रभा कहते हैं। इसको तमस्तमःप्रभा भी कहते हैं जिसका अर्थ है जहां घोर अंधकार ही अंधकार है।

यहां पर सातों पृथ्वियों के गोत्रों के साथ आये हुए 'प्रभा' शब्द का अर्थ 'बाहुल्य' समझना चाहिये। जैसे कि जहां रत्नों की बहुलता हो वह रत्नप्रभा है। इसी प्रकार शेष पृथ्वियों के विषय में भी समझना चाहिये।

नरक पृथ्वियों का बाहल्य

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी केवइया बाहल्लेणं पण्णत्ता।

गोयमा! इमा णं रयणप्पभा पुढवी असिउत्तरं जोयणसयसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ता, एवं एएणं अभिलावेणं इमा गाहा अणुगंतव्वा -

असीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च।

अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हिट्ठिमिया॥ १॥ ६८॥

कठिन शब्दार्थ - बाहल्लेणं - बाहल्य (मोटाई), **अभिलावेणं** - अभिलाप से, **अणुगंतव्वा** - अनुसरण करना (जानना) चाहिये।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कितने बाहल्य वाली कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। इसी प्रकार शेष पृथ्वियों की मोटाई (बाहल्य) इस गाथा से जानना चाहिये - प्रथम पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है। दूसरी की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन की है। तीसरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन की है। चौथी की मोटाई एक लाख बीस हजार योजन की है। पांचवीं की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन की है और सातवीं की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नरक पृथ्वियों का बाहल्य कहा गया है जो इस प्रकार है - रत्नप्रभा पृथ्वी का बाहल्य (मोटाई) १ लाख ८० हजार योजन, शर्कराप्रभा का बाहल्य १ लाख ३२ हजार योजन, बालुकाप्रभा का बाहल्य १ लाख २८ हजार, पंकप्रभा का बाहल्य १ लाख २० हजार, धूमप्रभा का बाहल्य १ लाख १८ हजार, तमःप्रभा का बाहल्य १ लाख १६ हजार और तमस्तमःप्रभा का बाहल्य १ लाख ८ हजार योजन का है।

रत्नप्रभा पृथ्वी के भेद-प्रभेद

इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - खरकंडे पंकबहुले कंडे आवबहुले कंडे।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए खरकंडे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! सोलसविहे पण्णत्ते तं जहा - १ रयणकंडे, २ वइरे, ३ वेरुलिए, ४ लोहियक्खे, ५ मसारगल्ले, ६ हंसगब्भे, ७ पुलए, ८ सोगंधिए, ९ जोइरसे, १० अंजणे, ११ अंजणपुलए, १२ रयए, १३ जायरूवे, १४ अंके, १५ फलिहे, १६ रिट्ठे कंडे॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी तीन प्रकार की कही गई है वह इस प्रकार हैं - १. खरकाण्ड २. पंकबहुल काण्ड और ३. अप्बहुलकांड।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड सोलह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार हैं - १. रत्नकाण्ड २. वज्रकाण्ड ३. वैडूर्य ४. लोहिताक्ष ५. मसारगल्ल ६. हंसगर्भ ७. पुलक ८. सौगंधिक ९. ज्योतिरस १०. अंजन ११. अंजनपुलक १२. रजत १३. जातरूप १४. अंक १५. स्फटिक और १६. रिष्टकांड।

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन प्रकार (विभाग) हैं - १. खरकांड २. पंकबहुल काण्ड ३. अप्बहुल (जल की अधिकता वाला) कांड। काण्ड का अर्थ है - विशिष्ट भू भाग। खर का अर्थ है कठोर (कठिन)। रत्नप्रभा पृथ्वी के खर काण्ड के सोलह विभाग हैं - १. रत्नकाण्ड २. वज्रकाण्ड

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. वैडूर्यकाण्ड ४. लोहिताक्ष काण्ड ५. मसारगल्लकाण्ड ६. हंसगर्भ काण्ड ७. पुलक काण्ड ८. सौगंधिक काण्ड ९. ज्योतिरस काण्ड १०. अंजनकाण्ड ११. अंजनपुलक काण्ड १२. रजतकाण्ड १३. जातरूप काण्ड १४. अङ्क काण्ड १५. स्फटिक काण्ड १६. रिष्ट रत्न काण्ड। सोलह रत्नों के नाम के अनुसार रत्नप्रभा के खरकाण्ड के सोलह विभाग हैं। जिस काण्ड में जिस वस्तु की प्रधानता है उसी नाम से काण्ड का भी वही नाम है। प्रत्येक काण्ड की मोटाई एक हजार योजन है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए रयणकंडे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! एगागारे पण्णत्ते। एवं जाव रिट्ठे।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए पंकबहुले कंडे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! एगागारे पण्णत्ते। एवं आवबहुले कंडे कइविहे पण्णत्ते? गोयमा! एगागारे पण्णत्ते।

शर्कराप्रभा आदि के भेद

सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवी कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! एगागारा पण्णत्ता। एवं जाव अहेसत्तमा॥ ६९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्नकाण्ड कितने प्रकार का है?

उत्तर - हे गौतम! एक ही प्रकार का है। इसी प्रकार रिष्टकाण्ड तक एक एक भेद कहना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पंकबहुल काण्ड कितने प्रकार का है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी का पंकबहुल काण्ड एक ही प्रकार का कहा गया है।

प्रश्न - इसी तरह अप्‌बहुल काण्ड कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अप्‌बहुल काण्ड एकाकार है।

प्रश्न - हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी कितने प्रकार की है?

उत्तर - हे गौतम! शर्कराप्रभा पृथ्वी एक ही प्रकार की है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक एकाकार कहना चाहिये।

विवेचन - रत्नकाण्ड से लगाकर रिष्टकाण्ड तक सब एक ही प्रकार के हैं इनके विभाग नहीं हैं। दूसरा काण्ड पंकबहुल है इसमें कीचड़ की अधिकता है और इसका विभाग न होने से यह एक प्रकार का ही है। यह दूसरा काण्ड ८४ हजार योजन की मोटाई वाला है। तीसरे अप्‌बहुल काण्ड में जल की प्रचुरता है और इसका भी कोई विभाग नहीं है, एक ही प्रकार का है। यह ८० हजार योजन की मोटाई वाला है। इस प्रकार रत्नप्रभा के तीनों काण्डों को मिलाने से रत्नप्रभा की कुल मोटाई १६+८४+८०= एक लाख अस्सी हजार योजन की हो जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नकाण्ड आदि रत्न निर्मित होते हुए भी नैरयिक स्थानों में रत्नों की प्रभा नहीं होने से नैरयिक स्थानों (नरकावासों व कुम्भियों) को '**णिच्चंधयारतमसा**' बताया गया है जहां नैरयिक है वहां उनकी प्रभा नहीं है किन्तु जहां भवनपति हैं वहां उन रत्नों की प्रभा है। क्योंकि सभी जगह रत्न समान नहीं है किन्तु जैसे हीरे व कोयले दोनों पृथ्वीकाय होते हुए भी समान नहीं है वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिये।

पंकबहुल काण्ड - ईंट की चूरी का पंक=कीचड़ जैसा क्षेत्र दिखाई देता है।

अप्बहुल काण्ड - बहुत पानी जैसे पुद्गलों की अधिकता होती है।

रत्नकाण्ड के १६ भेदों में 'जातरूप (स्वर्ण)' और 'रजत (चांदी)' को भी रत्नों के नामों में बताया है।

दूसरी नरक पृथ्वी शर्कराप्रभा से लेकर अधःसप्तम नरक पृथ्वी तक के कोई विभाग नहीं है। सब एक ही प्रकार की है।

नरकावासों की संख्या

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए केवइया णिरयावास सयसहस्सा पण्णत्ता?

गोयमा! तीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं एएणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, इमा गाहा अणुगंतव्वा -

तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दसेव तिण्णि य हवंति।
पंचूणसयसहस्सं पंचेव अणुत्तरा णरगा॥ १॥

जाव अहेसत्तमाए पंच अणुत्तरा महइमहालया महाणरगा पण्णत्ता तं जहा - काले महाकाले रोरुए महारोरुए अपइट्ठाणे॥ ७०॥

कठिन शब्दार्थ - णिरयावास - नरकावास, **सयसहस्सा** - लाख, **अणुत्तरा** - अनुत्तर, **महइमहालया** - बहुत बड़े।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितने लाख नरकावास कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में तीस लाख नरकावास कहे गये हैं। इस गाथा के अनुसार सातों नरकों में नरकावासों की संख्या समझनी चाहिये -

प्रथम पृथ्वी में तीस लाख, दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पन्द्रह लाख, चौथी में दस लाख, पांचवीं में तीन लाख, छठी में पांच कम एक लाख और सातवीं में पांच अनुत्तर महानरकावास हैं।

अधःसप्तम पृथ्वी में जो पांच बहुत बड़े अनुत्तर महानरकावास कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. काल २. महाकाल ३. रौरव ४. महारौरव और ५. अप्रतिष्ठान।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सातों नरक पृथ्वियों में नरकावासों की संख्या इस प्रकार समझनी चाहिये -

नरक के एक परदे के बाद जो स्थान होता है उसी तरह के स्थानों को प्रतर अथवा प्रस्तट (पाथड़ा) कहते हैं। पहली नरक से लेकर छठी नरक तक प्रत्येक नरक के दो प्रकार के नरकावास हैं - १. आवलिका प्रविष्ट और २. आवलिका बाह्य (प्रकीर्णक)। जो नरकावास चारों दिशाओं में पंक्ति रूप से अवस्थित हैं वे आवलिका प्रविष्ट कहे जाते हैं। जो नरकावास पंक्ति रूप से अवस्थित नहीं है किंतु इधर उधर बिखरे हुए हैं वे प्रकीर्णक कहे जाते हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी में तेरह प्रतर हैं। पहले प्रतर के चारों तरफ प्रत्येक दिशा में उनपचास-उनपचास (४९-४९) नरकावास हैं और प्रत्येक विदिशा में अड़तालीस-अड़तालीस (४८-४८) नरकावास हैं बीच में सीमन्तक नाम का नरकेन्द्रक है। सब मिलाकर पहले प्रतर में तीन सौ नवासी (३८९) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। दूसरे प्रतर में प्रत्येक दिशा में अड़तालीस-अड़तालीस (४८-४८) और विदिशा में सैंतालीस-सैंतालीस (४७-४७) नरकावास हैं अर्थात् पहले प्रतर से आठ कम हैं। इसी तरह सभी प्रतरों में दिशाओं में और विदिशाओं में एक एक कम होने से पूर्व प्रतर से आठ आठ कम होते जाते हैं। कुल मिला कर तेरह प्रतरों में चार हजार चार सौ तेतीस (४४३३) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। बाकी उनतीस लाख पचानवें हजार पांच सौ सड़सठ (२९९५५६७) प्रकीर्णक नरकावास हैं। कुल मिला कर पहली नरक में तीस लाख नरकावास हैं।

दूसरी नरक में ११ प्रतर हैं। इसी तरह नीचे की नरकों में भी दो-दो कम समझ लेना चाहिये। दूसरी नरक के पहले प्रतर में प्रत्येक दिशा में छत्तीस-छत्तीस (३६-३६) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं और प्रत्येक विदिशा में ३५-३५, बीच में एक नरकेन्द्रक है। सब मिला कर दो सौ पचासी (२८५) नरकावास हैं। दिशा और विदिशाओं में एक एक की कमी के कारण बाकी दश प्रतरों में क्रमशः आठ घटते जाते हैं। ग्यारह ही प्रतरों में कुल मिला कर दो हजार छह सौ पचाणवें (२६९५) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। शेष चौबीस लाख सत्तानवें हजार तीन सौ पांच (२४९७३०५) प्रकीर्णक नरकावास हैं। इस तरह दूसरी नरक में कुल मिला कर पच्चीस लाख नरकावास हैं।

तीसरी नरक में नौ प्रतर हैं। पहले प्रतर की प्रत्येक दिशा में पच्चीस पच्चीस (२५-२५) और विदिशा में चौबीस चौबीस (२४-२४) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं बीच में एक नरकेन्द्रक है। कुल मिला कर एक सौ सत्तानवे (१९७) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। शेष आठ प्रतरों में क्रमशः आठ आठ कम होते जाते हैं। सभी प्रतरों में कुल मिला कर एक हजार चार सौ पचासी आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। शेष चौदह लाख अठानवें हजार पांच सौ पन्द्रह (१४९८५१५) प्रकीर्णक नरकावास हैं। कुल मिला कर तीसरी नरक में पन्द्रह लाख नरकावास हैं।

चौथी नरक में सात प्रतर हैं। पहले प्रतर में प्रत्येक दिशा में सोलह-सोलह (१६-१६) तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक विदिशा में पन्द्रह-पन्द्रह (१५-१५) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। बीच में एक नरकेन्द्रक है। कुल मिला कर १२५ होते हैं। शेष छह प्रतरों में पहली नरक की तरह आठ आठ कम होते जाते हैं। कुल मिला कर सात सौ सात (७०७) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। शेष नौ लाख निन्यानवें हजार दो सौ तिरानवें (९९९२९३) प्रकीर्णक नरकावास हैं। कुल मिला कर चौथी नरक में दस लाख नरकावास हैं।

पांचवीं नरक में ५ प्रतर हैं। पहले प्रतर की प्रत्येक दिशा में नौ नौ और प्रत्येक विदिशा में आठ आठ नरकावास हैं। बीच में एक नरकेन्द्रक है। कुल मिला कर ६८ होते हैं शेष चार प्रतरों में आठ आठ कम होते जाते हैं कुल मिला कर दो सौ पैंसठ (२६५) आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। शेष दो लाख निन्यानवें हजार दो सौ पैंतीस प्रकीर्णक नरकावास हैं। कुल मिला कर पांचवीं पृथ्वी में तीन लाख नरकावास हैं।

छठी नरक में तीन प्रतर हैं। पहले प्रतर की प्रत्येक दिशा में चार चार और प्रत्येक विदिशा में तीन तीन नरकावास हैं। बीच में एक नरकेन्द्रक है। कुल २९ होते हैं। शेष में आठ आठ कम है। तीनों प्रतरों में तरेसठ आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं शेष निन्यानवें हजार नौ सौ बत्तीस प्रकीर्णक नरकावास हैं। कुल मिला कर पांच कम एक लाख नरकावास हैं।

सातवीं में एक प्रतर है, आंतरा नहीं है और उस एक प्रतर में पांच ही नरकावास है जिनके नाम इस प्रकार है - १. पूर्व दिशा में काल २. पश्चिम दिशा में महाकाल ३. दक्षिण दिशा में रौरव ४. उत्तर दिशा में महारौरव और ५. इन चारों के बीच में अप्रतिष्ठान नरकावास है। ये पांचों ही आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं। यहाँ पुष्पावकीर्ण नरकावास तो एक भी नहीं है।

इस प्रकार कुल मिला कर सातों नरकों में चौरासी लाख नरकावास हैं।

अत्थि णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे घणोदहीइ वा घणवाएइ वा तणुवाएइ वा ओवासंतरेइ वा?

हंता अत्थि, एवं जाव अहेसत्तमाए॥ ७१॥

कठिन शब्दार्थ - घणोदहीइ - घनोदधि-जमा हुआ जल, ठोस बर्फ जैसा, **घणवाएइ** - घनवात-घनीभूत (पिण्डीभूत) ठोस वायु जैसे नाइट्रोजन, **तणुवाएइ** - तनुवात-हल्की वायु जैसे हाइड्रोजन आदि, **ओवासंतरेइ** - शुद्ध आकाश।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे क्या घनोदधि है, घनवात है, तनुवात है अथवा शुद्ध आकाश है?

उत्तर - हाँ गौतम! है। इसी प्रकार सातों पृथ्वियों के नीचे घनोदधि, घनवात, तनुवात और शुद्ध आकाश है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - ये सातों नरक पृथ्वियाँ किसके आधार पर स्थित है? इस शंका का समाधान करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं कि आकाश के आधार पर तनुवात, तनुवात के आधार पर घनवात और घनवात पर घनोदधि तथा घनोदधि पर ये रत्नप्रभा आदि पृथ्वियाँ स्थित हैं। तत्त्वार्थ सूत्र अ० ३ में भी कहा है -

'रत्नशर्कराबालुका पंकधूमतमोमहातमः प्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोधः पृथुत्तराः'

ये सातों नरकपृथ्वियाँ एक दूसरे के नीचे हैं परन्तु बिल्कुल सटी हुई नहीं है। इनके बीच में बहुत अन्तर है। इस अन्तर में घनोदधि, घनवात, तनुवात और शुद्ध आकाश नीचे-नीचे हैं। प्रथम नरक पृथ्वी के नीचे २० हजार योजन का घनोदधि है, इसके नीचे असंख्यात हजार योजन का घनवात है, इसके नीचे असंख्यात हजार योजन का तनुवात है इसके नीचे असंख्यात हजार योजन का आकाश है। आकाश के बाद दूसरी नरक पृथ्वी है। दूसरी नरक पृथ्वी और तीसरी नरक पृथ्वी के बीच में भी इसी प्रकार क्रमशः घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश है। इसी तरह सातवीं नरक पृथ्वी तक समझना चाहिये।

शंका-तनुवात के आधार पर घनवात और घनवात के आधार पर घनोदधि कैसे ठहर सकती है?

समाधान - इस शंका के समाधान में दो उदाहरण इस प्रकार समझने चाहिये - १. कोई व्यक्ति मशक (वस्ती) को हवा से फुला दे। फिर उसके मुंह को फीते (डोरी) से मजबूत गांठ दे कर बांध दे तथा उस मशक के बीच के भाग को भी बांध दे। ऐसा करने से मशक में भरी हुई हवा के दो भाग हो जाएंगे अब उस मशक के ऊपरी भाग का मुंह खोल कर हवा निकाल दे और उसके स्थान पर पानी भर कर फिर उस मशक का मुंह बांध दे और बीच का बन्धन खोल दे। तब ऐसा होगा कि जो पानी उस मशक के ऊपरी भाग में है वह ऊपर के भाग में ही रहेगा अर्थात् नीचे भरी हुई वायु के ऊपर ही वह पानी रहेगा, नीचे नहीं जा सकता। जैसे वह पानी नीचे भरी वायु के आधार पर ऊपर ही टिका रहता है उसी प्रकार घनवात के ऊपर घनोदधि रह सकता है।

२. जैसे कोई व्यक्ति हवा से भरे हुए डिब्बे या मशक को कमर पर बांध कर अथाह जल में प्रवेश करे तो वह जल के ऊपरी सतह पर ही रहेगा, नीचे नहीं डूबेगा। वह जल के आधार पर स्थित रहेगा उसी प्रकार घनोदधि पर पृथ्वियां टिकी रह सकती है।

रत्नादि कांडों की मोटाई

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! सोलस जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! एक्कं जोयणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठे।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए पंकबहुले कंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! चउरासीइ जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए आवबहुले कंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! असीइजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदही केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणवाए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं तणुवाएऽवि ओवासंतरेऽवि।

भावार्थ-प्रश्न- हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड कितनी मोटाई वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड सोलह हजार योजन की मोटाई वाला कहा गया है। इसी प्रकार रिष्ट काण्ड तक की मोटाई समझनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पंकबहुल काण्ड कितनी मोटाई वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पंकबहुल काण्ड चौरासी हजार योजन की मोटाई वाला कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का अप्‌बहुल कांड कितनी मोटाई वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का अप्‌बहुल कांड अस्सी हजार योजन की मोटाई वाला कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनोदधि कितनी मोटाई वाला कहा गया है?

उत्तर-हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनोदधि बीस हजार योजन की मोटाई वाला कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवात कितनी मोटाई वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवात असंख्यात हजार योजन की मोटाई वाला कहा गया है। इसी प्रकार तनुवात और आकाश भी असंख्यात हजार योजन की मोटाई वाले कहे गये हैं।

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड सोलह हजार योजन का मोटा है। इसी के सोलह विभाग रूप रत्नकाण्ड आदि एक एक हजार योजन की मोटाई वाले हैं। रत्नप्रभा का पंकबहुल नाम का दूसरा काण्ड चौरासी हजार योजन मोटा है। तीसरा अप्‌बहुल काण्ड अस्सी हजार योजन मोटा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नप्रभा के नीचे घनोदधि की मोटाई बीस हजार योजन की है। घनवात की मोटाई असंख्यात हजार योजन है। तनुवात और आकाश भी असंख्यात हजार योजन की मोटाई वाले हैं।

सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए घणोदही केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

सक्करप्पभाए णं पुढवीए घणवाए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवं तणुवाए वि, ओवासंतरे वि। जहा सक्करप्पभाए पुढवीए एवं जाव अहेसत्तमाए॥ ७२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी का घनोदधि कितनी मोटाई वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! शर्कराप्रभा पृथ्वी का घनोदधि बीस हजार योजन की मोटाई वाला कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी का घनवात कितनी मोटाई वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! शर्कराप्रभा पृथ्वी का घनवात असंख्यात हजार योजन की मोटाई वाला है। इसी प्रकार तनुवात और आकाश की मोटाई कह देनी चाहिये। जिस प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी के विषय में कहा गया है उसी प्रकार यावत् सातवीं पृथ्वी तक समझना चाहिये।

विवेचन - दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नीचे भी घनोदधि बीस हजार योजन तथा घनवात, तनुवात और आकाश असंख्यात हजार योजन की मोटाई वाले हैं। इसी तरह सातवीं नरक तक समझ लेना चाहिये। सभी पृथ्वियों के घनोदधि आदि की मोटाई समान है।

रत्नप्रभा आदि में द्रव्यों की सत्ता

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्स बाहल्लाए खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णओ कालणीललोहियहालिद्दसुक्किल्लाइं गंधओ सुरभिगंधाइं दुब्भिगंधाइं रसओ तित्तकडुयकसायअंबिलमहुराइं फासओ कक्खडमउयगरुयलहुसीयउसिण-णिद्धलुक्खाइं संठाणओ परिमंडल वट्ट-तंस-चउरंस-आयय-संठाणपरिणयाइं अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णओगाढाइं अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?

हंता अत्थि।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडस्स सोलस जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ काल जाव परिणयाइं? हंता अत्थि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए रयणणामगस्स कंडस्स जोयण-सहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स तं चेव जाव हंता अत्थि, एवं जाव रिट्ठस्स। इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए पंकबहुलस्स कंडस्स चउरासीइ जोयण सहस्स बाहल्लस्स खेत्तेच्छेएणं छिज्जमाणस्स तं चेव, एवं आवबहुलस्स वि असीइ जोयणसहस्स बाहल्लस्स।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदहिस्स वीसं जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं तहेव। एवं घणवायस्स असंखेज्ज जोयणसहस्सबाहल्लस्स तहेव, ओवासंतरस्स वि तं चेव।

कठिन शब्दार्थ - खेत्तच्छेएणं - क्षेत्रच्छेदेन-बुद्धि से प्रत्तरकाण्ड आदि रूप में, **छिज्जमाणीए** - छिद्यमानायाम्-विभक्त, **अण्णमण्णबद्धाइं** - अन्योन्य बद्ध-एक दूसरे से सम्बन्धित, **अण्णमण्णपुट्ठाइं**- अन्योन्य स्पृष्ट-एक दूसरे को स्पर्श किये हुए-छुए हुए, **अण्णमण्णोगाढाइं** - एक दूसरे में अवगाढ़-जहां एक द्रव्य रहा है वहीं देश या सर्व से दूसरे द्रव्य भी रहे हुए हैं, **अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धाई** - स्नेह गुण के कारण परस्पर मिले हुए, **अण्णमण्णघडत्ताए** - एक दूसरे से सम्बद्ध-क्षीर नीर की तरह एक दूसरे में प्रगाढ़ रूप से मिले हुए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई वाली और प्रतर काण्ड आदि रूप में बुद्धि द्वारा विभक्त इस रत्नप्रभा पृथ्वी में वर्ण से काले-नीले-लाल-पीले और सफेद, गंध से सुरभिगंध वाले और दुर्गंध वाले, रस से तीखे, कड़ुए, कषायलै, खट्टे, मीठे तथा स्पर्श से कठोर, कोमल, भारी, हल्के, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष, संस्थान से परिमण्डल, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत रूप में परिणत द्रव्य क्या एक दूसरे से बंधे हुए, एक दूसरे से स्पृष्ट-छुए हुए, एक दूसरे में अवगाढ़, एक दूसरे से स्नेह द्वारा प्रतिबद्ध और एक दूसरे से सम्बद्ध हैं?

उत्तर - हाँ, गौतम! हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सोलह हजार योजन की मोटाई वाले और बुद्धि द्वारा प्रतर आदि रूप में विभक्त खरकांड में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान रूप में परिणत द्रव्य यावत् एक दूसरे से सम्बद्ध हैं क्या?

उत्तर - हाँ, गौतम! हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन की मोटाई वाले और बुद्धि द्वारा प्रतर आदि रूप में विभक्त रत्न नामक काण्ड में पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट द्रव्य हैं क्या?

उत्तर - हाँ, गौतम! हैं। इसी प्रकार यावत् रिष्ट काण्ड तक कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पंकबहुल काण्ड में जो चौरासी हजार योजन की मोटाई वाला और बुद्धि द्वारा प्रतर आदि रूप में विभक्त है उसमें पूर्वोक्त विशेषणों वाले द्रव्य हैं क्या?

उत्तर - हाँ, गौतम! हैं। इसी प्रकार अस्सी हजार योजन की मोटाई वाले अप्बहुल काण्ड में पूर्वोक्त विशेषण वाले द्रव्यादि हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बीस हजार योजन की मोटाई वाले और बुद्धि से विभक्त घनोदधि में पूर्वोक्त विशेषण वाले द्रव्य हैं?

उत्तर - हाँ, गौतम! हैं। इसी प्रकार असंख्यात हजार योजन की मोटाई वाले घनवात और तनुवात में तथा आकाश में भी पूर्व विशिष्ट द्रव्यादि हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में रत्नप्रभा पृथ्वी में द्रव्यों की सत्ता का कथन किया गया है। रत्नप्रभा पृथ्वी के खरकाण्ड, रत्नकांड से लेकर रिष्ट काण्ड तक, पंकबहुल काण्ड, अप्बहुल काण्ड, घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश में सब जगह वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा विविध पर्यायों से परिणत द्रव्यों का सद्भाव बताया गया है। ये द्रव्य एक दूसरे से बंधे हुए, एक दूसरे को स्पर्श किये हुए, एक दूसरे में अवगाढ़ (जहां एक द्रव्य रहा है वहीं देश या सर्व से दूसरे भी द्रव्य रहे हुए हैं), स्नेह गुण के कारण परस्पर मिले हुए और क्षीर नीर की तरह एक दूसरे से प्रगाढ रूप से मिले हुए रहते हैं।

सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए बत्तीसुत्तर जोयणसयसहस्स बाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थिदव्वाइं वण्णओ जाव घडत्ताए चिट्ठंति?

हंता अत्थि, एवं घणोदहिस्स वीसजोयणसहस्स बाहल्लस्स घणवायस्स असंखेज्ज जोयणसहस्स बाहल्लस्स एवं जाव ओवासंतरस्स, जहा सक्करप्पभाए एवं जाव अहेसत्तमाए।। ७३ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटाई वाली और बुद्धि द्वारा प्रतर आदि रूप में विभक्त शर्कराप्रभा पृथ्वी में पूर्व विशेषणों से युक्त द्रव्य यावत् परस्पर सम्बद्ध हैं क्या?

उत्तर - हाँ गौतम! हैं। इसी तरह बीस हजार योजन की मोटाई वाले घनोदधि, असंख्यात हजार योजन की मोटाई वाले घनवात और आकाश के विषय में भी समझना चाहिये। शर्कराप्रभा की तरह ही यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिये।

विवेचन - शर्कराप्रभा पृथ्वी में, उसके घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश में सब जगह वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा विविध पर्यायों से परिणत द्रव्यों का सद्भाव बताया गया है। शर्कराप्रभा पृथ्वी की तरह सातों पृथ्वियों की वक्तव्यता समझनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरकों का संस्थान

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं संठिया पण्णत्ता?

गोयमा! झल्लरिसंठिया पण्णत्ता।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! झल्लरि संठिए पण्णत्ते।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! झल्लरि संठिए पण्णत्ते। एवं जाव रिट्ठे। एवं पंकबहुले वि एवं आवबहुले वि घणोदहि वि घणवाए वि तणुवाए वि ओवासंतरे वि सव्वे झल्लरि संठिया पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - झल्लरि संठिया - झालर के आकार का।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का कैसा आकार कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी झालर के आकार की अर्थात् विस्तृत वलयाकार है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के खरकाण्ड का आकार कैसा है?

उत्तर - हे गौतम! खरकाण्ड झालर के आकार का है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के रत्नकाण्ड का कैसा आकार है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नकाण्ड झालर के आकार का है। इसी प्रकार रिष्ट काण्ड तक कह देना चाहिये। इसी प्रकार पंकबहुल काण्ड, अप्बहुल काण्ड, घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश सभी झालर के आकार के कहे गये हैं।

सक्करप्पभा णं भंते! पुढवी किं संठिया पण्णत्ता?

गोयमा! झल्लरि संठिया पण्णत्ता।

सक्करप्पभा ए णं भंते! पुढवीए घणोदही किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! झल्लरि संठिए पण्णत्ते, एवं जाव ओवासंतरे जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया एवं जाव अहेसत्तमाए वि॥ ७४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी का आकार कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! शर्कराप्रभा पृथ्वी का आकार झालर जैसा कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी के घनोदधि का आकार कैसा है?

उत्तर - हे गौतम! शर्कराप्रभा पृथ्वी के घनोदधि का आकार झालर जैसा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार आकाशान्तर तक कह देना चाहिये। शर्कराप्रभा पृथ्वी की तरह ही शेष पृथ्वियों यावत् सातवीं पृथ्वी तक की वक्तव्यता समझनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सातों नरक पृथ्वियों का संस्थान कहा गया है। सातों नरक पृथ्वियां झल्लरी-झालर के जैसे गोलाकार संस्थान वाली कही गई है क्योंकि ये विस्तीर्ण वलय के आकार वाली है। सातों नरक पृथ्वियों के नीचे सर्वत्र २० हजार योजन की जाड़ाई वाली घनोदधि आई हुई है तथा उन पृथ्वियों के चारों तरफ घनोदधि से संलग्न चार योजन आदि की जाड़ाई वाले घनोदधि आदि वलय आये हुए होने से इन वलयों को भिन्न माना गया है।

तनुवात की अपेक्षा आकाशान्तर की हवा पतली है अथवा तो स्वभाव से भी आकाशान्तर में कुछ अन्तर होने के कारण तनुवात से आकाशान्तर को अलग बताया गया है। आकाशान्तर शुषिर (पोलारवाला) है। लोक में सभी शुषिर स्थानों में वायुकाय तो होती ही है क्योंकि प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे पद में लोक के बहुत असंख्याता भागों में वायुकाय का स्व स्थान बताया गया है अतः आकाशान्तर में भी तथाप्रकार की वायु तो होती ही है।

सातों पृथ्वियों की अलोक से दूरी

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवइयं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते?

गोयमा! दुवालसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते एवं दाहिणिल्लाओ पच्चत्थिमिल्लाओ उत्तरिल्लाओ।

सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवइयं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते?

गोयमा! तिभागूणेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते एवं चउद्दिसिं पि।

वालुयप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ पुच्छा।

गोयमा! सतिभागेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते एवं चउद्दिसिं पि, एवं सव्वासिं चउसु वि दिसासु पुच्छियव्वं।

पंकप्पभापुढवीए चोद्दसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते। पंचमाए तिभागूणेहिं पण्णरसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते। छट्ठीए सत्तिभागेहिं पण्णरसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते। सत्तमीए सोलसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयंते पण्णत्ते, एवं जाव उत्तरिल्लाओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - चरिमंताओ - चरमान्त-अंतिम भाग से, **अबाहाए** - अबाधा-अपान्तराल रूप **लोयंते** - लोकान्त-लोक का अन्त।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा के चरमांत से कितने अपान्तराल (दूरी) के बाद लोकान्त कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बारह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा के, पश्चिम दिशा के और उत्तर दिशा के चरमांत से बारह योजन अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा के चरमांत से कितने अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! तीन भाग कम तेरह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है। इसी प्रकार चारों दिशाओं के विषय में कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! बालुकाप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा के चरमांत से कितने अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! तीन भाग सहित तेरह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है। इस प्रकार चारों दिशाओं को लेकर कहना चाहिये। इसी प्रकार सब नरक पृथ्वियों की चारों दिशाओं को लेकर प्रश्न करना चाहिये।

पंकप्रभा पृथ्वी में चौदह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त हैं। पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी में तीन भाग कम पन्द्रह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त है। छठी तमप्रभा पृथ्वी में तीन भाग सहित पन्द्रह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त है। सातवीं पृथ्वी में सोलह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है। इसी प्रकार उत्तर दिशा के चरमान्त तक समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नरक पृथ्वियों के चरमान्त से अलोक की दूरी बताई गई है। रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा के चरमान्त से अलोक बारह योजन की दूरी पर है इसका तात्पर्य यह है कि रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा वाले चरमान्त और अलोक के बीच में बारह योजन का अपान्तराल है। पूर्व दिशा की तरह रत्नप्रभा पृथ्वी के शेष तीन दिशाओं और चारों विदिशाओं के चरमांत से भी अलोक बारह योजन दूर है।

शर्कराप्रभा पृथ्वी की सब दिशा विदिशाओं में पूर्व आदि के चरम पर्यंत भाग से लोकान्त का अपान्तराल तीन भाग न्यून तेरह योजन का अर्थात् एक योजन के तीन भाग किये जावे, उन तीन भागों में जो तीसरा भाग है उसे कम करके तेरह योजन का यानी बारह योजन के ऊपर योजन के दो भाग बढ़ कर शर्करा पृथ्वी में लोकान्त का अपान्तराल योजन के दो भाग सहित बारह योजन ($१२\frac{२}{३}$) योजन का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है। बालुकाप्रभा के सब दिशा विदिशाओं के चरमान्त से अलोक तीन भाग सहित तेरह योजन की दूरी पर है। पंकप्रभा और अलोक के बीच १४ योजन का, धूमप्रभा और अलोक के बीच १५ योजन का, तमःप्रभा और अलोक के बीच तीन भाग सहित पन्द्रह योजन का तथा अधःसप्तम पृथ्वी और अलोक के बीच सोलह (१६) योजन का अपान्तराल है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा - घणोदहि वलए घणवाय वलए तणुवाय वलए।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए दाहिणिल्ले चरिमंते कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा - एवं जाव उत्तरिल्ले, एवं सव्वासिं जाव अहेसत्तमाए उत्तरिल्ले॥ ७५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा का चरमान्त कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा का चरमान्त तीन प्रकार का कहा गया है वह इस प्रकार है - घनोदधि वलय, घनवात वलय और तनुवात वलय।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के दक्षिण दिशा का चरमान्त कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के दक्षिण दिशा का चरमान्त तीन प्रकार का कहा गया है। यथा - घनोदधि वलय, घनवात वलय और तनुवात वलय। इसी प्रकार उत्तरदिशा के चरमान्त तक कहना चाहिये। इसी प्रकार सातवीं पृथ्वी तक की सब पृथ्वियों के उत्तरी चरमान्त तक सब दिशाओं के चरमान्तों के भेद कह देने चाहिये।

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा वाले चरमान्त और अलोक के बीच में जो अपान्तराल है वह घनोदधि, घनवात और तनुवात से व्याप्त है और ये घनोदधि आदि वलयाकार होने से घनोदधि वलय, घनवात वलय और तनुवात वलय कहे जाते हैं। रत्नप्रभा की तरह ही सभी नरक पृथ्वियों के चरमान्त के चारों दिशाओं में इसी प्रकार तीन-तीन विभाग हैं। अब इन वलयों की मोटाई बताने के लिये सूत्रकार कहते हैं -

घनोदधि आदि वलयों की मोटाई

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदहि वलए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! छ जोयणाणि बाहल्लेणं पण्णत्ते।

सक्करप्पभाए पुढवीए घणोदहि वलए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सतिभागाइं छ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

वालुयप्पभाए पुच्छा, गोयमा! तिभागूणाइं सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवं एएणं अभिलावेणं पंकप्पभाए सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। धूमप्पभाए सत्तिभागाइं सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। तमप्पभाए तिभागूणाइं अट्ठ जोयणाइं। तमतमप्पभाए अट्ठ जोयणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनोदधि वलय कितने बाहल्य का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय की मोटाई छह योजन की है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस शर्कराप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय की कितनी मोटाई है?

उत्तर - हे गौतम! शर्कराप्रभा पृथ्वी का घनोदधि वलय तीन भाग सहित छह योजन मोटा है।

वालुकाप्रभा की पृच्छा-हे गौतम! तीन भाग न्यून सात योजन का बाहल्य कहा गया है। इसी अभिलाप से पंकप्रभा का घनोदधि वलय सात योजन का, धूमप्रभा का तीन भाग सहित सात योजन का, तम:प्रभा का तीन भाग न्यून आठ योजन का और तमस्तम:प्रभा का बाहल्य आठ योजन का है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणवायवलए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! अद्धपंचमाइं जोयणाइं बाहल्लेणं।

सक्करप्पभाए पुच्छा,

गोयमा! कोसूणाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवं एएणं अभिलावेणं वालुयप्पभाए पंचजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, पंकप्पभाए सक्कोसाइं पंचजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। धूमप्पभाए अद्धछट्ठाइं जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। तमप्पभाए कोसूणाइं छ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। अहेसत्तमाए छ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवात वलय कितना मोटा है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवात वलय साढ़े चार योजन की मोटाई वाला है। शर्कराप्रभा का घनवात वलय एक कोस कम पांच योजन का, इसी प्रकार बालुकाप्रभा का घनवात वलय पांच योजन का, पंकप्रभा का एक कोस अधिक पांच योजन का, धूमप्रभा का साढे पांच योजन का और तमस्तम: प्रभा पृथ्वी का एक कोस कम छह योजन की मोटाई वाला है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तणुवायवलए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते? गोयमा! छक्कोसेणं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं एएणं अभिलावेणं सक्करप्पभाए सत्तिभागे छक्कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते। वालुयप्पभाए तिभागूणे सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। पंकप्पभाए पुढवीए सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। धूमप्पभाए सतिभागे सत्तकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते। तमप्पभाए तिभागूणे अट्ठकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते। अहेसत्तमाए पुढवीए अट्ठकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का तनुवात वलय कितनी मोटाई वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी का तनुवात वलय छह कोस की मोटाई का है। इसी प्रकार शर्कराप्रभा का तनुवात वलय तीन भाग सहित छह कोस का, बालुकाप्रभा का तीन भाग न्यून सात कोस का, पंकप्रभा का सात कोस का, धूमप्रभा का तीन भाग सहित सात कोस का, तमःप्रभा का तीन भाग न्यून आठ कोस का और अधःसप्तम पृथ्वी का तनुवातवलय आठ कोस की मोटाई वाला कहा गया है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सातों पृथ्वियों के घनोदधि वलय, घनवात वलय और तनुवात वलयों की मोटाई का वर्णन किया गया है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदहि वलयस्स छ छज्जोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ काल जाव हंता अत्थि।

सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए घणोदहि वलयस्स सतिभाग छज्जोयण बाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स जाव हंता अत्थि। एवं जाव अहेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के छह योजन बाहल्य वाले और बुद्धि कल्पित प्रतर आदि विभाग वाले घनोदधि वलय में वर्ण से काले आदि द्रव्य हैं क्या?

उत्तर - हाँ, गौतम! हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इस शर्कराप्रभा पृथ्वी के तीन भाग सहित छह योजन बाहल्य वाले और प्रतरादि विभाग वाले घनोदधि वलय में वर्ण से काले आदि द्रव्य हैं क्या?

उत्तर - हाँ, गौतम! हैं। इस प्रकार जितना बाहल्य है उतना कह कर अधःसप्तम पृथ्वी के घनोदधि वलय तक कह देना चाहिये।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणवायवलयस्स अद्धपंचम जोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स जाव हंता अत्थि। एवं जाव अहेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं। एवं तणुवाय वलयस्स वि जाव अहेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के साढे चार योजन बाहल्य वाले और प्रतर आदि रूप में विभक्त घनवात वलय में वर्ण से काले आदि द्रव्य हैं क्या?

उत्तर - हाँ, गौतम! हैं। इसी प्रकार जिसका जितना बाहल्य है उतना कह कर सातवीं पृथ्वी तक कह देना चाहिये। इसी प्रकार तनुवात वलय के विषय में भी अपने अपने बाहल्य कह कर अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदहिवलए किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए पण्णत्ते जे णं इमं रयणप्पभं पुढविं सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ताणं चिट्ठइ। एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवी घणोदहिवलए, णवरं अप्पणप्पणं पुढवि संपरिक्खिवित्ताणं चिट्ठइ।

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए घणवायवलए किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! वट्टे वलयागारे तहेव जाव जेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणोदहिवलयं सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ताणं चिट्ठइ एवं जाव अहेसत्तमाए घणवायवलए।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तणुवायवलए किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! वट्टे वलयागार संठाण संठिए जाव जेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवायवलयं सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ताणं चिट्ठइ, एवं जाव अहेसत्तमाए तणुवायवलए।

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी केवइयं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता?

गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमा।

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवीए अंते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं पण्णत्ता?

हंता गोयमा! इमा णं रयणप्पभाए पुढवीए अंते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं, एवं जाव अहेसत्तमा॥ ७६॥

कठिन शब्दार्थ - वट्टे - वृत, **वलयागारसंठाणसंठिए** - वलयाकार संस्थान संस्थित, **संपरिक्खिवित्ताणं** - घेर कर, **आयामविक्खंभेणं** - आयाम विष्कंभ-लम्बाई चौडाई, **परिक्खेवेणं** - परिधि-घेराव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय का कैसा आकार कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी का घनोदधिवलय वर्तुल और वलयाकार कहा गया है क्योंकि यह इस रत्नप्रभा पृथ्वी को चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। इसी प्रकार सातों नरक पृथ्वियों के घनोदधि वलय का संस्थान (आकार) समझना चाहिये। विशेषता यह है कि वे सब अपनी अपनी पृथ्वी को घेर कर रहे हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवात वलय का आकार कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवात वलय वर्तुल और वलयाकार कहा गया है क्योंकि वह इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय को चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। इसी तरह सातों पृथ्वियों के घनवात वलय का आकार समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तनुवात वलय का आकार कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी का तनुवात वलय वर्तुल और वलयाकार कहा गया है क्योंकि वह घनवात वलय को चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक के तनुवात वलय का आकार समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कितनी लम्बी चौड़ी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी असंख्यात हजार योजन लम्बी और चौड़ी तथा असंख्यात हजार योजन की परिधि वाली कही गई है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या यह रत्नप्रभा पृथ्वी अन्त में और मध्य में सर्वत्र समान मोटाई वाली कही गई है?

उत्तर - हाँ गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी अन्त में, मध्य में सर्वत्र समान मोटाई वाली कही गई है। इसी प्रकार सातवीं पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सात नरक पृथ्वियों के घनोदधि, घनवात और तनुवात वलयों के संस्थानों, उनकी लम्बाई, चौड़ाई और परिधि आदि का वर्णन किया गया है।

रत्नप्रभा के विस्तार की अपेक्षा शर्कराप्रभा का विस्तार एक रज्जु झाझेरा मानना चाहिये क्योंकि रत्नप्रभा का पृथ्वी पिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन का है। त्रस नाल एक रज्जु की है।

रत्नप्रभा का पृथ्वीपिण्ड प्रारम्भ में तो एक रज्जु का है फिर क्रमशः बढ़ता गया है अतः एक लाख अस्सी हजार योजन जाने तक विस्तार एक रज्जु झाझेरी हो जाता है तथा दूसरी नरक का पृथ्वी पिण्ड दो रज्जु से कुछ न्यून मानने से विशेषाधिक हो जाता है। इस अपेक्षा से एक-एक नरक के पृथ्वी पिण्ड से आगे आगे की नरक के पृथ्वी पिण्ड विशेषाधिक होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सातों ही नरकों के घनवात, तनुवात एवं आकाशान्तर असंख्यात-असंख्यात योजन के हैं तथा ये असंख्यात योजन परस्पर तुल्य होने की संभावना है किन्तु घनवात आदि तीनों एक ही नरक के हों तो उनमें परस्पर तुल्यता नहीं हैं क्योंकि भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक १० के अनुसार रत्नप्रभा आदि सात ही नरकों के घनोदधि, घनवात, तनुवात ने तो धर्मास्तिकाय के एक असंख्यातवें भाग का स्पर्श किया है तथा आकाशान्तर में एक संख्यातवें भाग का स्पर्श किया है।

आगमकार घनोदधि आदि तथा तीनों वलयों के परस्पर स्पृष्ट होने पर भी अलग-अलग प्रश्नोत्तर करके अलग-अलग संस्थानों से बताना चाहते हैं।

सर्व जीव पुद्गलों का उत्पाद

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए सव्वजीवा उववण्णपुव्वा? सव्वजीवा उववण्णा?

गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए सव्वजीवा उववण्णपुव्वा णो चेव णं सव्वजीवा उववण्णा। एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए।

कठिन शब्दार्थ - उववण्णपुव्वा - पूर्व में उत्पन्न

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी में सब जीव पहले काल क्रम से उत्पन्न हुए हैं तथा एक साथ उत्पन्न हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में सब जीव काल क्रम से पहले उत्पन्न हुए हैं किंतु सब जीव एक साथ रत्नप्रभा में उत्पन्न नहीं हुए हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - इस रत्नप्रभा पृथ्वी आदि में सब जीव कालक्रम से - अलग अलग समय में पहले उत्पन्न हुए हैं। यहां सब जीवों से व्यवहार राशि वाले जीव ही समझने चाहिये, अव्यवहार राशि वाले नहीं। संसार अनादिकालीन होने से अलग अलग समय में सब जीव रत्नप्रभा आदि में उत्पन्न हुए हैं किंतु सब जीव एक साथ रत्नप्रभा आदि में उत्पन्न नहीं हुए। यदि सब जीव एक साथ रत्नप्रभा आदि में उत्पन्न हो जाएं तो देव, तिर्यंच, मनुष्य आदि का अभाव हो जावेगा किंतु ऐसा कभी होता नहीं। जगत् का स्वभाव ही ऐसा है। तथाविध जगत् स्वभाव से चारों गतियां शाश्वत है। अतः एक साथ सब जीव रत्नप्रभा आदि में उत्पन्न नहीं हो सकते।

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा सव्व जीवेहिं विजढा?

गोयमा! इमा णं रयणप्पभा पुढवी सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा णो चेव णं सव्व-जीव विजढा, एवं जाव अहेसत्तमा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - विजढपुव्वा - पूर्व में छोड़े हुए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कालक्रम से सब जीवों के द्वारा पूर्व में छोड़ी गयी है या सब जीवों ने पूर्व में एक साथ रत्नप्रभा पृथ्वी को छोड़ा है?

उत्तर - हे गौतम! सब जीवों ने पूर्व में कालक्रम से रत्नप्रभा पृथ्वी को छोड़ा है किंतु सभी ने एक साथ इसे नहीं छोड़ा है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - सब जीवों ने भूतकाल में कालक्रम से, अलग अलग समय में रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों को छोड़ा है किंतु सब जीवों ने एक साथ उन्हें नहीं छोड़ा क्योंकि सब जीव एक साथ रत्नप्रभा आदि का त्याग कर ही नहीं सकते हैं। यदि एक साथ सब जीवों द्वारा रत्नप्रभा आदि का त्याग कर दिया गया तो रत्नप्रभा आदि में नैरयिकों का अभाव हो जायेगा किंतु ऐसा कभी होता नहीं है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा सव्वपोग्गला पविट्ठा।

गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा, णो चेव णं सव्वपोग्गला पविट्ठा। एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए।

कठिन शब्दार्थ - पविट्ठपुव्वा - पूर्व प्रविष्ट।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कालक्रम से सब पुद्‌गल पहले प्रविष्ट हुए हैं? अथवा एक साथ सब पुद्‌गल इसमें पूर्व प्रविष्ट हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कालक्रम से सब पुद्‌गल पूर्व प्रविष्ट हुए हैं परन्तु एक साथ सब पुद्‌गल पूर्व में प्रविष्ट नहीं हुए हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - सब पुद्‌गल कालक्रम से अलग अलग समय में रत्नप्रभा आदि के रूप में परिणत हुए हैं क्योंकि संसार अनादिकाल से है और उसमें ऐसा परिणमन हो सकता है परन्तु सब पुद्‌गल एक साथ रत्नप्रभा आदि के रूप में परिणत नहीं हो सकते। यदि सब पुद्‌गल रत्नप्रभा आदि रूप में परिणत हो जाय तो अन्यत्र सब जगह पुद्‌गलों का अभाव हो जायगा किंतु ऐसा कभी होता नहीं है।

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा? सव्वपोग्गला विजढा?

गोयमा! इमा णं रयणप्पभा पुढवी सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा णो चेव णं सव्वपोग्गलेहिं विजढा, एवं जाव अहेसत्तमा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी सब पुद्‌गलों के द्वारा पूर्व में छोड़ी हुई है? या सब पुद्‌गलों ने इसे एक साथ छोड़ा है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कालक्रम से सब पुद्गलों द्वारा पूर्व में परित्यक्त है परन्तु सब पुद्गलों द्वारा एक साथ पूर्व में परित्यक्त नहीं है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - सब पुद्गलों ने कालक्रम से रत्नप्रभा आदि रूप परिणमन का परित्याग किया है क्योंकि संसार अनादि है किंतु सब पुद्गलों ने एक साथ रत्नप्रभा आदि रूप परिणमन का त्याग नहीं किया है क्योंकि यदि वैसा माना जाय तो रत्नप्रभा आदि के स्वरूप का अभाव हो जायगा, ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि रत्नप्रभा आदि शाश्वत है।

रत्नप्रभा आदि शाश्वत या अशाश्वत?

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं सासया असासया?

गोयमा! सिय सासया, सिय असासया।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-सिय सासया सिय असासया?

गोयमा! दव्वट्ठयाए सासया वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-तं चेव जाव सिय असासया। एवं जाव अहेसत्तमा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी शाश्वत है या अशाश्वत?

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत है।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि रत्नप्रभा पृथ्वी कथंचित् शाश्वत है, कथंचित् अशाश्वत है?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत है और वर्ण पर्यायों से, गंध पर्यायों से, रस पर्यायों से और स्पर्श पर्यायों से अशाश्वत है। इसलिए हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि यह रत्नप्रभा पृथ्वी कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिये।

विवेचन - अपेक्षा भेद से रत्नप्रभा आदि पृथ्वी शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है। रत्नप्रभा पृथ्वी द्रव्य की अपेक्षा से शाश्वत है और पर्याय की अपेक्षा अशाश्वत है अर्थात् रत्नप्रभा पृथ्वी का आकार आदि भाव उसका अस्तित्व आदि सदा से था, है और रहेगा अतएव वह शाश्वत है परंतु उसके कृष्ण आदि वर्ण पर्याय, गंध आदि पर्याय, रस आदि पर्याय, स्पर्श पर्याय आदि प्रतिक्षण पलटते रहते हैं अतएव वह अशाश्वत भी है। इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय से रत्नप्रभा पृथ्वी शाश्वत है और पर्यायार्थिक नय से अशाश्वत है। इसी प्रकार सातों नरक पृथ्वियों के विषय में समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! ण कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ, भुविं च भवइ य भविस्सइ य धुवा, णियया, सासया, अक्खया, अव्वया, अवट्ठिया णिच्चा। एवं चेव अहेसत्तमा॥ ७८॥

कठिन शब्दार्थ - **धुवा** - ध्रुव, **णियया** - नियत, **सासया** - शाश्वत, **अक्खया** - अक्षय, **अव्वया** - अव्यय, **अवट्ठिया** - अवस्थित, **णिच्चा** - नित्य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी काल से कितने समय तक रहने वाली है?

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कभी नहीं थी ऐसा नहीं, कभी नहीं है ऐसा भी नहीं और कभी नहीं रहेगी, ऐसा भी नहीं। यह भूतकाल में थी, वर्तमान है और भविष्य में रहेगी। यह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक समझ लेना चाहिये।

विवेचन - यह रत्नप्रभा पृथ्वी अनादिकाल से सदा से थी, सदा है और सदा रहेगी। यह अनादि अनन्त है। त्रिकाल भावी होने से यह ध्रुव है, नियत स्वरूप वाली होने से धर्मास्तिकाय की तरह नियत है, नियत होने से शाश्वत है क्योंकि इसका प्रलय (नाश) नहीं होता। शाश्वत होने से अक्षय है और अक्षय होने से अव्यय है और अव्यय होने से स्व प्रमाण में अवस्थित है। अतएव सदा रहने के कारण नित्य है। अथवा ध्रुव आदि शब्दों को एकार्थक भी समझा जा सकता है। शाश्वतता पर विशेष भार देने हेतु विविध एकार्थक शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार सातों पृथ्वियों की शाश्वतता समझनी चाहिये।

पृथ्वियों का अन्तर

[इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! असि उत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ खरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! सोलस जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ रयणस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! एक्कं जोयणसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ वइरस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! एक्कं जोयणसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ वइरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! दो जोयणसहस्साइं, इमीसे णं० अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं जाव रिट्ठस्स उवरिल्ले पण्णरस जोयणसहस्साइं, हेट्ठिल्ले चरिमंते सोलस जोयणसहस्साइं॥

भावार्थ - [**प्रश्न** - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से नीचे के चरमान्त के बीच में कितना अन्तर कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से नीचे के चरमांत के बीच में एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से खरकाण्ड के नीचे के चरमांत के बीच कितना अन्तर है?

उत्तर - हे गौतम! सोलह हजार योजन का अन्तर है।]

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से रत्नकाण्ड के नीचे के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है?

उत्तर - हे गौतम! एक हजार योजन का अन्तर है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से वज्रकांड के ऊपर के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है?

उत्तर - हे गौतम! एक-हजार योजन का अन्तर है।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से वज्रकांड के नीचे के चरमांत के बीच कितना अन्तर है?

उत्तर - हे गौतम! दो हजार योजन का अन्तर है। इस प्रकार रिष्ट काण्ड के ऊपर के चरमांत के बीच पन्द्रह हजार योजन का अन्तर है और नीचे के चरमान्त तक सोलह हजार का अन्तर है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरमंताओ पंकबहुलस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं अबाहाए केवइयं अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! सोलस जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। हेट्ठिल्ले चरमंते एक्कं जोयणसयसहस्सं आवबहुलस्स उवरि एक्कं जोयणसयसहस्सं हेट्ठिल्ले चरिमंते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असीउत्तरं जोयणसयसहस्सं। घणोदहि उवरिल्ले असि उत्तर जोयणसयसहस्सं, हेट्ठिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणवायस्स उवरिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं। हेट्ठिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तणुवायस्स उवरिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे, हेट्ठिल्ले वि असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं। एवं ओवासंतरे वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से पंकबहुल काण्ड के ऊपर के चरमांत के बीच में कितना अंतर है?

उत्तर - हे गौतम! सोलह हजार योजन का अंतर है। नीचे के चरमान्त तक एक लाख योजन का अन्तर है। अप्बहुल काण्ड के ऊपर के चरमान्त तक एक लाख योजन का और नीचे के चरमान्त तक एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर है। घनोदधि के ऊपर के चरमान्त तक एक लाख अस्सी हजार और नीचे के चरमान्त तक दो लाख योजन का अन्तर है।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनवात के ऊपर के चरमान्त तक दो लाख योजन का अंतर है और नीचे के चरमांत तक असंख्यात लाख योजन का अन्तर है।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से तनुवात के ऊपर के चरमांत तक असंख्यात लाख योजन का अन्तर है और नीचे के चरमांत तक भी असंख्यात लाख योजन का अन्तर है। इसी प्रकार अवकाशान्तर के दोनों चरमांतों का भी अन्तर समझना चाहिये।

दोच्चाए णं भंते! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! बत्तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

सक्करप्पभाए पुढवीए उवरि घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते बावण्णुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए। घणवायस्स असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं पण्णत्ताइं, एवं जाव ओवासंतरस्स वि जाव अहेसत्तमाए णवरं जीसे जं बाहल्लं तेण घणोदही संबंधेयव्वो बुद्धीए।

सक्करप्पभाए अणुसारेणं घणोदहि सहियाणं इमं पमाणं॥

तच्चाए अडयालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंकप्पभाए पुढवीए चत्तालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं। धूमप्पभाए पुढवीए अट्ठतीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं। तमाए पुढवीए छत्तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं। अहेसत्तमाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं जाव अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ उवासंतरस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥ ७९॥

कठिन शब्दार्थ - संबंधेयव्वो - संबंध जोड़ लेना चाहिये, **बुद्धीए** - बुद्धि से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दूसरी पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से नीचे के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है?

उत्तर - हे गौतम! एक लाख बत्तीस हजार योजन का अन्तर है। शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनोदधि के नीचे के चरमान्त तक एक लाख बावन हजार योजन का अन्तर है। घनवात के उपरितन चरमान्त का अंतर भी इतना ही है। घनवात के नीचे के चरमांत तक तथा तनुवात और अवकाशान्तर के ऊपर और नीचे के चरमांत तक असंख्यात लाख योजन का अन्तर है। इस प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि जिस पृथ्वी का जितना बाहल्य है उससे घनोदधि का संबंध बुद्धि से जोड़ लेना चाहिये। जैसे कि - तीसरी पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से घनोदधि के चरमांत तक एक लाख अड़तालीस हजार योजन का अंतर है। पंकप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से उसके घनोदधि के चरमान्त तक एक लाख चवालीस हजार का अन्तर है। धूमप्रभा के ऊपरी चरमांत से उसके घनोदधि के चरमांत तक एक लाख अड़तीस हजार योजन का अन्तर है। तमःप्रभा में एक लाख छत्तीस हजार योजन का अन्तर तथा अधःसप्तम पृथ्वी के ऊपर के चरमांत से उसके घनोदधि के चरमांत तक एक लाख अट्ठावीस हजार योजन का अंतर है। इसी प्रकार घनवात के अधःसप्तम चरमान्त की पृच्छा में तनुवात और अवकाशान्तर के ऊपरितन और अधःस्तन की पृच्छा में असंख्यात लाख योजन का अन्तर कह देना चाहिये।

विवेचन-प्रस्तुत सूत्र में सातों पृथ्वियों के अलग अलग विभागों का क्रमानुसार अंतर बताया गया है।

बाहल्य की अपेक्षा तुल्यता आदि

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला, विसेसाहिया संखेज्जगुणा? वित्थारेणं किं तुल्ला विसेसहीणा संखेज्जगुणहीणा?

गोयमा! इमाणं रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं णो तुल्ला, विसेसाहिया णो संखेज्जगुणा, वित्थारेणं णो तुल्ला, विसेसहीणा, णो संखेज्जगुणहीणा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - पणिहाय - अपेक्षा, **वित्थारेणं** - विस्तार की।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी पृथ्वी की अपेक्षा बाहल्य में क्या तुल्य है, विशेषाधिक है या संख्यातगुणा है? विस्तार की अपेक्षा क्या तुल्य है, विशेषहीन है या संख्यातगुणा हीन है?

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी नरक पृथ्वी की अपेक्षा बाहल्य में तुल्य नहीं है, विशेषाधिक है, संख्यातगुणा हीन है। विस्तार की अपेक्षा तुल्य नहीं है, विशेषहीन है, संख्यातगुणा हीन नहीं है।

दोच्चा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला? एवं चेव भाणियव्वं। एवं तच्चा चउत्थी पंचमी छट्ठी।

छट्ठी णं भंते! पुढवीं सत्तमं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला, विसेसाहिया, संखेज्जगुणा? एवं चेव भाणियव्वं।

सेवं भंते! सेवं भंते!! णेरइय उद्देसओ पढमो॥ ८०॥

भावार्थ - हे भगवन्! दूसरी नरक पृथ्वी, तीसरी नरक पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में क्या तुल्य है? इत्यादि उसी प्रकार कहना चाहिये। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी नरक पृथ्वी के विषय में समझना चाहिये।

हे भगवन्! छठी नरक पृथ्वी सातवीं नरक पृथ्वी की अपेक्षा बाहल्य में क्या तुल्य है, विशेषाधिक है या संख्यात गुणा है? उसी प्रकार कह देना चाहिये।

हे भगवन्! आपने जैसा कहा है यह वैसा ही है, वह वैसा ही है। इस प्रकार प्रथम नैरयिक उद्देशक समाप्त हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सात नरक पृथ्वियों की मोटाई और विस्तार की अपेक्षा परस्पर तुल्यता आदि का कथन किया गया है।

यह रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी नरक पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में तुल्य नहीं है, विशेषाधिक है किन्तु संख्यातगुणा नहीं है क्योंकि रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है और दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन है। दोनों में अड़तालीस हजार योजन का अन्तर है। इतना अन्तर होने के कारण विशेषाधिकता ही घटती है, तुल्यता और संख्यातगुणता घटित नहीं होती है। सात नरक पृथ्वियों की मोटाई क्रमशः इस प्रकार है -

प्रथम नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है

दूसरी नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन की है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसरी नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन की है
चौथी नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख बीस हजार योजन की है
पांचवीं नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन की है
छठी नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन की है
सातवीं नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन की है

उपरोक्त पृथ्वियों की मोटाई देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाहल्य की अपेक्षा पूर्व पूर्व की पृथ्वी अपनी पिछली पृथ्वी की अपेक्षा विशेषाधिक ही है तुल्य या संख्यातगुणा नहीं।

विस्तार की अपेक्षा पिछली पिछली पृथ्वी की अपेक्षा पूर्व-पूर्व की पृथ्वी विशेषहीन है तुल्य या संख्यातगुणाहीन नहीं। रत्नप्रभा में प्रदेश आदि की वृद्धि होने पर उतने ही क्षेत्र में शर्कराप्रभा आदि में भी वृद्धि होती है, अतएव विशेषहीनता ही घटित होती है।

अंत में गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रति अपनी अटूट और अनुपम श्रद्धा व्यक्त करते हुए फरमाते हैं कि हे भगवन्! आपने जो कुछ फरमाया वह पूर्णतया वैसा ही है, सत्य है, यथार्थ है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी भगवान् को वंदन नमस्कार करके तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

।। जीवाजीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति का प्रथम नैरयिक उद्देशक समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीओ णेरइय उद्देसो - द्वितीय नैरयिक उद्देशक

जीवाजीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के प्रथम नैरयिक उद्देशक में नरक पृथ्वियों के नाम, गोत्र, बाहल्य आदि का वर्णन करने के पश्चात् सूत्रकार इस द्वितीय नैरयिक उद्देशक में नरक पृथ्वियों के नरकावास आदि का वर्णन करते हैं जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा - रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा।

नरकावास कहाँ हैं?

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्स बाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया णिरयावास-सयसहस्सा पण्णत्ता?

गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्स बाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वि एगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे अडसत्तरी जोयणसयसहस्सा, एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं तीसं णिरयावास-सयसहस्साइं भवंति त्तिमक्खाया।।

कठिन शब्दार्थ - उवरिं - ऊपर, **ओगाहित्ता** - अवगाहन कर, **हेट्ठा** - नीचे, **वज्जित्ता** - छोड़ कर, **मज्झे** - मध्य में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वियाँ कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वियाँ सात कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - रत्नप्रभा यावत् अधः सप्तमपृथ्वी।

प्रश्न - हे भगवन्! एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण बाहल्य वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से कितनी दूर जाने पर और नीचे के कितने भाग को छोड़ कर मध्य के कितने भाग में कितने लाख नरकावास कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! इस एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण बाहल्य वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन का ऊपरी भाग छोड़ कर और नीचे का एक हजार योजन का भाग छोड़ कर मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रमाण क्षेत्र में तीस लाख नरकावास कहे गये हैं।

विवेचन - शंका - प्रथम उद्देशक में पृथ्वियाँ कितनी हैं? इस प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका है फिर इस द्वितीय उद्देशक के प्रारंभ में पुनः यह प्रश्न करने का क्या कारण है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - इस शंका का समाधान करते हुए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि -

पुव्वभणियं पि जं पुण भण्णइ तत्थ कारणमत्थि।

पडिसेहो य अणुण्णा कारण विसेसोवलंभो वा॥

अर्थात् - जो पूर्व वर्णित विषय पुनः कहा जाता है वह किसी विशेष कारण को लेकर होता है। वह विशेष कारण प्रतिषेध या अनुज्ञा रूप भी हो सकता है और पूर्व विषय में विशेषता प्रतिपादन रूप भी हो सकता है। यहां सात पृथ्वियों का पुनः कथन पूर्व वर्णित विषय में और अधिक विशेष जानकारी देने के अभिप्राय से समझना चाहिये।

रत्नप्रभा के नरकावास कहां स्थित है? इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु ने फरमाया कि एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण मोटाई वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपरी भाग से एक हजार योजन की दूरी पर और नीचे के भाग में एक हजार योजन छोड़ कर मध्य के एक लाख अट्ठहत्तर हजार योजन प्रमाण क्षेत्र में तीस लाख नरकावास कहे गये हैं। ये नरकावास कैसे हैं? इसके उत्तर में कहा गया है -

नरकावास कैसे हैं?

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा जाव असुभा णरएसु वेयणा, एवं एएणं अभिलावेणं उवजुंजिऊण भाणियव्वं ठाणप्पयाणुसारेणं, जत्थ जं बाहल्लं जत्थ जत्तिया वा णरयावाससयसहस्सा जाव अहेसत्तमाए पुढवीए, अहेसत्तमाए मज्झिमं केवइए कइ अणुत्तरा महइ महालया महाणिरया पण्णत्ता, एवं पुच्छियव्वं वागरेयव्वं पि तहेव॥ ८१॥

कठिन शब्दार्थ - **अंतो** - अंदर से, **वट्टा** - वृत (गोल), **बाहिं** - बाहर से, **चउरंसा** - चतुरस्र-चौकोन, **उवजुंजिऊण** - सम्यग् विवेचन करके, **ठाणप्पयाणुसारेणं** - स्थान पद के अनुसार, **महइ महालया** - अति विशाल-बड़े से बड़े, **महाणिरया** - महा नरक, **पुच्छियव्वं** - प्रश्न कर लेना चाहिये, **वागरेयव्वं** - कह देना चाहिये।

भावार्थ - ये नरकावास अंदर से गोल हैं बाहर से चौकोन है यावत् इन नरकावासों में अशुभ वेदना है। इसी अभिलाप से प्रज्ञापना सूत्र के स्थान पद के अनुसार कह देना चाहिये। जहां जितना बाहल्य (मोटाई) है और जहां जितने नरकावास हैं उतने अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये जैसे अधःसप्तम पृथ्वी के मध्य के क्षेत्र में कितने अनुत्तर अति विशाल (बड़े से बड़े) महानरक कहे गये हैं, ऐसा प्रश्न करके उसका उत्तर पूर्ववत् समझ लेना (कह देना) चाहिये।

विवेचन - नरकावास दो तरह के हैं - आवलिका प्रविष्ट और आवलिका बाह्य (प्रकीर्णक)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवलिका प्रविष्ट नरकावास गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण है जबकि आवलिका बाह्य (प्रकीर्णक) भिन्न भिन्न संस्थान वाले हैं।

प्रस्तुत सूत्र में आये हुए **'जाव असुभा'** शब्द से निम्न पाठ का ग्रहण होता है - **"अहे खुरप्पसंठाणसंठिया, णिच्चंधयारतमसा, ववगयगह-चंद-सूरणक्खत्तजोइसपहा, मेयवसापूयरुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला, असुहबीभच्छा, परम दुब्भिगंधा, काऊअगणिवण्णाभा, कक्खडफासा, दुरहियासा"** इस पाठ का अर्थ इस प्रकार है -

अहे खुरप्पसंठाणसंठिया (क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिताः) - नीचे के भाग में ये नरकावास खुरप (उस्तरा) के समान तीक्ष्ण संस्थान (आकार) वाले हैं अर्थात् नरकावासों का तल कंकरीला है जिसके स्पर्श मात्र से ऐसी पीड़ा होती है जैसे पैर में उस्तरा और चाकू लग गया हो।

णिच्चंधारतमसा (नित्यान्धकारतामसाः) - इन नरकावासों में उद्योत के अभाव में सदैव घोर अन्धकार रहता है। तीर्थंकरों के जन्म दीक्षादि के समय होने वाले क्षणिक प्रकाश को छोड़ कर वहां सदा निबिड़ अंधकार बना रहता है।

ववगयगहचंदसूरणक्खत्तजोइसपहा (व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रैज्योतिषपथाः) - वहां ग्रह-चंद्र-सूर्य-नक्षत्र-तारा इन ज्योतिषियों का पथ-रास्ता नहीं है।

मेयवसापूयरुहिरमंसचिक्खिल्ल लित्ताणुलेवणतला (मेदोवसापूतिरुधिर मांसचिक्खिल्ल लिप्तानुलेपन तला) - उन नरकावासों का भूमितल हमेशा चर्बी, राध, मांस, रुधिर आदि अशुचि पदार्थों से लीपा रहता है।

असुइबीभच्छा (अशुचयः-अपवित्राः बीभत्था) - वहां की जमीन मेद आदि के कीचड़ के कारण अशुचि (अपवित्र) रूप होने से अत्यंत घृणास्पद और बीभत्स है जिसे देखने मात्र से ही घृणा होती है।

परमदुब्भिगंधा (परमदुरभिगंधाः) - वे नरकावास अत्यंत दुर्गंध वाले हैं। मरे हुए गाय आदि जानवरों के कलेवर-शरीर जैसी दुर्गंध निकलती रहती है।

काउअगणिवण्णाभा (कापोताग्निवर्णाभाः) - जैसे लोहे को धमधमाते समय अग्नि का वर्ण बहुत काला होता है वैसी ही काले रंग वाली अग्नि ज्वाला की तरह उनकी आभा होती है।

कक्खडफासा (कर्कश स्पर्शाः) - असि (तलवार) की धार के समान उनका स्पर्श अत्यंत तीक्ष्ण एवं असह्य होता है।

दुरहियासा (दूरध्यासाः) - उन नरकावासों के दुःखों को सहन करना अत्यंत कठिन है।

असुहा वेयणा (अशुभा वेदना) - इस प्रकार वहां वर्ण, गंध, रस, स्पर्श सभी अशुभ होने से वहां की वेदना तीव्र एवं असह्य होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सातों नरक पृथ्वियों के बाहल्य, मध्य भाग के पोलार एवं नरकावासों की संख्या को बताने वाली चार संग्रहणी गाथाएं इस प्रकार है -

असीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च।
अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हेट्ठिमया॥ १॥
अट्ठुत्तरं च तीसं छव्वीसं चेव सयसहस्सं तु।
अट्ठारस सोलसगं चोद्दस महियं तु छट्ठीए॥ २॥
अद्धतिवण्ण सहस्सा उवरिं अहे वज्जिऊण तो भणिया।
मज्झे तिसु सहस्सेसु होंति निरया तमतमाए॥ ३॥
तीसा य पणवीसा पण्णरस दस चेव सयसहस्साइं।
तिण्णि य पंचूणेगं पंचेव अणुत्तरा निरया॥ ४॥

इन चारों गाथाओं का अर्थ इस कोष्ठक से स्पष्ट हो जाता है-

क्र.	पृथ्वी नाम	बाहल्य (योजन)	मध्य भाग (योजन)	नरकावासों की संख्या
१.	रत्नप्रभा	१,८०,०००	१,७८,०००	३०,०००००
२.	शर्कराप्रभा	१,३२,०००	१,३०,०००	२५,०००००
३.	बालुकाप्रभा	१,२८,०००	१,२६,०००	१५,०००००
४.	पंकप्रभा	१,२०,०००	१,१८,०००	१०,०००००
५.	धूमप्रभा	१,१८,०००	१,१६,०००	३,००,०००
६.	तमःप्रभा	१,१६,०००	१,१४,०००	९९९९५
७.	तमःतमःप्रभा	१,०८,०००	३,०००	५

नरकावासों का आकार

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा किं संठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - आवलियपविट्ठा य आवलियबाहिरा य, तत्थ णं जे ते आवलियपविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता तं जहा - वट्टा तंसा चउरंसा, तत्थ णं जे ते आवलियबाहिरा ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता तं जहा - अयकोट्ठसंठिया पिट्ठपयणगसंठिया कंडूसंठिया लोहीसंठिया कडाहसंठिया थालीसंठिया पिढरगसंठिया किमियडसंठिया किण्णपुडगसंठिया उडवसंठिया मुखसंठिया मुयंगसंठिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णंदिमुयंगसंठिया आलिंगयसंठिया सुघोससंठिया दद्दरयसंठिया पणवसंठिया पडहसंठिया भेरिसंठिया झल्लरीसंठिया कुतुंबगसंठिया णालिसंठिया एवं जाव तमाए॥

कठिन शब्दार्थ - **आवलियपविट्ठा** - आवलिका प्रविष्ट, **आवलियबाहिरा** - आवलिका बाह्य **तंसा** - त्र्यंस्र (त्रिकोण), **चउरंसा** - चउरंस्र (चतुष्कोण), **णाणासंठाणसंठिया** - नाना संस्थान संस्थित-नाना आकार के।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों का आकार कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. आवलिका प्रविष्ट और २. आवलिका बाह्य। इनमें जो आवलिका प्रविष्ट नरकावास हैं वे तीन प्रकार के कहे गये हैं- १. गोल २. त्रिकोण और ३. चतुष्कोण। जो आवलिका बाह्य हैं वे नाना प्रकार के आकारों के हैं जैसे - लोहे की कोठी के आकार के, मदिरा बनाने हेतु पिष्ट आदि पकाने के बर्तन के आकार के, कंदू-हलवाई के पाक पात्र के आकार के, लोही-तवा के आकार के, कडाही के आकार के, थाली-ओदन पकाने के बर्तन के आकार के, पिढरक (जिसमें बहुत से मनुष्यों के लिए भोजन पकाया जाता है ऐसे पात्र) के आकार के, कृमिक (जीव विशेष) के आकार के, कीर्णपुटक के आकार के, तापस के आश्रम के आकार के, मुरज (वाद्य विशेष) के आकार के, मृदंग के आकार के, नन्दिमृदंग के आकार के, आलिंगक के आकार के, सुघोषा घंटे के आकार के, दर्दर के आकार के, पणव (ढोल विशेष) के आकार के, पटह (ढोल) के आकार के, भेरी के आकार के, झल्लरी के आकार के, कुस्तुम्बक (वाद्य विशेष) के आकार के और नाडी-घटिका के आकार के हैं। इस प्रकार छठी नरक पृथ्वी तक समझना चाहिये।

अहे सत्तमाए णं भंते! पुढवीए णरगा किं संठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - वट्टे य तंसा य।

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! सातवीं नरक पृथ्वी के नरकावासों का संस्थान कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सातवीं नरक पृथ्वी के नरकावासों के संस्थान दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - वृत्त (गोल) और त्रिकोण।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सातों नरक पृथ्वियों के नरकावासों के संस्थान का निरूपण किया गया है।

नरकावासों की मोटाई आदि

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता?

गोयमा! तिण्णि जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, तं जहा - हेट्ठा घणा सहस्सं मज्झे झुसिरा सहस्सं उप्पिं संकुइया सहस्सं, एवं जाव अहे सत्तमाए।

कठिन शब्दार्थ - **घणा** - घन, **झुसिरा** - झुषिर (खाली), **संकुइया** - संकुचित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों की मोटाई कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों की मोटाई तीन हजार योजन की है। वे नीचे एक हजार योजन तक घन है, मध्य में एक हजार योजन तक झुषिर (खाली) हैं और ऊपर एक हजार योजन तक संकुचित हैं। इसी प्रकार अध:सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए।

विवेचन - प्रश्न - नरकों में कुंभियां और नरकावास कैसे आये हुए हैं?

उत्तर - कुंभियां दीवाल में तथा दीवाल से दूर-दूर होने के कारण जमीन में जहाँ पर भी गड्ढे हो वहां हो सकती है। नरकावासों में ये कुंभियां कितनी ऊँचाई पर हैं। इसका उल्लेख देखने में नहीं आया है। तथापि वहां के नेरियों से अधिक ऊंची संभव नहीं हैं। कुंभियां अवगाहनानुसार छोटी बड़ी हो सकती हैं। जिस प्रकार चर्मरत्न पृथ्वीकाय का होते हुए भी लचीला होने से मन चाहा मुड़ जाता है, वैसे ही कुंभियां पृथ्वीमय होते हुए भी उनका मुंह बालक की प्रसूतिवत् फूल जाता होगा। जिससे वे नेरिये कुंभि से स्वत: ही बाहर निकल जाते हैं। परमाधामी ही बाहर निकाले, ऐसी बात नहीं है। नेरिये भी दूसरे नेरिये को निकाल सकते हैं।

योनिस्थान ही कुंभियां होने से उनमें क्षेत्र वेदना कम संभव है। अपर्याप्तावस्था तक एवं उसके बाद भी कुछ समय तक सातावेदना रह सकती है। एक ही प्रतर में रहे हुए नारकों की वेदना में अत्यधिक फर्क पड़ने की संभावना नहीं हैं। कुंभियां असंख्याता है व विमान संख्याता हैं। एक-एक नाम वाली अनेक कुंभियां व विमान हो सकते हैं।

चारकशालावत् नरकावासा हैं। जैसे चारकशाला की कोई संभाल नहीं होती, अंधकार युक्त रहती है। ऐसा ही नरकावासों के विषय में भी समझना चाहिए। असंख्यात योजन के नरकावासों में असंख्यात योजन का खुला मैदान कम संभव होने से एक नरकावास में भी अनेक भित्तियां हो सकती है।

उप्पिं संकुइया सहस्सं - प्रत्येक प्रतर के सभी नरकावासों का उपरीय भाग एक छत के समान है। उसी एक छत के अलग-अलग स्थानों पर पंक्तिबद्ध, पुष्पावकीर्ण नरकावासे आये हुए हैं। नरकावासों के संस्थानों के कारर्ण ऊपर एक छत होते हुए भी बीच-बीच में यथासंभव कुछ-कुछ छूट भी सकता है। वहां पर पोलार एवं घनता दोनों यथा संभव हो सकते हैं। नरकावासों के नीचे के क्षेत्र की अपेक्षा ऊपर का क्षेत्र कम चौड़ा होने से उसे संकुचित कहा गया है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केवइयं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडा ते णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता। तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता एवं जाव तमाए।

अहेसत्तमाए णं भंते! पुच्छा।

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडे से णं एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णिजोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि कोसे य अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णात्ता, तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा तेणं असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता॥ ८२॥

कठिन शब्दार्थ - संखेज्जवित्थडे - संख्यात योजन के विस्तार वाले, **असंखेज्जवित्थडा** - असंख्यात योजन के विस्तार वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - १. संख्यात योजन के विस्तार वाले और २. असंख्यात योजन के विस्तार वाले। इनमें जो संख्यात योजन के विस्तार वाले हैं उनका आयामविष्कंभ (लम्बाई चौड़ाई) संख्यात हजार योजन है और परिक्षेप (परिधि) भी संख्यात हजार योजन की है। इनमें जो असंख्यात योजन के विस्तार वाले हैं उनका आयाम विष्कंभ असंख्यात हजार योजन और परिधि भी असंख्यात हजार योजन की है। इसी तरह छठी पृथ्वी तक कहना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! अधःसप्तम पृथ्वी के नरकावासों की लम्बाई चौड़ाई और परिधि कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! अधःसप्तम पृथ्वी के नरकावास दो प्रकार के कहे गये हैं - १. संख्यात योजन के विस्तार वाले और २. असंख्यात योजन के विस्तार वाले। इनमें जो संख्यात योजन के विस्तार वाला है वह एक लाख योजन के आयाम विष्कंभ वाला है उसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस, एक सौ अट्ठावीस धनुष, साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। जो असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं उनका आयाम विष्कंभ असंख्यात हजार योजन और परिधि भी असंख्यात हजार योजन की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नरकावासों की मोटाई लम्बाई चौड़ाई और परिधि बताई गई है जो मूल पाठ एवं भावार्थ से ही स्पष्ट है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरकावासों के वर्ण गंध आदि

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरया केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता?

गोयमा! काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीया उत्तासणया परम किण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमा।

कठिन शब्दार्थ - कालोभासा - कृष्णावभास-काली प्रभा वाले, **गंभीरलोमहरिसा** - भय के उत्कट रोमाञ्च वाले, **भीमा** - अतीव भयानक, **उत्तासणया** - उत्त्रासनक-अत्यंत त्रास करने वाले, **परमकिण्हा** - परम काले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरक वर्ण से कैसे कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास काले हैं, काली प्रभा वाले हैं, रोंगटे खड़े कर देने वाले हैं, भयानक हैं, नैरयिक जीवों को अत्यंत त्रास करने वाले हैं और परम काले हैं। इसी प्रकार सातों नरक पृथ्वियों के वर्ण के विषय में समझना चाहिये।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभा पुढवीए णरगा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए अहिमडेइ वा गोमडेइ वा सुणगमडेइ वा मज्जारमडेइ वा मणुस्समडेइवा महिसमडेइ वा मूसगमडेइ वा आसमडेइ वा हत्थिमडेइ वा सीहमडेइ वा वग्घमडेइ वा विगमडेइ वा दीवियमडेइ वा मयकुहिय चिरविणट्ठकुणिम वावण्ण दुब्भिगंधे असुइविलीण विगयबीभत्थ दरिसणिज्जे किमिजालाउल संसत्ते, भवेयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरगा चेव अकंततरगा चेव जाव अमणामतरगा चेव गंधेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए॥

कठिन शब्दार्थ - अहिमडेइ - सर्प का मृत कलेवर, **मयकुहियचिरविणट्ठ कुणिम वावण्ण दुब्भिगंधे** - मृतकुथित चिर विनष्ट कुणिम व्यापन्न दुरभिगंधः-मृत कलेवर को ज्यादा समय होने से जो फूल कर सड़ गया हो, जिसका मांस सड़-गल गया हो, **असुइविलीणविगयबीभत्थ दरिसणिज्जे**- अशुचि विलीन विगत बीभत्सा दर्शनीयः-अशुचि रूप होने से कोई उसके पास न जाना चाहे ऐसा घृणोत्पादक और बीभत्स दर्शन वाला, **किमिजालाउलसंसत्ते** - कृमि जाला कुल संसक्तः-जिसमें कीड़ों का समूह बिलबिला रहा हो, **अणिट्ठतरगा** - अनिष्टतर, **अकंततरगा** - अकांततर, **अमणामतरगा** - अमनामतर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास गंध की अपेक्षा कैसे कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे सर्प का मृत कलेवर हो, गाय का मृत कलेवर हो, कुत्ते का मृत कलेवर हो, बिल्ली का मृत कलेवर हो, मनुष्य का मृत कलेवर हो, भैंस का मृत कलेवर हो, चूहे का मृत कलेवर हो, घोड़े का मृत कलेवर हो, हाथी का मृत कलेवर हो, सिंह का मृत कलेवर हो, व्याघ्र का मृत कलेवर हो, भेडिये का मृत कलेवर हो, चीते का मृत कलेवर हो, जो धीरे धीरे फूल कर सड़ गया हो और जिसमें से दुर्गन्ध फूट रही हो, जिसका मांस सड-गल गया हो, जो अत्यंत अशुचि रूप होने से कोई उसके पास फटकना तक न चाहे ऐसा घृणोत्पादक और बीभत्स दर्शन वाला हो और जिसमें कीड़े बिलबिला रहे हों, क्या ऐसे दुर्गन्ध वाले नरकावास हैं?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, इससे अधिक अनिष्टतर, अकांततर यावत् अमनामतर उन नरकावासों की गंध है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए असिपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा कलंबचीरियापत्तेइ वा सत्तग्गेइ वा कुंतग्गेइ वा तोमरग्गेइ वा णारायग्गेइ वा सूलग्गेइ वा लउलग्गेइ वा भिंडिमालग्गेइ वा सूइकलावेइ वा कवियच्छूइ वा विंचुयकंटएइ वा इंगालेइ वा जालेइ वा मुम्मुरेइ वा अच्चीइ वा अलाएइ वा सुद्धागणीइ वा भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरगा चेव जाव अमणामतरगा चेव फासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥८३॥

कठिन शब्दार्थ - **खुरपत्तेइ** - क्षुरप-उस्तरे की धार का, **कलंबचीरियापत्तेइ** - कदम्बचीरिका (तृण विशेष) के पत्र-अग्रभाग का, **सूइकलावेइ** - सूचिकलाप-सूइयों के समूह के अग्रभाग का, **विंचुयकंटएइ**-बिच्छू का डंक, **मुम्मुरेइ** - मुर्मुर (भोभर की अग्नि), **अलाएइ** - अलात (जलती लकड़ी) **सुद्धागणीइ**-शुद्धाग्नि-लोह पिण्ड की अग्नि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों का स्पर्श कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे तलवार की धार का, उस्तरे की धार का, कदम्बचीरिका के अग्रभाग का, शक्ति (शस्त्र विशेष) के अग्रभाग का, भाले के अग्रभाग का, तोमर के अग्रभाग का, बाण के अग्रभाग का, शूल के अग्रभाग का, लगुड के अग्रभाग का, भिण्डीपाल के अग्रभाग का, सूइयों के समूह के अग्रभाग का, कपिकच्छु (खुजली पैदा करने वाली वल्ली), बिच्छु का डंक, अंगार, ज्वाला, मुर्मुर, अर्चि, अलात, शुद्धाग्नि इन सब का जैसा स्पर्श होता है, क्या नरकावासों का स्पर्श भी ऐसा है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इनसे भी अधिक अनिष्टतर यावत् अमनामतर उनका स्पर्श होता है। इसी तरह अधःसप्तम पृथ्वी तक के नरकावासों के स्पर्श के विषय में कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नरकावासों के वर्ण, गंध और स्पर्श का कथन किया गया है। नरकावासों का वर्ण अत्यंत काला, कालीप्रभा वाला, भय के उत्कट रोमांच वाला और भय उत्पन्न करने वाला है। सांप, गाय, घोड़ा, भैंस आदि के सड़े हुए मृत शरीर से भी कई गुणी दुर्गंध वहां होती है। तलवार की धार, उस्तरे की धार, कदम्बचीरिका (एक प्रकार का घास जो डाभ से भी बहुत तीक्ष्ण होता है) शक्ति, सूइयों का समूह, बिच्छु का डंक, कपिकच्छू (खाज पैदा करने वाली बेल) अंगार, ज्वाला, छाणों की आग आदि से भी अधिक कष्ट देने वाला नरकों का स्पर्श होता है।

नरकावासों का विस्तार

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केमहालिया पण्णत्ता?

गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे, तेल्लापूवसंठाणसंठिए वट्टे, रहचक्कवाल संठाण संठिए वट्टे, पुक्खरकण्णिया संठाणसंठिए वट्टे, पडिपुण्णचंद संठाणसंठिए एक्कं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं जाव किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं, देवे णं महिड्डिए जाव महाणुभागे जाव इणामेव इणामेव त्ति कट्टु इमं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छराणिवाएहिं तिसत्तक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छेज्जा, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जयणाए छेयाए दिव्वाए दिव्वगईए वीइवयमाणे वीइवयमाणे जहण्णेणं एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं छम्मासेणं वीइवएज्जा, अत्थेगइए वीइवएज्जा, अत्थेगइए णो वीइवएज्जा, एमहालया णं गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए, णवरं अहेसत्तमाए अत्थेगइयं णरगं वीइवएज्जा, अत्थेगइए णरगे णो वीइवएज्जा॥ ८४॥

कठिन शब्दार्थ - सव्वदीवसमुद्दाणं - सभी द्वीप समुद्रों में, **सव्वब्भंतरए** - सर्वाभ्यन्तरः-सबसे आभ्यंतर-अंदर, **सव्वखुड्डाए** - सर्वक्षुलकः-सब से छोटा, **तेलापूयसंठाणसंठिए** - तैलापूपसंस्थानसंस्थितः - तेल में तले हुए पूए के आकार का, **रहचक्कवाल संठाण संठिए** - रथचक्रवाल संस्थानसंस्थितः- रथ के पहिये के आकार का, **पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए** - पुष्कर (कमल) कर्णिका के आकार का, **पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए** - परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः-पूर्णचन्द्रमा के आकार का, **किंचिविसेसाहिए**- कुछ अधिक, **महिड्डिए** - महर्द्धिक, **महाणुभागे** - महानुभाग, **केवलकप्पं** - परिपूर्ण, **अच्छराणिवाएहिं** - चुटकियां बजाने जितने काल में, **तिसत्तक्खुत्तो** - इक्कीसबार, **अणुपरियट्टित्ता** - चक्कर लगा कर, **उक्किट्ठाए** - उत्कृष्ट, **तुरियाए** - त्वरित, **चवलाए** - चपल,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चण्डाए- चंड, **सिग्घाए** - शीघ्र, **उद्धुयाए** - उद्धत, **जवणाए** - वेगवाली, **छेगाए** - निपुण, **दिव्वाए**- दिव्य, **वीइवयमाणे** - चलता हुआ, **वीइवएज्जा**- पार कर सकता है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास कितने बड़े कहे गये हैं ?

उत्तर - हे गौतम! यह जम्बूद्वीप नाम का द्वीप जो सबसे आभ्यंतर-अंदर हैं, जो सब द्वीप समुद्रों में छोटा है, जो गोल हैं, तेल में तले हुए पूए के आकार का गोल है, रथ के पहिये के आकार का गोल है, कमल की कर्णिका के आकार का गोल है, प्रतिपूर्ण चन्द्रमा के आकार का है, जो एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा है यावत् जिसकी परिधि कुछ अधिक है। उसे कोई देव जो महर्द्धिक-महान् ऋद्धि वाला यावत् महानुभाग-महान् प्रभाव वाला है वह अभी अभी कहता हुआ तीन चुटकियां बजाने जितने काल में इस संपूर्ण जंबूद्वीप के इक्कीस चक्कर लगा कर आ जाता है वह देव उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, शीघ्र, उद्धत, वेगवाली, निपुण ऐसी दिव्य देवगति से चलता हुआ एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् उत्कृष्ट छह मास तक चलता रहे तो भी वह उन नरकावासों में से किसी को पार कर सकेगा, किसी को पार नहीं कर सकेगा। हे गौतम! इतने विस्तार वाले इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास कहे गये हैं। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि वह उसके किसी नरकावास को पार कर सकता है और किसी को पार नहीं कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नरकावासों का विस्तार समझाने के लिए सूत्रकार ने जो उपमा दी है वह इस प्रकार है -

यह जम्बूद्वीप सभी द्वीपों और समुद्रों में आभ्यन्तर है अर्थात् आदिभूत है और उन सभी द्वीप समुद्रों में सबसे छोटा है। क्योंकि आगे के लवण समुद्र आदि और धातकीखंड आदि द्वीप क्रमशः दुगुने दुगुने विस्तार वाले हैं। यह जंबूद्वीप गोलाकार है। तेल में तले हुए पूए के समान आकृतिवाला है। 'तेल से तले हुए' विशेषण देने का आशय यह है कि तेल में तला हुआ पूआ प्रायः जैसा गोल होता है वैसा घी में तला हुआ पूआ नहीं होता। वह जंबूद्वीप रथ के पहिये के समान, कमल की कर्णिका के समान तथा परिपूर्ण चन्द्रमा के समान गोल है। जंबूद्वीप की लम्बाई चौड़ाई एक लाख योजन की है जबकि इसकी परिधि तिगुनी से कुछ अधिक अर्थात् तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक है।

इतने बड़े जम्बूद्वीप को कोई देव जो महर्द्धिक-बहुत बड़ी ऋद्धि का स्वामी है, महाद्युति वाला है, महाबल वाला है, महायशस्वी है, महा ईश अर्थात् बहुत सामर्थ्य वाला है अथवा महासुखी है अथवा महाश्वास है-जिसका मन और इन्द्रियाँ बहुत व्यापक और स्व विषय को भलीभांति ग्रहण करने वाली है तथा जो विशिष्ट विक्रिया करने में अचिन्त्य शक्ति वाला है वह अवज्ञापूर्वक "अभी पार कर लेता हूँ, अभी पार कर लेता हूँ" ऐसा कह कर तीन चुटकियाँ बजाने में जितना समय लगता है उतने समय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मात्र में इस जंबूद्वीप के २१ चक्कर लगा कर वापस आ जावे-इतनी तीव्र गति से, इतनी उत्कृष्ट गति से, इतनी त्वरित गति से, इतनी चपल गति से, इतनी प्रचण्ड गति से, इतनी वेग वाली गति से, इतनी उद्धृत गति से, इतनी दिव्य गति से यदि वह देव एक दिन से यावत् छह मास तक निरन्तर चलता रहे तो भी रत्नप्रभा आदि के नरकावासों में से किसी को तो वह पार पा सकता है और किसी को पार नहीं पा सकता। इतने बड़े वे नरकावास हैं इसी तरह छठी नरक पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

अधःसप्तम पृथ्वी में ५ नरकावास हैं। उनमें से बीच का अप्रतिष्ठान नामक नरकावास लाख योजन विस्तार वाला है अतः उसका पार पाया जा सकता है किंतु शेष चार नरकावास जो असंख्यात कोटाकोटि योजन प्रमाण वाले हैं उनका पार पाना संभव नहीं है। इस तरह उपमा द्वारा नरकावासों का विस्तार कहा गया है।

नरकावास किसके बने हुए हैं?

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा किंमया पण्णत्ता?

गोयमा! सव्ववइरामया पण्णत्ता, तत्थ णं णरएसु बहवे जीवा य पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति, सासया णं ते णरगा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया, एवं जाव अहेसत्तमाए॥ ८५॥

कठिन शब्दार्थ - किंमया - किसके बने हुए, **सव्ववइरामया** - सर्वे वज्रमयाः, **अवक्कमंति** - अपक्रामन्ति-च्यवते हैं, **विउक्कमंति** - व्युत्क्रामन्ति-उत्पन्न होते हैं, **चयंति** - च्यवन्ते-चवते-पुराने निकलते हैं, **उववज्जंति** - उत्पद्यन्ते-नये आते हैं, **दव्वट्ठयाए** - द्रव्यार्थ से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास किसके बने हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास संपूर्ण रूप से वज्र के बने हुए हैं। उन नरकावासों में बहुत से जीव और पुद्गल च्यवते हैं और उत्पन्न होते हैं, पुराने निकलते हैं और नये आते हैं। द्रव्यार्थिक नय से वे नरकावास शाश्वत हैं परन्तु वर्ण पर्यायों से, गंध पर्यायों से, रस पर्यायों से और स्पर्श पर्यायों से वे अशाश्वत हैं। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - रत्नप्रभा आदि के नरकावास वज्र से बने हुए हैं उनमें खर बादर पृथ्वीकायिक जीव और पुद्गल आते जाते रहते हैं अर्थात् पहले वाले जीव निकलते हैं और नये जीव आकर उत्पन्न होते हैं। इसी तरह पुद्गलों के परमाणुओं का आना जाना बना रहता है। फिर भी रत्नप्रभा आदि के नरकावास शाश्वत हैं। द्रव्य नय की अपेक्षा से वे नित्य हैं, सदाकाल से थे, सदाकाल से हैं और सदाकाल रहेंगे। इस प्रकार द्रव्य से शाश्वत होने पर भी उनमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श बदलते रहते हैं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस अपेक्षा से वे अशाश्वत हैं। इस तरह अपेक्षा भेद से रत्नप्रभा आदि के नरकावास शाश्वत भी हैं और अशाश्वत भी हैं।

नरकों में उपपात

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया कओहिंतो उववज्जंति किं असण्णीहिंतो उववज्जंति, सरीसिवेहिंतो उववज्जंति, पक्खीहिंतो उववज्जंति, चउप्पएहिंतो उववज्जंति, उरगेहिंतो उववज्जंति, इत्थीयाहिंतो उववज्जंति, मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतो वि उववज्जंति।

असण्णी खलु पढमं दोच्चं च सरीसिवा तइय पक्खी।

सीहा जंति चउत्थिं उरगा पुण पंचमिं जंति॥ १॥

छट्ठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं जंति।

जाव अहेसत्तमाए पुढवीए णेरइया णो असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव णो इत्थियाहिंतो उववज्जंति मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या असंज्ञी जीवों से आकर उत्पन्न होते हैं, सरीसृपों से आकर उत्पन्न होते हैं, पक्षियों से आकर उत्पन्न होते हैं, चतुष्पदों से आकर उत्पन्न होते हैं, उरपरिसर्पों से आकर उत्पन्न होते हैं, स्त्रियों से आकर उत्पन्न होते हैं या मत्स्यों और मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक असंज्ञी जीवों से आकर भी उत्पन्न होते हैं यावत् मत्स्यों और मनुष्यों से आकर भी उत्पन्न होते हैं। इस संबंध में गाथा का अर्थ इस प्रकार है -

असंज्ञी जीव पहली नरक तक, सरीसृप दूसरी नरक तक, पक्षी तीसरी नरक तक, सिंह चौथी नरक तक, उरग पांचवीं नरक तक, स्त्रियां छठी नरक तक और मत्स्य एवं मनुष्य सातवीं नरक तक जाते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि कौन जीव कौनसी नरक तक उत्पन्न हो सकता है। असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय पहली नारकी तक, भुजपरिसर्प (नेवला चूहा आदि) दूसरी नरक तक, खेचर पक्षी (कौवा, कबूतर आदि) तीसरी नरक तक, स्थलचर अर्थात् बैल, घोड़ा, गधा, सिंह आदि चौथी नरक तक, उरपरिसर्प-अजगर आदि पांचवीं नरक तक, स्त्रियाँ (मनुष्य स्त्रियाँ, जलचर स्त्रियाँ) छठी नरक तक और पुरुषवेदी ज़लचर (मच्छ आदि) और मनुष्य सातवीं नरक तक जा सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकों की संख्या

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया एक्कसमएणं केवइया उववज्जंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव अहेसत्तमाए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिक जीव जघन्य एक, दो, तीन उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात भी उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवइ कालेणं अवहिया सिया?

गोयमा! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति णो चेव णं अवहिया सिया जाव अहेसत्तमाए।

कठिन शब्दार्थ - अवहीरमाणा - अपहार करने-निकाले जाने पर, **अवहिया** - अपहार-खाली

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों का प्रतिसमय एक एक का अपहार करने पर कितने समय में रत्नप्रभा खाली हो सकती है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में से यदि प्रति समय एक एक नैरयिक का अपहार किया जाय तो असंख्यात उत्सर्पिणियाँ, असंख्यात अवसर्पिणियां व्यतीत हो जाने पर भी यह खाली नहीं हो सकती। इसी प्रकार सातवीं पृथ्वी तक समझना चाहिये।

विवेचन - यदि प्रत्येक समय एक नैरयिक जीव रत्नप्रभा पृथ्वी से निकले तो संपूर्ण जीवों को निकलने में असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल लग जायगा। यह बात नैरयिक जीवों की संख्या बताने के लिये कही गई है वस्तुतः ऐसा न कभी हुआ है, न होता है और न होगा। शर्कराप्रभा आदि नरक के नैरयिक जीवों की संख्या भी इसी प्रकार समझनी चाहिये।

नैरयिक जीवों की अवगाहना

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तं जहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तधणूइं तिण्णि य रयणीओ छच्च अंगुलाइं, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्डाइज्जाओ रयणीओ।

दोच्चाए भवधारणिज्जे जहण्णओ अंगुलासंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्डाइज्जाओ रयणीओ उत्तरवेउव्विया जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं एक्कतीसं धणूइं एक्का रयणी।

तच्चाए भवधारणिज्जे एक्कतीसं धणूइं एक्का रयणी, उत्तरवेउव्विया बासट्ठिं धणूइं दोण्णि रयणीओ, चउत्थीए भवधारणिज्जे बासट्ठिं धणूइं दोण्णि य रयणीओ उत्तरवेउव्विया पणवीसं धणुसयं।

पंचमीए भवधारणिज्जे पणवीसं धणुसयं, उत्तरवेउव्विया अड्डाइज्जाइं धणुसयाइं, छट्ठीए भवधारणिज्जा अड्डाइज्जाइं धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया पंचधणुसयाइं, सत्तमाए भवधारणिज्जा पंचधणुसयाइं उत्तरवेउव्विए धणुसहस्सं॥ ८६॥

कठिन शब्दार्थ - **सरीरोगाहणा** - शरीरावगाहना, **भवधारणिज्जा** - भवधारणीय, **उत्तरवेउव्विया**- उत्तर वैक्रिय, **धणूइं** - धनुष, **रयणीओ** - रत्नि (हाथ), **अंगुलाइं** - अंगुल।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - **हे गौतम!** रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की शरीर-अवगाहना दो प्रकार की कही गई है। **वह इस प्रकार है** - १. भवधारणीय और २. उत्तरवैक्रिय। भवधारणीय अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट सात धनुष तीन हाथ छह अंगुल है। उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष अढाई हाथ है।

दूसरी नरक पृथ्वी के नैरयिकों की भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष ढाई हाथ है। उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट इकतीस धनुष एक हाथ है।

तीसरी नरक के नैरयिकों की भवधारणीय अवगाहना इकत्तीस धनुष एक हाथ और उत्तरवैक्रिय अवगाहना बासठ धनुष दो हाथ है।

चौथी नरक के नैरयिकों की भवधारणीय अवगाहना बासठ धनुष दो हाथ और उत्तरवैक्रिय अवगाहना एक सौ पच्चीस धनुष है।

पांचवीं नरक के नैरयिकों की भवधारणीय अवगाहना एक सौ पच्चीस धनुष और उत्तरवैक्रिय अवगाहना दो सौ पचास धनुष है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छठी नरक के नैरयिकों की भवधारणीय अवगाहना दो सौ पचास धनुष और उत्तरवैक्रिय अवगाहना पांच सौ धनुष है।

सातवीं नरक के नैरयिकों की भवधारणीय अवगाहना पांच सौ धनुष और उत्तरवैक्रिय अवगाहना एक हजार धनुष है।

विवेचन - नैरयिक जीवों की अवगाहना दो तरह की होती है - १. भवधारणीय और २. उत्तरवैक्रिय। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त शरीर का जो परिमाण रहता है अर्थात् जो स्वाभाविक परिमाण है उसे भवधारणीय कहते हैं। स्वाभाविक शरीर धारण करने के बाद किसी कार्य विशेष से जो शरीर बनाया जाता है उसे उत्तरवैक्रिय कहते हैं।

पहली नरक में भवधारणीय उत्कृष्ट अवगाहना सात धनुष, तीन रत्नियाँ और छह अंगुल होती है अर्थात् उत्सेधांगुल से उनकी अवगाहना सवा इकतीस हाथ होती है। इससे आगे की नरकों में दुगुनी दुगुनी अवगाहना होती है अर्थात् दूसरी नरक में पन्द्रह धनुष दो हाथ बारह अंगुल उत्कृष्ट अवगाहना होती है। तीसरी नरक में इकतीस धनुष एक हाथ, चौथी में बासठ धनुष दो हाथ, पांचवीं में एक सौ पच्चीस धनुष, छठी में ढाई सौ धनुष और सातवीं में पांच सौ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

सभी नरकों में भवधारणीय जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग होती है। वह उत्पत्ति के समय होती है। दूसरे समय में नहीं। उत्तरवैक्रिय में जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवां भाग होती है क्योंकि तथाविध प्रयत्न के अभाव में उत्तरवैक्रिय प्रथम समय में ही अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण ही होती है। प्रत्येक पृथ्वी के नैरयिकों की भवधारणीय अवगाहना से उनकी उत्तरवैक्रिय अवगाहना दुगुनी दुगुनी होती है।

टीका में नैरयिक जीवों की प्रस्तटों के अनुसार अवगाहना बताई है। किन्तु इस प्रकार प्रस्तटों के अनुसार अवगाहना का क्रम आगम से उचित नहीं लगता है। आगम वर्णन को देखते हुए प्रत्येक प्रस्तट में अवगाहना अपनी-अपनी नरक प्रायोग्य उत्कृष्ट भी हो सकती है। प्रज्ञापना सूत्र के पांचवें पद (जीवपर्याय) में उत्कृष्ट अवगाहना के नैरयिकों में स्थिति द्विस्थान पतित बताई है। अर्थात् उत्कृष्ट अवगाहना सातवीं नारकी के नैरयिकों की होती है। वह उत्कृष्ट अवगाहना २२ सागर से ३३ सागर तक की स्थिति वाले किसी भी नैरयिक में हो सकती है। इसी प्रकार प्रथम नरक में १० हजार वर्ष की स्थिति वाले (प्रथम प्रस्तट) में नैरयिकों की अवगाहना उत्कृष्ट अर्थात् ७॥। धनुष और ६ अंगुल भी हो सकती है इसी तरह अन्य नरकों में भी समझना चाहिये।

नैरयिकों में संहनन

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं सरीरया किं संघयणी पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, णेवट्ठी णेव छिरा णवि ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति, एवं जाव अहेसत्तमाए॥

कठिन शब्दार्थ- **ण** - नहीं, **अट्ठी** - हड्डी, **छिरा** - शिराएं, **ण्हारू** - स्नायु, **अणिट्ठा** - अनिष्ट।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीरों का संहनन कौनसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीरों का छह प्रकार के संहननों में से कोई संहनन नहीं है क्योंकि उनके शरीर में हड्डियां नहीं हैं, शिराएं नहीं है, स्नायु नहीं है। जो पुद्गल अनिष्ट और अमनाम होते हैं वे उनके शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक जीवों के छह संहननों में से कोई भी संहनन नहीं होता किंतु उनके शरीर के पुद्गल दुःखरूप होते हैं।

नैरयिकों में संस्थान

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं सरीरा किं संठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता तं जहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुंडसंठिया पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीरों का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीरों के संस्थान दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमें भवधारणीय शरीर हुंडक संस्थान वाले हैं और उत्तरवैक्रिय भी हुंडक संस्थान वाले हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक जीवों के संस्थान दो तरह के कहे गये हैं - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। नैरयिक जीवों के दोनों तरह से हुण्डक संस्थान ही होता है।

नैरयिकों के शरीर के वर्णादि

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं सरीरया केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! काला कालोभासा जाव परम किण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं सरीरया केरिसया गंधेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए अहिमडेइ वा तं चेव जाव अहेसत्तमा।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं सरीरया केरिसया फासेणं पण्णत्ता?

गोयमा! फुडियच्छविविच्छविया खरफरुसझामझुसिरा फासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमा॥ ८७॥

कठिन शब्दार्थ - फुडियच्छविविच्छविया - स्फुटितच्छविविच्छवयः - चमड़ी फटी हुई एवं झुर्रियों वाली होने से छाया-कांति रहित, **खरफरुसझामझुसिरा** - खरपरुषध्माम शुषिराणि-कठोर स्पर्श और छिद्र वाली होने से जिसकी छाया जली हुई वस्तु जैसी है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीर, वर्ण से किस प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीर काले, कालीप्रभा वाले यावत् अत्यंत काले कहे गये हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीर की गंध कैसी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीर की गंध जैसे कोई मृत सर्प का कलेवर हो इत्यादि पूर्ववत् कह देना चाहिये। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक के नैरयिकों के शरीर की गंध के विषय में समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीरों का स्पर्श किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के शरीर की चमड़ी फटी हुई होने से तथा झुर्रियाँ होने से छाया (कांति) रहित है, कठोर है, छेद वाली है और जली हुई वस्तु की तरह खुरदरी है। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - जिस प्रकार नरकावासों के वर्ण, गंध आदि के विषय में पूर्व में कहा है उसी प्रकार सातों नरक पृथ्वियों के नैरयिकों के शरीर के वर्ण, गंध, स्पर्श आदि के बारे में समझना चाहिये।

नैरयिकों का श्वासोच्छ्वास व आहार आदि

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं केरिसया पोग्गला ऊसासत्ताए परिणमंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं ऊसासत्ताए परिणमंति एवं जाव अहेसत्तमाए, एवं आहारस्स वि सत्तसु वि॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के श्वासोच्छ्वास के रूप में कैसे पुद्गल परिणत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जो पुद्गल अनिष्ट यावत् अमनाम होते हैं वे नैरयिकों के श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणत होते हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक के नैरयिकों के विषय में समझना चाहिये। जो पुद्गल अनिष्ट यावत् अमनाम होते हैं वे नैरयिकों के आहार रूप में परिणत होते हैं। इसी प्रकार सप्तम नरक पृथ्वी तक के नैरयिकों का कथन करना चाहिये।

विवेचन - सभी अशुभ पुद्गल नैरयिक जीवों के श्वासोच्छ्वास एवं आहार के रूप में परिणत होते हैं।

नैरयिकों में लेश्याएँ

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं कइ लेसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! एक्का काउलेसा पण्णत्ता, एवं सक्करप्पभाएऽवि वालुयप्पभाए पुच्छा, गोयमा! दो लेसाओ पण्णत्ताओ तं जहा - णीललेसा य काउलेसा य, तत्थ जे काउलेसा ते बहुतरा जे णीललेसा पण्णत्ता ते थोवा, पंकप्पभाए पुच्छा, एक्का णीललेसा पण्णत्ता, धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! दो लेस्साओ पण्णत्ताओ तं जहा - किण्हलेस्सा य णीललेस्सा य, ते बहुतरगा जे णीललेस्सा ते थोवतरगा जे किण्हलेसा, तमाए पुच्छा, गोयमा! एक्का किण्हलेस्सा, अहेसत्तमाए एक्का परम किण्हलेस्सा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में कितनी लेश्याएं कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में एक कापोत लेश्या कही गई है। इसी प्रकार शर्कराप्रभा में भी कापोत लेश्या है। बालुकाप्रभा संबंधी प्रश्न? हे गौतम! बालुकाप्रभा में दो लेश्याएं कही गई है। यथा - नीललेश्या और कापोत लेश्या। उनमें कापोत लेश्या वाले अधिक हैं और नीललेश्या वाले थोड़े हैं। पंकप्रभा संबंधी प्रश्न? पंकप्रभा में एक नील लेश्या कही गई है। धूमप्रभा विषयक प्रश्न? हे गौतम! धूमप्रभा में दो लेश्याएं कही गई है। यथा - कृष्ण लेश्या और नील लेश्या। उनमें जो नीललेश्या वाले हैं वे अधिक हैं और जो कृष्ण लेश्या वाले हैं वे थोड़े हैं। तमःप्रभा संबंधी पृच्छा? हे गौतम! तमःप्रभा में एक कृष्ण लेश्या है। अधःसप्तम पृथ्वी में एक परम कृष्ण लेश्या है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - नैरयिकों में लेश्या विषयक भगवती सूत्र में कही गई संग्रहणी गाथा इस प्रकार है -

काऊ दोसु तइयाए मीसिया णीलिया चउत्थीए।

पंचमियाए मीसा कण्हा तत्तो परम कण्हा।

अर्थात् - रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा इन दोनों पृथ्वियों में कापोत लेश्या होती है। तीसरी बालुकाप्रभा में मिश्र-नील और कापोत ये दो लेश्याएं होती हैं। चौथी पंकप्रभा में नील लेश्या होती है। पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी में मिश्र-कृष्ण लेश्या और नील लेश्या, ये दो लेश्याएं होती हैं। छठी तमःप्रभा पृथ्वी में कृष्ण लेश्या और सातवीं में परम कृष्ण लेश्या होती है।

आगमों में तो सर्वत्र सातवीं नरक के नैरयिकों में परम कृष्ण लेश्या ही बताई है। महाकृष्ण लेश्या नहीं बताई है। तथापि भाषा (थोकड़े) में उसी अर्थ में 'महा' शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः 'महा' शब्द के प्रयोग को अनुचित नहीं समझा जाता है फिर भी आगमकारों द्वारा प्रयुक्त 'परम' शब्द का प्रयोग करना तो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होने से विशेष उचित ही रहता है। इस शब्द के प्रयोग करने में आगमकारों के अन्य भी अनेकों आशय हो सकते हैं। सातवीं नरक में सात कर्मों का उत्कृष्ट बंध होना प्रज्ञापना सूत्र के २३ वें पद में बताया है। अन्य किसी भी दण्डकों में इससे अधिक संक्लिष्ट परिणाम संभव नहीं होने से पूज्य गुरुदेव सातवीं नरक की परमकृष्ण लेश्या को सर्वोच्च स्तर की फरमाया करते थे। ऐसे परिणाम मनुष्य आदि में होने पर उनकी लेश्या भी परमकृष्ण ही समझनी चाहिये। इससे अधिक संक्लिष्ट कृष्ण लेश्या अन्यत्र कहीं पर भी नहीं होती है।

'परम' शब्द अतिशय वाचक होने से 'महा' शब्द की अपेक्षा विशेष वजनदार व महत्त्वपूर्ण होने से इसका प्रयोग करना उचित ही रहता है।

नैरयिकों में दृष्टि

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी?

गोयमा! सम्मदिट्ठी वि मिच्छादिट्ठी वि सम्मामिच्छादिट्ठी वि, एवं जाव अहेसत्तमाए॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक क्या सम्यग्दृष्टि हैं मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक सम्यग्दृष्टि भी हैं, मिथ्यादृष्टि भी हैं और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि भी हैं। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक समझना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक जीव सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि तीनों तरह के होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकों में ज्ञानी अज्ञानी

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं णाणी अण्णाणी?

गोयमा! णाणी वि अण्णाणी वि, जे णाणी ते णियमा तिणाणी, तं जहा - आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी, जे अण्णाणी ते अत्थेगइया दुअण्णाणी अत्थेगइया तिअण्णाणी, जे दुअण्णाणी ते णियमा मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य, जे तिअण्णाणी ते णियमा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगणाणी वि, सेसा णं णाणी वि अण्णाणी वि तिण्णि जाव अहेसत्तमाए॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक ज्ञानी हैं या अज्ञानी?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा के नैरयिक ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले हैं - आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी। जो अज्ञानी हैं उनमें कोई दो अज्ञान वाले हैं और कोई तीन अज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं वे नियम से मति अज्ञानी और श्रुतअज्ञानी हैं। जो तीन अज्ञान वाले हैं वे नियम से मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी हैं। शेष नरकों के नैरयिक ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं वे तीन अज्ञान वाले हैं यावत् सातवीं नरक पृथ्वी तक समझना चाहिये।

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक जीव ज्ञानी तथा अज्ञानी दोनों तरह के होते हैं। जो सम्यग्दृष्टि हैं वे ज्ञानी हैं और जो मिथ्यादृष्टि हैं वे अज्ञानी हैं। ज्ञानी नैरयिक जीवों में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, ये तीन ज्ञान नियम से पाये जाते हैं। अज्ञानी नैरयिकों में दो अज्ञान भी होते हैं और तीन अज्ञान भी होते हैं। जो जीव असंज्ञी पंचेन्द्रिय से आते हैं वे अपर्याप्त अवस्था में दो अज्ञान (मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान) वाले होते हैं उनमें विभंगज्ञान नहीं होता। पर्याप्त अवस्था में तथा दूसरे मिथ्यादृष्टि जीवों को विभंगज्ञान भी होता है। इस अपेक्षा से तीन अज्ञान समझने चाहिये। दूसरी नरक से लेकर सातवीं नरक तक सम्यग्दृष्टि नैरयिकों में तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि नैरयिक जीवों में तीन अज्ञान होते हैं। क्योंकि शर्कराप्रभा आदि आगे की नरकों में संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही उत्पन्न होते हैं।

नैरयिकों में योग व उपयोग

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी?

गोयमा! तिण्णि वि, एवं जाव अहेसत्तमाए॥

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता?

गोयमा! सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं अद्धुट्ठगाउयाइं उक्कोसेणं चत्तारि गाऊयाइं। सकरप्पभाए पुढवीए णेरइया जहण्णेणं तिण्णि गाउयाइं उक्कोसेणं अद्धुट्ठाइं, एवं अद्धद्धं गाउयं परिहायइ जाव अहेसत्तमाए जहण्णेणं अद्धगाउयं उक्कोसेणं गाऊयं।]

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक क्या मनयोग वाले हैं, वचनयोग वाले हैं या काययोग वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक तीनों योग वाले (मनयोग वाले, वचनयोग वाले और काययोग वाले) हैं। अधःसप्तम पृथ्वी तक ऐसा ही कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक क्या साकारोपयोग वाले हैं या अनाकारोपयोग वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक साकारोपयोग वाले भी हैं और अनाकारोपयोग वाले भी हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

[हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अवधि से कितना क्षेत्र जानते देखते हैं?

हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अवधि से जघन्य साढे तीन कोस उत्कृष्ट से चार कोस क्षेत्र को जानते देखते हैं। शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक जघन्य तीन कोस, उत्कृष्ट से साढे तीन कोस क्षेत्र को जानते देखते हैं। इस प्रकार आधा-आधा कोस घटा कर कह देना चाहिये यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक जघन्य आधा कोस और उत्कृष्ट से एक कोस क्षेत्र जानते देखते हैं।]

विवेचन - नैरयिक जीवों में मनयोग, वचनयोग और काययोग-तीनों योग होते हैं। नैरयिक जीव साकारोपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग और अनाकारोपयोग अर्थात् दर्शनोपयोग-दोनों तरह के उपयोग वाले होते हैं।

नैरयिक जीवों का अवधि का क्षेत्र इस प्रकार समझना चाहिये - पहली नरक में चार गव्यूति (कोस) तक उत्कृष्ट अवधि (अवधिज्ञान या विभंगज्ञान) होता है। दूसरी में साढे तीन गव्यूति। तीसरी में तीन गव्यूति। चौथी में अढाई गव्यूति। पांचवीं में दो गव्यूति। छठी में डेढ गव्यूति और सातवीं में एक गव्यूति। ऊपर लिखे परिमाण में से आधी गव्यूति कम कर देने पर हर एक नरक में जघन्य अवधि का परिमाण निकल आता है अर्थात् पहली नरक में साढे तीन गव्यूति अवधि (अवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान) होता है। दूसरी में तीन, तीसरी में ढाई, चौथी में दो, पांचवीं में डेढ, छठी में एक और सातवीं में आधी गव्यूति जघन्य अवधि होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहां पर नैरयिकों में जो अवधि का क्षैत्रिक विषय चार कोस आदि बताया गया है वह प्रमाण अंगुल के कोस से समझना चाहिये। प्रमाणांगुल के चार कोस का प्रमाण अंगुल का एक योजन होता है। ऐसे एक योजन में वर्तमान के चार हजार लगभग किलोमीटर होने की संभावना की जाती है। अवधि का क्षैत्रिक विषय सर्वत्र प्रमाण अंगुल के माप से ही बताया गया है।

नैरयिकों में समुद्घात

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा - वेयणा समुग्घाए, कसाय समुग्घाए, मारणंतिय समुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए एवं जाव अहेसत्तमाए॥ ८८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के चार समुद्घात कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात और वैक्रिय समुद्घात। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

नैरयिकों की भूख-प्यास

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केरिसयं खुहप्पिवासं पच्चणुभवमाणा विहरंति?

गोयमा! एगमेगस्स णं रयणप्पभाए पुढविणेरइयस्स असब्भावपट्ठवणाए सव्वोदही वा सव्वपोग्गले वा आसगंसि पक्खिवेज्जा णो चेव णं से रयणप्पभाए पुढवीए णेरइए तित्ते वा सिया वितण्हे वा सिया, एरिसया णं गोयमा! रयणप्पभाए णेरइया खुहप्पिवासं पच्चणुभवमाणा विहरंति, एवं जाव अहेसत्तमाए॥

कठिन शब्दार्थ - असब्भावपट्ठवणाए - असद्भावप्रस्थापनया-असद्भाव (असत्) कल्पना से **सव्वोदही** - सभी समुद्रों को, **सव्वपोग्गले** - सभी पुद्गलों को, **आसगंसि** - मुख में, **पक्खिवेज्जा** - प्रक्षिपेत्-निक्षिपेत्-डाल दिया जाये, **खुहप्पिवासं** - क्षुत् पिपासाम्-क्षुधा (भूख) पिपासा (प्यास)-भूख प्यास की इच्छा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक भूख और प्यास की कैसी वेदना का अनुभव करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असत् कल्पना के अनुसार यदि किसी एक रत्नप्रभा नैरयिक के मुख में सब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्रों का जल तथा सब खाद्य पुद्गलों को डाल दिया जाय तो भी उस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक की भूख तृप्त नहीं हो सकती और न ही उसकी प्यास शांत हो सकती है। हे गौतम! ऐसी तीव्र भूख प्यास की वेदना उन रत्नप्रभा के नैरयिकों को होती है। इसी प्रकार यावत् अध:सप्तम पृथ्वी तक के नैरयिकों के विषय में समझना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक जीव सदैव भूख व प्यास की अग्नि में जलते रहते हैं। संसार की सारी भोजन सामग्री से भी उन्हें तृप्ति नहीं होती। प्यास के मारे उनके कण्ठ, ओष्ठ, तालु, जीभ आदि सूखे रहते हैं। सारे समुद्रों के पानी से भी उनकी प्यास नहीं बुझ सकती है।

नैरयिकों की विकुर्वणा

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पि पभू विउव्वित्तए?

गोयमा! एगत्तं पि पभू पुहुत्तं पि पभू विउव्वित्तए, एगत्तं विउव्वेमाणा एगं महं मोग्गररूवं वा एवं मुसुंढि करवत्त असिसत्तीहलगया मुसलचक्कणारायकुंततोमर-सूललउडभिंडमाला य जाव भिंडमालरूवं वा पुहुत्तं विउव्वेमाणा मोग्गररूवाणि वा जाव भिंडमालरूवाणि वा ताइं संखेज्जाइं णो असंखेज्जाइं संबद्धाइं णो असंबद्धाइं सरिसाइं णो असरिसाइं विउव्वंति विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं अभिहणमाणा अभिहणमाणा वेयणं उदीरेंति उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं णिट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं, एवं जाव धूमप्पभाए पुढवीए।

छट्ठसत्तमासु णं पुढवीसु णेरइया बहू महंताइं लोहियकुंथूरूवाइं वइरामइतुंडाइं गोमयकीडसमाणाइं विउव्वंति विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा समतुरंगेमाणा खायमाणा खायमाणा सयपोरागकिमिया विव चालेमाणा चालेमाणा अंतो अंतो अणुप्पविसमाणा अणुप्पविसमाणा वेयणं उदीरेंति उज्जलं जाव दुरहियासं॥

कठिन शब्दार्थ - **एगत्तं** - एक रूप की, **पुहुत्तं** - अनेक रूपों की, **विउव्वेमाणा** - विकुर्वणा करते हुए, **पभू** - समर्थ, **संबद्धाइं** - संबद्ध-अपने शरीर से संलग्न, **असंबद्धाइं** - असंबद्ध, **सरिसाइं** - सदृशानि-सदृश-स्व शरीर तुल्य, **असरिसाइं** - असदृश-विरूप, **अभिहणमाणा** - चोट पहुंचा कर, **उज्जलं** - उज्ज्वल लेश मात्र भी सुख नहीं होने से, जाज्वल्यमान **विउलं** - विपुल-सकल शरीर व्यापी होने से विस्तीर्ण, **पगाढं** - प्रगाढ़-मर्म देशव्यापी होने से अतिगाढ, **कक्कसं** - कर्कश-जैसे पाषाणखंड

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का संघर्ष शरीर के अवयवों को तोड़ देता है उसी तरह से वह वेदना आत्मप्रदेशों को तोड़ देने वाली होने से कर्कश, **कडुयं** - कटुक, **फरुसं** - परुष (कठोर-मन में रूक्षता पैदा करने वाली), **णिट्ठुरं** - निष्ठुर-अशक्य प्रतीकार होने से दुर्भेद्य, **चंडं** - चण्ड-रौद्र अध्यवसाय का कारण होने से चण्ड, **दुग्गं** - दुर्लंघ्य, **दुरहियासं** - दुःसह्य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक क्या एक रूप बनाने में समर्थ हैं या बहुत से रूप बनाने में समर्थ हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक एक रूप भी बना सकते हैं और अनेक रूप भी बना सकते हैं। एक रूप बनाते हुए वे एक महान् मुद्गर रूप बनाने में समर्थ हैं इसी प्रकार एक भुसंढी, करवत, तलवार, शक्ति, हल, गदा, मूसल, चक्र, बाण, भाला, तोमर, शूल, लकुट और भिण्डमाल बनाते हैं और बहुत रूप बनाते हुए बहुत से मुद्गर, भुसंढी यावत् भिण्डमाल बनाते हैं। इस प्रकार विकुर्वणा करते हुए वे संख्यात शस्त्रों की ही विकुर्वणा करते हैं, असंख्यात शस्त्रों की नहीं। संबद्ध की विकुर्वणा करते हैं, असंबद्ध की नहीं। सदृश की रचना करते हैं, असदृश की नहीं। इन विविध शस्त्रों की विकुर्वणा करके वे नैरयिक परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करके वेदना उत्पन्न करते हैं। वह वेदना उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, कठोर, निष्ठुर, चण्ड तीव्र, दुःख रूप, दुर्लंघ्य और दुःसह्य होती है। इस प्रकार धूमप्रभा पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

छठी और सातवीं पृथ्वी के नैरयिक बहुत और बड़े लाल कुंथुओं की विकुर्वणा करते हैं जिनका मुख मानो वज्र जैसा होता है और जो गोबर के कीड़े जैसे होते हैं, ऐसे कुंथुओं की रचना करके वे एक दूसरे के शरीर पर चढ़ते हैं, उनके शरीर को बार बार काटते हैं और सौ पर्व वाले इक्षु के कीड़ों की तरह भीतर ही भीतर सनसनाहट करते हुए घुस जाते हैं और उनको उज्ज्वल यावत् दुःसह्य वेदना उत्पन्न करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नरकों में वेदना का वर्णन किया गया है। पांचवीं नरक तक आपस में एक दूसरे के प्रहार से वेदना होती है अर्थात् नैरयिक जीव वैक्रिय शरीर होने से नाना तरह के भयानक रूप बना कर एक दूसरे को कष्ट पहुँचाते हैं। गदा, मुद्गर आदि शस्त्र बना कर एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं। बिच्छू, सांप आदि बन कर काटते हैं, कीड़े बन कर सारे शरीर में घुस जाते हैं। इस तरह के रूप नैरयिक जीव संख्यात ही कर सकता है, असंख्यात नहीं। एक शरीर से सम्बद्ध (जुड़े हुए) ही कर सकता है, असम्बद्ध नहीं। एक सरीखे ही कर सकता है, भिन्न भिन्न प्रकार के नहीं। इस तरह पांचवीं नरक तक नैरयिक जीव एक दूसरे के द्वारा दुःख का अनुभव करते हैं।

छठी और सातवीं नरक के नैरयिक भी तरह तरह के कीड़े बन कर एक दूसरे को कष्ट पहुँचाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरकों में शीत उष्ण वेदना

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं किं सीयवेयणं वेदेंति, उसिणवेयणं वेदेंति, सीओसिणवेयणं वेदेंति?

गोयमा! णो सीयं वेयणं वेदेंति, उसिणं वेयणं वेदेंति णो सीओसिणं, एवं जाव वालुयप्पभाए, पंकप्पभाए पुच्छा, गोयमा! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेयंति, णो सीओसिणवेयणं वेयंति, ते बहुतरगा जे उसिणं वेयणं वेदेंति, ते थोवतरगा जे सीयं वेयणं वेदेंति।

धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेदेंति, णो सीओसीणवेयणं वेदेंति, ते बहुतरगा जे सीयवेयणं वेदेंति ते थोवतरगा जे उसिणवेयणं वेदेंति।

तमाए पुच्छा, गोयमा! सीयं वेयणं वेदेंति णो उसिणं वेयणं वेदेंति णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति, एवं अहेसत्तमाए णवरं परमसीयं॥

कठिन शब्दार्थ - बहुतरगा - बहुतर का प्राकृत रूप बहुत अधिक, थोवतरगा - स्तोकतर का प्राकृत रूप थोड़े, सीओसिणवेयणं - शीतोष्ण वेदना।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक क्या शीतवेदना वेदते हैं, उष्ण वेदना वेदते हैं या शीतोष्ण वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक शीत वेदना नहीं वेदते हैं, उष्ण वेदना वेदते हैं, शीतोष्ण वेदना नहीं वेदते हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में समझ लेना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक क्या शीतवेदना वेदते हैं आदि प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक शीतवेदना भी वेदते हैं, उष्ण वेदना भी वेदते हैं किंतु शीतोष्ण वेदना नहीं वेदते हैं। वे नैरयिक बहुत हैं जो उष्ण वेदना वेदते हैं और वे नैरयिक कम हैं जो शीत वेदना वेदते हैं।

धूमप्रभा पृथ्वी विषयक प्रश्न? हे गौतम! धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक शीतवेदना भी वेदते हैं, उष्ण वेदना भी वेदते हैं किंतु शीतोष्ण वेदना नहीं वेदते। वे नैरयिक जीव अधिक हैं जो शीत वेदना वेदते हैं और वे नैरयिक जीव अल्प हैं जो उष्ण वेदना वेदते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमःप्रभा विषयक प्रश्न? हे गौतम! तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक शीत वेदना वेदते हैं, उष्ण वेदना नहीं वेदते और शीतोष्ण वेदना भी नहीं वेदते हैं।

तमस्तमःप्रभा पृथ्वी विषयक प्रश्न? हे गौतम! अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक परम शीत वेदना वेदते हैं, उष्ण वेदना नहीं वेदते और शीतोष्ण वेदना नहीं वेदते हैं।

विवेचन - क्षेत्र स्वभाव से रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा इन तीन नरकों में उष्णवेदना होती है। चौथी नरक में ऊपर के अधिक नरकावासों में उष्ण वेदना होती है और नीचे वाले नरकावासों में शीत वेदना होती है। पांचवीं नरक के अधिक नरकावासों में शीत वेदना और थोड़ों में उष्ण वेदना होती है। छठी और सातवीं नरक में शीत वेदना ही होती है। यह वेदना नीचे वाले नरकों में अनन्तगुणी तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम होती है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केरिसयं णिरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति?

गोयमा! ते णं तत्थ णिच्चं भीया णिच्चं तसिया णिच्चं छुहिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं उवप्पुया णिच्चं वहिया णिच्चं परममसुभमउलमणुबद्धं णिरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति, एवं जाव अहेसत्तमाए णं पुढवीए पंच अणुत्तरा महइमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तं जहा - काले महाकाले रोरुए महारोरुए अप्पइट्ठाणे, तत्थ इमे पंच महापुरिसा अणुत्तरेहिं दंडसमादाणेहिं कालमासे कालं किच्चा अप्पइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा, तं जहा - १ रामे जमदग्गिपुत्ते, २ दढाऊ लच्छइपुत्ते, ३ वसू उवरिचरे, ४ सुभूमे कोरव्वे, ५ बंभदत्ते चुलणिसुए, ते णं तत्थ णेरइया जाया कालाकालो० जाव परम किण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, ते णं तत्थ वेयणं वेदेंति उज्जलं विउलं जाव दुरहियासं॥

कठिन शब्दार्थ - णिच्चं - नित्य, **भीया** - डरे हुए, **तसिया** - त्रसित, **छुहिया** - क्षुधित-भूखे, **उव्विग्गा**- उद्विग्न, **उवप्पुया**- उपद्रवग्रस्त **वहिया** - वधिक, क्रूर परिणाम वाले, **परममसुभमउलमणुबद्धं**- परममशुभमतुलमनुबद्धम्-परम अशुभ रूप एवं जिसकी तुलना नहीं की जा सके ऐसे, अनुबद्ध- निरन्तर परंपरा से ही अशुभ रूप से चले आये हुए, **णिरयभवं** - नरक के भव को, **पच्चणुभवमाणा** - अनुभव करते हुए, **दंडसमादाणेहिं** - दण्ड समादानैः-दण्ड समादानों से-सर्वोत्कृष्ट प्राणी हिंसा आदि पापकर्मों के कारण।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के नरक भव का अनुभव करते हुए विचरते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक वहां नित्य डरे हुए रहते हैं, नित्य त्रसित रहते हैं, नित्य भूखे रहते हैं, नित्य उद्विग्न रहते हैं, नित्य उपद्रवग्रस्त रहते हैं, नित्य वधिक के समान क्रूर परिणाम वाले, नित्य परम अशुभ और निरन्तर अशुभ रूप से चले आये हुए नरक भव का अनुभव करते हुए विचरते हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

अधःसप्तम पृथ्वी में पांच अनुत्तर बड़े से बड़े महानरक कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान। वहां ये पांच महापुरुष सर्वोत्कृष्ट हिंसा आदि पाप कर्मों को एकत्रित कर मृत्यु के समय मर कर अप्रतिष्ठान नरकावास में नैरयिक रूप में उत्पन्न हुए - १. जमयदग्नि का पुत्र परशुराम २. लच्छतिपुत्र दृढायु ३. उपरिचर वसुराज ४. कौरव्य सुभूम और ५. चुलणिपुत्र ब्रह्मदत्त। ये वहां नैरयिक रूप में उत्पन्न हुए जो वर्ण से काले, काली छवि वाले यावत् अत्यंत काले वर्ण वाले कहे गये हैं। वे वहां अत्यंत उज्ज्वल-जाज्वल्यमान् विपुल यावत् असह्य वेदना को वेदते हैं।

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी आदि के नैरयिक जीव क्षेत्र स्वभाव से ही अत्यंत गाढ अंधकार को देख कर सदैव डरे हुए और शंकित रहते हैं। परमाधार्मिक देवों के कष्ट और परस्पर की वेदना से नित्य त्रस्त रहते हैं। हमेशा भयंकर क्षुधाग्नि से जलते रहते हैं, नित्य दुःखानुभव के कारण उद्विग्न रहते हैं, नित्य उपद्रवग्रस्त होने से तनिक भी साता नहीं पाते हैं वे वहां नित्य अशुभ, अतुल, अशुभ रूप से निरन्तर उपचित नरकभव का अनुभव करते हैं।

सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में ये पांच महापुरुष सर्वोत्कृष्ट हिंसा आदि पाप कर्मों को उपार्जन करके वहां की सर्वोत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम में उत्पन्न हुए हैं - १. जमदग्नि का पुत्र परशुराम २. लिच्छति (लिच्छवी) पुत्र दृढायु (टीका के अनुसार छातीपुत्र दाढाल) ३. उपरिचर वसु राजा ४. कौरव गोत्रोत्पन्न आठवां चक्रवर्ती सुभूम ५. चुलनीपुत्र ब्रह्मदत्त बारहवां चक्रवर्ती।

नरक की उष्ण वेदना

उसिणवेयणिज्जेसु णं भंते! णेरइएसु णेरइया केरिसयं उसिणवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति?

गोयमा! से जहाणामए कम्मारदारए सिया तरुणे बलवं जुगवं अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणि-पाय-पास-पिट्ठंतरोरुसंघायपरिणए लंघणपवणजवणवग्गणपमद्दणसमत्थे तलजमलजुयल(फलिहणिभ)बाहू घणणिचियवलियवट्टखंधे चम्मेट्ठग-दुहण-मुट्ठिय समाहयणिचियगत्तगत्ते उरस्सबलसमण्णागए छेए दक्खे पट्ठे कुसले णिउणे मेहावी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिउणसिप्पोवगए एगं महं अयपिंडं उदगवारसमाणं गहाय तं ताविय ताविय कोट्टिय कोट्टिय उब्भिंदिय उब्भिंदिय चुण्णिय चुण्णिय जाव एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं अद्धमासं संहणेज्जा, से णं तं सीयं सीईभूयं अओमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेयणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से णं तं उम्मिसिय-णिमिसियंतरेणं पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्ति कट्टु पविरायमेव पासेज्जा पविलीणमेव पासेज्जा पविद्धत्थमेव पासेज्जा णो चेव णं संचाएइ अविरायं वा अविलीणं वा अविद्धत्थं वा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए।

कठिन शब्दार्थ - **कम्मारदारए** - लुहार का लड़का, **तरुणे** - तरुण-युवा-विशिष्ट अभिनव वर्ण आदि वाला, **जुगवं** - युगवान्-कालादिजन्य उपद्रवों से रहित, **अप्पायंके** - रोग रहित, **थिरग्गहत्थे** - जिसके हाथों के अग्रभाग स्थिर हैं, **दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुसंघायपरिणए** - जिसके हाथ, पांव, पसलियां पीठ और जंघाएं सुदृढ़ और मजबूत है, **लंघणपवणजवणवग्गणपमद्दणसमत्थे** - लांघने, कूदने, वेग के साथ चलने और फांदने में समर्थ, **तलजमलजुयल (फलिहणिभ) बाहू** - दो ताल वृक्ष के जैसे सरल लंबे पुष्ट हाथों वाला, **घणणिचियवलियवट्टखंधे** - जिसके कंधे घने पुष्ट और गोल हैं, **चम्मेट्ठगदुघणमुट्ठियसमाहयणिचियगत्तगत्ते** - चमड़े की बेंत, मुद्गर तथा मुष्टि के प्रहारों से परिपुष्ट बने हुए शरीर वाला, **उरस्सबलसमण्णागए** - आन्तरिक उत्साह और बल से युक्त, **छेए** - छेक-बहत्तरकला निपुण, **दक्खे** - दक्ष-शीघ्रता से काम करने वाला, **पट्ठे** - प्रष्ठ:-हितमितभाषी, **णिउणसिप्पोवगए** - निपुण शिल्प युक्त, **अयपिंडं** - लोहे के गोले को, **उदगवारसमाणं** - जल से भरे छोटे घड़े के समान, **ताविय**- तपा कर, **कोट्टिय** - कूट कर, **उब्भिंदिय** - काट कर, **चुण्णिय** - चूर्ण कर, **संहणेज्जा** - ऐसा करता रहे, **संदंसएणं** - संडासी से, **उम्मिसियणिमिसियंतरेण** - उन्मेष-निमेष (पल भर) में, **पच्चुद्धरिस्सामि** - निकाल लूंगा, **पविरायमेव** - प्रस्फुटित होता हुआ, **पासेज्जा** - पश्येत्-देखता है (दिखाई देता है) **पविद्धत्थमेव** - भस्मीभूत होता हुआ, **अविरायं** - अप्रस्फुटित, **अविलीणं** - अविलीन, **अविद्धत्थं** - अविध्वस्त।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! उष्ण वेदना वाले नरकों में नैरयिक किस प्रकार की उष्ण वेदना का अनुभव करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई लुहार का लड़का जो तरुण, बलवान, युगवान् और रोग रहित हो, जिसके दोनों हाथों का अग्रभाग स्थिर हो, जिसके हाथ, पांव, पसलियां, पीठ और जंघाएं दृढ और मजबूत हों, जो लांघने, कूदने, वेग के साथ चलने और फांदने में समर्थ हो, जो कठोर वस्तु को भी चूरचूर कर सकता हो, जो दो ताल वृक्ष जैसे सरल लंबे पुष्ट बाहु वाला हो, जिसके कंधे घने पुष्ट

और गोल हों, जो चमड़े की बेंत, मुद्गर तथा मुट्ठी के आघात से घने और पुष्ट बने हुए अवयवों वाला हो, जो आंतरिक उत्साह से युक्त हो, जो बहत्तर कला निपुण, दक्ष, हितमितभाषी, कार्यकुशल, निपुण बुद्धिमान और निपुण शिल्पयुक्त हो वह एक पानी से भरे हुए छोटे घड़े के समान बड़े लोहे के पिण्ड को लेकर उसे तपा-तपा कर, कूट-कूट कर, काट काट कर उसका चूर्ण बनावे ऐसा एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् अधिक से अधिक पन्द्रह दिन तक ऐसा ही करता रहे अर्थात् चूर्ण का गोला बना कर उसी क्रम से चूर्णादि करता रहे और गोला बनाता रहे, ऐसा करने से वह मजबूत फौलाद का गोला बन जायेगा फिर उसे ठंडा करें। उस ठंडे लोहे के गोले को संडासी से पकड़ कर असत् कल्पना से उष्ण वेदना वाले नरकों में रख दे, इस विचार के साथ कि मैं एक उन्मेष-निमेष (पल भर) में उसे फिर निकाल लूंगा परन्तु वह क्षण भर में ही उसे प्रस्फुटित (फूटता) हुआ देखता है, मक्खन की तरह गलता हुआ देखता है, भस्मीभूत होते हुए देखता है। वह लुहार का लड़का उस लोहे के गोले को अस्फुटित, अगलित, अविध्वस्त रूप में पुनः निकाल पाने में समर्थ नहीं होता है।

विवेचन - उष्ण वेदना वाले नरकों में इतनी भीषण उष्णता है कि लोहे का फौलादी गोला भी वहां की उष्णता से क्षण भर में पिघल कर नष्ट हो जाता है।

से जहा णामए मत्तमातंगे दुपए कुंजरे सट्ठिहायणे पढमसरयकालसमयंसि वा चरमणिदाघकालसमयंसि वा उण्हाभिहए तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए आउरे सुसिए पिवासिए दुब्बले किलंते एक्कं महं पुक्खरिणिं पासेज्जा चाउक्कोणं समतीरं अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलं संछण्णपत्तभिसमुणालं बहुउप्पल-कुमुय-णलिण-सुभग-सोगंधिय-पुंडरीय-महापुंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-केसरफुल्लोवचियं छप्पय-परिभुज्जमाणकमलं अच्छविमलसलिलपुण्णं परिहत्थभमंतमच्छकच्छभं अणेगसउणगणमिहुणयविरइय सद्दुण्णइयमहुरसरणाइयं तं पासइ तं पासित्ता तं ओगाहइ ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हं पि पविणेज्जा तण्हं पि पविणेज्जा खुहं पि पविणेज्जा जरं पि पविणेज्जा दाहं पि पविणेज्जा णिद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा सइं वा रइं वा धिइं वा मइं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा, एवामेव गोयमा! असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेयणिज्जेहिंतो णरएहिंतो णेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं मणुस्सलोयंसि भवंति गोलियालिंगाणि वा सोंडियालिंगाणि वा भिंडियालिंगाणि वा अयागराणि वा तंबागराणि वा तउयागराणि वा सीसागराणि वा रूप्पागराणि वा सुवण्णागराणि वा हिरण्णागराणि वा कुंभारागणीइ वा मुसागणीइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा इट्टयागणीइ वा कवेल्लुयागणीइ वा लोहारंबरिसेइ वा जंतवाडचुल्लीइ वा हंडिय लित्थाणि वा गोलियलित्थाणि वा सोंडियलित्थाणि वा णलागणीइ वा तिलागणीइ वा तुसागणीइ वा, तत्ताइं समजोईभूयाइं फुल्लकिंसुयसमाणाइं उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं जालासहस्साइं पमुच्चमाणाइं इंगालसहस्साइं पविक्खरमाणाइं अंतो अंतो हुहुयमाणाइं चिट्ठंति ताइं पासइ ताइं पासित्ता ताइं ओगाहइ ताइं ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हं पि पविणेज्जा तण्हं पि पविणेज्जा खुहं पि पविणेज्जा जरं पि पविणेज्जा दाहं पि पविणेज्जा णिद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा सइं वा रइं वा धिइं वा मइं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूए संकसमाणे संकसमाणे वा सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा भवेयारूवे सिया? णो इणट्ठे समट्ठे गोयमा! उसिणवेयणिज्जेसु णरएसु णेरइया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव उसिणवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति॥

कठिन शब्दार्थ - **मत्तमातंगे** - मदोन्मत्त हस्ती, **कुंजरे** - कुंजर (हाथी), **सट्ठिहायणे** - साठ वर्ष का, **पढमसरयकालसमयंसि** - प्रथम शरत्काल के समय में, **चरमणिदाघकाल समयंसि** - निदाघ-ग्रीष्म ऋतु के चरम-अंतिम समय में, **उण्हाभिहए** - उष्णाभिहत-गर्मी से तप्त होकर, **तण्हाभिहए** - तृषाभिहत-प्यास से आकुल व्याकुल, **सुसिए** - शुषितः-जिसके कण्ठ और तालु दोनों सूख गये हैं **पिवासिए** - पिपासित-तृषा वेदना से पीडित, **दुब्बले** - दुर्बल, **किलंते** - क्लान्त, **पुक्खरिणिं** - पुष्करिणी को, **अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलं** - जो क्रमशः गहरी होती गई है जिसका जल स्थान अथाह (गंभीर) है, जिसका जल शीतल है, **संछण्णपत्तभिसमुणालं** - कमलपत्र कंद और मृणाल से ढंकी हुई, **बहुउप्पलकुमुदणलिण-सुभग-सोगंधियपुंडरीय महापुंडरीय सयपत्त सहस्सपत्त, केसरफुल्लोवचियं** - बहुत से खिले हुए केसर प्रधान उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि कमलों से युक्त, **छप्पयपरिभुज्जमाणकमल** - कमलों पर भ्रमर रसपान कर रहे हैं, **परिहत्थभमंतमच्छकच्छभं** - बहुत से मच्छ कच्छप इधर उधर घूम रहे हों, **अच्छविमलसलिलपुण्णं** - स्वच्छ और निर्मल जल से भरी हुई, **अणेगसउणगण मिहुणयविरइय सद्दुण्णइयमहुरसरणाइयं** - अनेक पक्षियों के जोडों के चहचहाने के मधुर स्वर से शब्दायमान **पविणेज्जा** - प्रविनयेत्-शांत कर लेता है, **सइं** - स्मृति को, **रइं** - रति को, **धिइं** - धृति-धैर्य को **गोलियालिंगाणि** - गुड पकाने की भट्टी, **फुल्लकिंसुयसमाणाइं** - पलाश के फूलों की तरह लाल, **उक्कासहस्साइं** - हजारों उल्काओं को, **जालासहस्साइं** - हजारों ज्वालाओं को, **पविक्खरमाणाइं** - बिखेर रहे हों, **णिद्दाएज्ज** - निद्रा लेता है, **पयलाएज्ज** - प्रचला-खडे खडे ऊंघ लेता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जैसे कोई मदोन्मत्त हाथी जो साठ वर्ष का है प्रथम शरत्काल समय में अथवा अंतिम ग्रीष्मकाल समय में गर्मी से पीडित हो कर तृषा से आकुल व्याकुल होकर, दावाग्नि की ज्वालाओं से झुलसता हुआ, आतुर, शुषित, पिपासित, दुर्बल और क्लान्त बना हुआ एक बड़ी पुष्करिणी को देखता है जिसके चार कोने हैं, जो समान तीर (किनारे) वाली है, जो क्रमशः आगे आगे गहरी है जो अथाह जलवाली है जिसका जल शीतल है, जो कमलपत्र कंद और मृणाल से ढंकी हुई है जो बहुत से खिले हुए केसर प्रधान उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि विविध कमलों से युक्त है जिसके कमलों पर भ्रमर रसपान कर रहे हैं, जो स्वच्छ निर्मल जल से भरी हुई है जिसमें बहुत से मच्छ, कच्छप इधर उधर घूम रहे हों, अनेक पक्षियों के जोडों के चहचहाने के शब्दों के कारण से जो मधुर स्वर से शब्दायमान हो रही है ऐसी पुष्करिणी को देख कर वह उसमें प्रवेश करता है, उसमें प्रवेश करके वह अपनी गर्मी को शांत करता है, तृषा को दूर करता है, भूख को मिटाता है, ताप जनित ज्वर को नष्ट करता है और दाह को उपशान्त करता है। इस प्रकार गर्मी आदि के शांत होने पर वह वहां निद्रा लेने लगता है, खड़े खड़े ऊंघने लगता है उसकी स्मृति, रति (आनंद), धृति (धैर्य) तथा मति (चित्त की स्वस्थता) लौट आती है वह इस प्रकार शीतल और शांत होकर धीरे धीरे वहां से निकलता हुआ अत्यंत साता-सुख का अनुभव करता है। इसी प्रकार हे गौतम! असत् कल्पना के अनुसार उष्णवेदनीय नरकों से निकल कर कोई नैरयिक जीव इस मनुष्य लोक में जो गुड पकाने की भट्टियां, शराब बनाने की भट्टियां, बकरी की (मिंगनियें) की अग्निवाली भट्टियां, लोहा गलाने की भट्टियां, तांबा गलाने की भट्टियां, इसी तरह रांगा, सीसा, चांदी, सोना को गलाने की भट्टियां, कुम्भकार के भट्टे की अग्नि, मूस की अग्नि, ईंट पकाने के भट्टे की अग्नि, कवेलु पकाने के भट्टे की अग्नि, लोहार के भट्टे की अग्नि, इक्षुरस पकाने की चूल की अग्नि, तिल की अग्नि, तुष की अग्नि, बांस की अग्नि आदि जो अग्नियां हैं और अग्नि के स्थान हैं जो तप्त हैं, तपकर अग्नि तुल्य हो गये हैं, पलाश के फूलों की तरह लाल लाल हो गये हैं, जिनमें से हजारों चिनगारियां निकल रही हैं, हजारों ज्वालाएं निकल रही हैं, हजारों अंगारें बिखर रहे हैं जो अत्यंत जाज्वल्यमान हैं, अंदर ही अंदर धू-धू धधकते हैं ऐसे अग्नि स्थानों और अग्नियों को वह नैरयिक जीव देखे और उनमें प्रवेश करे तो वह नरक की उष्णता को शांत करता है, तृषा, क्षुधा और दाह को मिटाता है ऐसा होने से वह वहां नींद लेता है, खड़े खड़े ऊंघता है, स्मृति, रति, धृति और मति को प्राप्त करता है। इस प्रकार वह शीतल और शांत होकर धीरे धीरे वहां से निकलता हुआ अत्यंत साता-सुख का अनुभव करता है। भगवान् के इस प्रकार फरमाने पर गौतम ने पूछा कि हे भगवन्! क्या नरकों की ऐसी उष्ण वेदना है? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उष्ण वेदना वाले नरकों में नैरयिक जीव इससे भी अनिष्टतर वेदना का अनुभव करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम शरद्काल समय - नरकावासों के वर्णन में 'पढमसरयकाल' एवं 'चरम निदाघकाल' का अर्थ टीका में कार्तिक एवं जेठ मास किया है। किंतु मोकपड़िमा के वर्णन में मिगसर एवं आषाढ़ मास लिया है। पूज्य गुरुदेव श्री का फरमाना है कि यद्यपि प्रसंगोपात (उष्णता का वर्णन होने से) जीवाभिगम टीका का अर्थ मिगसर में ऐसी गर्मी नहीं होने से ठीक जंचता है। तथापि ऐसा हो कि जैसे हाथी को अमुक मास में मद चढ़ता है। वैसे ही अमुक मास में गर्मी अधिक लगती है। काली चमड़ी वाले पशुओं को ठंडी में भी गर्मी अधिक लगती है। भैंस ठंड में भी पानी में पड़ी रहती है। अतः मिगसर, आषाढ़ अर्थ भी घटित हो सकता है। यदि जीवाभिगम टीका का अर्थ ठीक हो तो दोनों स्थानों पर विवक्षा से भिन्न भिन्न अर्थ समझना चाहिये।

नरकों में शीत वेदना

सीय वेयणिज्जेसु णं भंते! णरएसु णेरइया केरिसयं सीयवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति?

गोयमा! से जहाणामए कम्मारदारए सिया तरुणे जुगवं बलवं जाव सिप्पोवगए एगं महं अयपिंडं दगवारसमाणं गहाय ताविय ताविय कोट्टिय कोट्टिय जहण्णेणं एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं मासं हणेज्जा, से णं तं उसिणं उसिणभूयं अओमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए सीयवेयणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से तं उम्मिसियणिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामीति कट्टु पविरायमेव पासेज्जा, तं चेव णं जाव णो चेव णं संचाएज्जा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए। से णं से जहाणामए मत्तमायंगे तहेव जाव सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा एवामेव गोयमा! असब्भावपट्ठवणाए सीयवेयणेहिंतो णरएहिंतो णेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं इहं माणुस्सलोए हवंति, तं जहा - हिमाणि वा हिमपुंजाणि वा हिमपडलाणि वा हिमपडलपुंजाणि वा तुसाराणि वा तुसारपुंजाणि वा हिमकुंडाणि वा हिमकुंडपुंजाणि वा सीयाणि वा ताइं पासइ पासित्ता ताइं ओगाहइ ओगाहित्ता से णं तत्थ सीयं पि पविणेज्जा तण्हं पि पविणेज्जा खुहं पि पविणेज्जा जरं पि पविणेज्जा दाहं पि पविणेज्जा णिद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा जाव उसिणे उसिणभूए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा, गोयमा! सीयवेयणिज्जेसु णरएसु णेरइया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव सीयवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति ॥ ८९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - हिमाणि - हिम, **हिमपुंजाणि** - हिम पुंज, **हिमपडलाणि** - हिम पटल, **हिमपडलपुंजाणि** - हिमपटल पुंज, **तुसाराणि** - तुषार, **तुसारपुंजाणि** - तुषार पुंज, **हिमकुंडाणि** - हिमकुण्ड, **हिमकुंडपुंजाणि** - हिम कुंड पुंज।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शीत वेदना वाले नरकों में नैरयिक जीव कैसी शीत वेदना का अनुभव करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई लुहार का लड़का जो तरुण, युगवान् बलवान् यावत् शिल्प युक्त हो, एक बड़े लोहे के पिण्ड को जो पानी के छोटे घड़े के बराबर हो लेकर उसे तपा तपा कर कूट कूट कर एक दिन दो दिन तीन दिन उत्कृष्ट एक मास तक पूर्ववत् सब क्रियाएं करता रहे तथा उस उष्ण और पूरी तरह से उष्ण उस गोले को लोहे की संडासी से पकड़ कर असत् कल्पना के द्वारा उसे शीत वेदनीय नरकों में इस भावना से डाले कि मैं अभी उन्मेष निमेष मात्र समय में उसे निकाल लूंगा परन्तु वह क्षण भर में उसे फूटता हुआ, गलता हुआ, नष्ट होता हुआ देखता है, वह उसे अस्फुटित रूप से निकालने में समर्थ नहीं होता है। इत्यादि वर्णन पूर्व के समान कह देना चाहिये तथा मत्त हाथी का उदाहरण भी वैसा ही कह देना चाहिये यावत् वह सरोवर से निकल कर सुखपूर्वक विचरता है। इसी प्रकार हे गौतम! असत् कल्पना से शीत वेदना वाले नरकों से निकला हुआ नैरयिक इस मनुष्य लोक में शीत प्रधान जो स्थान हैं जैसे कि - हिम, हिमपुंज, हिमपटल, हिमपटलपुंज, तुषार, तुषारपुंज, हिमकुण्ड, हिमकुण्डपुंज, शीत और शीतपुंज आदि को देखता है, देख कर उनमें प्रवेश करता है वह वहां अपनी नारकीय शीत को, तृषा को, भूख को, ज्वर को और दाह को मिटा लेता है तथा शांति का अनुभव करता हुआ नींद लेता है या खड़े खड़े ऊंघता है यावत् गरम होकर अति उष्ण होकर वहां से धीरे धीरे निकलता हुआ साता-सुख का अनुभव करता है। हे गौतम! शीत वेदना वाले नरकों में नैरयिक इससे भी अनिष्टतर शीत वेदना का अनुभव करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों की शीत वेदना का वर्णन किया गया है।

जैसे सर्दी में हाथ पांव फट जाते हैं वैसे ही नरक की सर्दी से लोहे का गोला भी बिखर जाता है।

नैरयिकों की स्थिति

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि ठिई भाणियव्वा जाव अहेसत्तमाए॥ ९०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक के नैरयिकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रज्ञापना के स्थिति पद के अनुसार कह देनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सात नरकों में नैरयिकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार होती है -

जघन्य स्थिति - पहली नारकी में दस हजार वर्ष, दूसरी में एक सागरोपम, तीसरी में तीन सागरोपम, चौथी में सात सागरोपम, पांचवीं में दस सागरोपम, छठी में सतरह सागरोपम और सातवीं में बाईस सागरोपम की जघन्य स्थिति होती है।

उत्कृष्ट स्थिति - पहली नारकी में एक सागरोपम, दूसरी में तीन सागरोपम, तीसरी में सात सागरोपम, चौथी में दस सागरोपम, पांचवीं में सतरह सागरोपम, छठी में बाईस सागरोपम और सातवीं में तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है।

टीका में प्रतर के अनुसार नैरयिकों की स्थिति बताई है। वह स्थिति आगम से बाधित नहीं होने से उसे कहने में कोई बाधा नहीं है।

नैरयिकों की उद्वर्तना

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया अणंतरं उव्वट्टिय कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति? किं तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति? एवं उव्वट्टणा भाणियव्वा जहा वक्कंतीए तहा इह वि जाव अहेसत्तमाए॥ ९१॥

भावार्थ - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक वहां से निकल कर कहां जाते हैं? कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होते हैं? इस प्रकार उद्वर्तना कह देनी चाहिये। जैसा कि प्रज्ञापना सूत्र के व्युत्क्रांति पद में कहा गया है वैसा ही यहां भी यावत् अधः सप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक जीवों की उद्वर्तना का कथन किया गया है जो कि प्रज्ञापना सूत्र के व्युत्क्रांति पद के अनुसार समझना चाहिये। संक्षेप में पहली नरक से लगा कर छठी नरक तक के नैरयिक वहां से सीधे निकल कर नैरयिक, देव, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय और असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य और तिर्यंचों को छोड़ कर शेष मनुष्यों और तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं जबकि सातवीं नरक के नैरयिक वहां से निकल कर गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों में ही उत्पन्न होते हैं अन्यत्र नहीं।

नरकों में पृथ्वी आदि का स्पर्श

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केरिसयं पुढविफासं पच्चणुभवमाणा विहरंति?

गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुभवमाणा विहरंति?

गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं एवं जाव अहेसत्तमाए, एवं जाव वणप्फइफासं अहेसत्तमाए पुढवीए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पृथ्वी स्पर्श का अनुभव करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अनिष्ट यावत् अमनाम पृथ्वी स्पर्श का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के अप्स्पर्श का अनुभव करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अनिष्ट यावत् अमनाम अप् (जल) स्पर्श का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये। इसी प्रकार यावत् वनस्पति के स्पर्श के विषय में यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में समझना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक जीवों को नरकों में तनिक भी सुख के निमित्त नहीं है अतः नरक पृथ्वियों के भूमि स्पर्श, जल स्पर्श, तेजस स्पर्श, वायु स्पर्श और वनस्पति स्पर्श अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनाम होते हैं। नरकों में साक्षात् बादर तेऊकाय तो नहीं होती है किंतु उष्ण रूपता में परिणत नरक भित्तियों का स्पर्श तथा दूसरों के द्वारा किये वैक्रिय रूप का उष्ण स्पर्श तेजःस्पर्श समझना चाहिये।

नरक पृथ्वियों की अपेक्षा से मोटाई आदि

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु?

हंता गोयमा! इमा णं रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय जाव सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु।

दोच्चा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं पुच्छा?

हंता गोयमा! दोच्चा णं पुढवि जाव सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु एवं एएणं अभिलावेणं जाव छट्ठिया पुढवी अहेसत्तमं पुढविं पणिहाय सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु॥ ९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सव्वमहंतिया** - सर्वमहती-सभी में बड़ी, **सव्वखुड्डिया** - सर्व क्षुद्रिका-सब में छोटी, **सव्वंतेसु** - सर्वान्तेषु-सर्वान्तों में-सभी अन्तर्भागों में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या यह रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में बड़ी है और सर्वान्तों में सबसे छोटी है?

उत्तर - हाँ गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में बड़ी है और लम्बाई चौड़ाई में छोटी है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या शर्कराप्रभा पृथ्वी तीसरी पृथ्वी से मोटाई में बड़ी और सर्वान्तों में छोटी है?

उत्तर - हाँ गौतम! दूसरी पृथ्वी तीसरी पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में बड़ी और लम्बाई चौड़ाई में छोटी है। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक अर्थात् छठी पृथ्वी सातवीं पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में बड़ी और लम्बाई चौड़ाई में छोटी है।

विवेचन - रत्नप्रभा आदि आगे आगे की पृथ्वी मोटाई में छोटी है और लम्बाई चौड़ाई में बड़ी है। अर्थात् रत्नप्रभा पृथ्वी बाहल्य की अपेक्षा सबसे बड़ी और लम्बाई चौड़ाई में सबसे छोटी है। क्योंकि रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन, शर्कराप्रभा की एक लाख बत्तीस हजार, बालुकाप्रभा की एक लाख अट्ठाईस हजार, पंकप्रभा की एक लाख बीस हजार, धूमप्रभा की एक लाख अठारह हजार, तमःप्रभा की एक लाख सोलह हजार और अधःसप्तम पृथ्वी की मोटाई एक लाख आठ हजार है।

रत्नप्रभा पृथ्वी की लम्बाई चौड़ाई एक राजू, दूसरी पृथ्वी की लम्बाई चौड़ाई दो राजू, तीसरी पृथ्वी की तीन राजू, चौथी की चार राजू, पांचवीं की पांच राजू, छठी की छह राजू और सातवीं पृथ्वी की लम्बाई चौड़ाई सात राजू है।

नरकों में उपपात

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए णिरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि णिरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए णेरइयत्ताए उववण्णपुव्वा?

हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए णवरं जत्थ जत्तिया णरगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक में सब प्राण, सब भूत, सब जीव, सब सत्त्व पृथ्वीकायिक रूप में यावत् वनस्पतिकायिक रूप में और नैरयिक रूप में पूर्व में उत्पन्न हुए हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! अनेक बार अथवा अनंत बार उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि जिस पृथ्वी में जितने नरकावास हैं उनका उल्लेख वहां करना चाहिये।

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी आदि के नरकावासों में सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व प्रत्येक में अनेक बार अथवा अनंत बार पूर्व में उत्पन्न हो चुके हैं क्योंकि यह संसार अनादिकाल से है और अनादिकाल से सभी संसारी जीव जन्म मरण कर रहे हैं अतः बहुत बार अथवा अनन्त बार इन नरकावासों में भी उत्पन्न हुए हैं। कहा भी है - **'ण सा जाई ण सा जोणी जत्थ जीवो ण जायई'** **अर्थात्** - ऐसी कोई जाति और ऐसी कोई योनि नहीं है जहां इस जीव ने अनन्त बार जन्म मरण न किया हो।

मूलपाठ में आये प्राण, भूत, जीव और सत्त्व शब्दों का अर्थ इस गाथा से स्पष्ट होता है -

प्राणा द्वि त्रिचतुः प्रोक्ताः भूतास्तु तरवः स्मृताः।

जीवाः पंचेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वा उदीरिताः॥

अर्थात् - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीव 'प्राण' कहलाते हैं। वनस्पति का ग्रहण 'भूत' शब्द से, पंचेन्द्रियों का ग्रहण 'जीव' शब्द से होता है तथा पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेउकायिक, और वायुकायिक जीव 'सत्त्व' कहलाते हैं।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णिरयपरिसामंतेसु जे पुढविक्काइया जाव वणप्फइकाइया ते णं भंते! जीवा महाकम्मतरा चेव महाकिरियतरा चेव महाआसवतरा चेव महावेयणतरा चेव?

हंता गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णिरयपरिसामंतेसु तं चेव जाव महावेयणतरा चेव, एवं जाव अहेसत्तमा॥ ९२॥

कठिन शब्दार्थ - णिरयपरिसामंतेसु - नरकावासों के पर्यन्तवर्ती प्रदेशों में, **महाकम्मतरा** - महाकर्मतर-महा कर्म वाले, **महाकिरियतरा** - महा क्रियातर-महा क्रिया वाले, **महाआसवतरा** - महाआस्रवतर-महाआस्रव वाले, **महावेयणतरा** - महावेदनातर-महा वेदना वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों के पर्यन्तवर्ती प्रदेशों में जो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव हैं वे जीव क्या महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआस्रव वाले और महावेदना वाले हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! वे रत्नप्रभा पृथ्वी के पर्यन्तवर्ती प्रदेशों के पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआस्रव वाले और महावेदना वाले हैं। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में रत्नप्रभा आदि के पर्यन्तवर्ती पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव महाकर्म वाले, महाक्रियावाले, महाआस्रव वाले और महावेदना वाले कहे गये हैं।

शंका - ये जीव एकेन्द्रिय अवस्था में रहे हुए हैं, इनके पास वैसे साधन भी नहीं हैं कि वे महा पापकर्म और महारंभ आदि कर सके फिर भी वे महाकर्म, महाक्रिया, महाआस्रव और महावेदना वाले कैसे कहे गये हैं?

समाधान - उन जीवों ने पूर्वजन्म में जो प्राणातिपात आदि महाक्रिया की है उनसे वे निवृत्त नहीं हुए हैं अतएव वर्तमान में भी वे महाक्रिया वाले हैं। महाक्रिया का कारण महास्रव है। महास्रव से निवृत्त नहीं होने के कारण वे महाक्रिया वाले हैं। महास्रव और महाक्रिया के कारण असातावेदनीय कर्म उनके प्रचुर मात्रा में हैं अतएव वे महाकर्म वाले और महावेदना वाले भी हैं।

पुढविं ओगाहित्ता, णरगा संठाणमेव बाहल्लं।
विक्खंभ परिक्खेवे, वण्णो गंधो य फासो य॥ १॥
तेसिं महालयाए, उवमा देवेण होइ कायव्वा।
जीवा य पोग्गला वक्कमंति तह सासया णिरया॥ २॥
उववाय परिमाणं अवहारुच्चत्तमेव संघयणं।
संठाण वण्ण गंधा फासा ऊसासमाहारे॥ ३॥
लेसा दिट्ठी णाणे, जोगुवओगे तहा समुग्घाया।
तत्तो खुहा पिवासा, विउव्वणा वेयणा य भए॥ ४॥
उववाओ पुरिसाणं, ओवम्मं वेयणाय दुविहाए।
ठिइ उव्वट्टण पुढवी ठ उववाओ सव्व जीवाणं॥ ५॥
एयाओ संगहणी गाहाओ॥ ९४॥

॥ बीओ णेरइय उद्देसो समत्तो॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस उद्देशक में निम्न विषयों का प्रतिपादन हुआ है - पृथ्वियों की संख्या, कितने क्षेत्र में नरकावास हैं, नरकों के संस्थान, मोटाई विष्कम्भ, परिक्षेप (लम्बाई चौड़ाई और परिधि) वर्ण, गंध, स्पर्श, नरकों की विस्तीर्णता बताने हेतु देव की उपमा, जीव और पुद्गलों की उनमें व्युत्क्रांति, शाश्वत अशाश्वत प्ररूपणा, उपपात, एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं, अपहार, उच्चत्व, नैरयिकों के संहनन, संस्थान, वर्ण, गंध, स्पर्श, उच्छ्वास, आहार, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, समुद्घात, भूख-प्यास, विकुर्वणा, वेदना, भय, पांच महापुरुषों का सातवीं नरक पृथ्वी में उपपात, दो प्रकार की वेदना - उष्ण वेदना, शीत वेदना, स्थिति, उद्वर्तना, पृथ्वी का स्पर्श और सर्व जीवों का उपपात।

विवेचन - प्रस्तुत उद्देशक में नरकों के विषय में जो जो बातें कही गई हैं उनका उपरोक्त संग्रहणी गाथाओं में कथन किया गया है। इस उद्देशक में नीचे लिखे विषय बताये गये हैं -

१. पृथ्वियों (नरकों) के नाम तथा गोत्र २. नरकावासों का स्वरूप तथा अवगाहना ३. नरकावासों का संस्थान ४. बाहल्य अर्थात् मोटाई ५. आयाम (लम्बाई) विष्कम्भ (चौड़ाई) और परिक्षेप (परिधि) ६. वर्ण, गंध, स्पर्श ७. असंख्यात योजन वाले नरकावासों के विस्तार के लिये उपमा ८. जीव और पुद्गलों की व्युत्क्रांति ९. शाश्वत अशाश्वत १०. उपपात अर्थात् किस नरक में कौन से जीव उत्पन्न होते हैं ११. एक समय में कितने जीव उत्पन्न होते हैं तथा कितने मरते हैं १२. नारकी जीवों की अवगाहना १३. संहनन १४. संस्थान १५. नारकी जीवों का वर्ण, गंध, स्पर्श तथा उच्छ्वास १६. आहार १७. लेश्या १८. दृष्टि १९. ज्ञान २०. योग २१. उपयोग २२. समुद्घात २३. क्षुधा और तृषा अर्थात् भूख और प्यास २४. विक्रिया २५. वेदना और भय २६. उष्ण वेदना शीत वेदना २७. स्थिति २८. उद्वर्तना २९. पृथ्वियों का स्पर्श ३०. उपपात।

।। द्वितीय नैरयिक उद्देशक समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तईओ णेरइय उद्देसो - तृतीय नैरयिक उद्देशक

नैरयिकों के विषय में और अधिक जानकारी देने के लिये सूत्रकार इस तृतीय नैरयिक उद्देशक का प्रारंभ करते हैं, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

नैरयिकों में पुद्गल परिणमन

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केरिसयं पोग्गलपरिणामं पच्चणुभवमाणा विहरंति?

गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं एवं जाव अहेसत्तमाए एवं णेयव्वं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पुद्गल परिणाम का अनुभव करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अनिष्ट यावत् अमनाम पुद्गलों के परिणमन का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार अध:सप्तम पृथ्वी तक समझ लेना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक जीव जिन पुद्गलों को ग्रहण करते हैं उनका परिणमन अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनाम रूप में ही होता है। इसी प्रकार यावत् सातवीं नरक पृथ्वी तक के नैरयिकों द्वारा गृहीत पुद्गलों का परिणमन अशुभ रूप में ही होता है।

और किन किन का परिणमन नैरयिकों के लिये अशुभ रूप होता है इसके लिये टीका में दो संग्रहणी गाथाएं दी हैं जो इस प्रकार है -

पोग्गल परिणामे वेयणा य लेस्सा य णाम गोए य।
अरइ भए य सोगे, खुहा पिवासा य वाही य॥ १॥
उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य माय लोभे य।
चत्तारि य सण्णाओ णेरइयाणं तु परिणामा॥ २॥

अर्थात् १. पुद्गल परिणाम २. वेदना ३. लेश्या ४. नाम ५. गोत्र ६. अरति ७. भय ८. शोक ९. क्षुधा १०. पिपासा ११. व्याधि १२. उच्छ्वास १३. अनुताप १४. क्रोध १५. मान १६. माया १७. लोभ १८-२१. चार संज्ञाएं (आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुन संज्ञा परिग्रह संज्ञा) इन सब का परिणमन नैरयिकों के लिए अशुभ होता है।

सातवीं पृथ्वी में जाने वाले जीव

एत्थ किर अइवयंति, णरवसभा केसवा जलयरा य।
मंडलिया रायाणो, जे य महारंभ कोडुंबी॥ १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - एत्थ किर - यह गाथा कहनी चाहिये, **अइवयंति** - प्रायः जाते हैं, **णरवसभा**- नरवृषभ-लौकिक दृष्टि से बड़े समझे जाने वाले और अति भोगासक्त, **केसवा** - वासुदेव, **मांडलियरायाणो** - मांडलिक राजा।

भावार्थ - इस सप्तम पृथ्वी में प्रायः करके नरवृषभ - वासुदेव, जलचर, मांडलिक राजा और महारंभ वाले गृहस्थ उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - वासुदेव जो नरवृषभ-बाह्य भौतिक दृष्टि से बहुत महिमा वाले, बल वाले, समृद्धि वाले और कामभोग आदि में अत्यंत आसक्त होते हैं वे बहुत युद्ध आदि संहार रूप प्रवृत्तियों में तथा परिग्रह एवं भोगादि में आसक्त होने के कारण प्रायः सातवीं नरक में उत्पन्न होते हैं। इसी तरह तंदुलमत्स्य जैसे जलचर भाव हिंसा और क्रूर अध्यवसाय वाले, वसु आदि मांडलिक राजा तथा सुभूम जैसे चक्रवर्ती तथा महारंभ करने वाले कालसौकरिक जैसे गृहस्थ प्रायः इस सातवीं पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। इस तरह सातवीं पृथ्वी में कैसे जीव जाते हैं इसका उल्लेख इस गाथा में किया गया है।

गाथा में आया हुआ '**अइवयंति**' शब्द 'प्रायः' का सूचक है तथा '**एत्थ**' पद से सप्तम पृथ्वी का ग्रहण करना चाहिये।

नैरयिकों का विकुर्वणा काल

भिण्णमुहुत्तो णरएसु, होइ तिरियमणुएसु चत्तारि।
देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणा भणिया॥ २॥

भावार्थ - नैरयिकों में अन्तर्मुहूर्त्त, तिर्यंच और मनुष्य में चार अन्तर्मुहूर्त्त और देवों में अर्द्धमास- पन्द्रह दिन का उत्तर विकुर्वणा का उत्कृष्ट अवस्थानकाल कहा है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में नैरयिकों की तथा प्रसंगवश अन्य की भी विकुर्वणा का उत्कृष्ट काल बताया गया है जो इस प्रकार है- नैरयिकों की विकुर्वणा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक रहती है। तिर्यंच और मनुष्यों की विकुर्वणा उत्कृष्ट चार अंतर्मुहूर्त्त तथा देवों की विकुर्वणा उत्कृष्ट पन्द्रह दिन तक रहती है।

चार भिन्न मुहूर्त्त - नारकी के वैक्रिय का भिन्न मुहूर्त्त ११ मिनट लगभग समझना एवं मनुष्य तिर्यंच के वैक्रिय की स्थिति ४४ मिनिट रूप ४ भिन्न मुहूर्त्त रूप समझना। नारकी से चार गुणा बताने के लिए ही '**चत्तारि भिण्ण मुहुत्तो**' कहा है।

देवों में अर्द्धमास - विकुर्वित वस्तु का निर्माण करते समय ही आत्मप्रदेशों का कार्य होता है, बाद में नहीं। समुद्घात को वस्तु निर्माण के समय ही माना जाता है। किंतु आत्मप्रदेशों का संचरण मूल शरीरवत् बाद में चालू रहने पर भी नहीं माना जाता है। देवों में १५ दिन के बाद विकुर्वित वस्तु स्वतः नष्ट हो जाती है। मनुष्य को तो अंतर्मुहूर्त्त में पुनः समुद्घात करना ही पड़ता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकों का आहार

जे पोग्गला अणिट्ठा णियमा सो तेसि होई आहारो।
संठाणं तु अणिट्ठं, णियमा हुंडं तु णायव्वं॥ ३॥

भावार्थ - जो पुद्गल निश्चित रूप में अनिष्ट होते हैं उन्हीं का नैरयिक आहार करते हैं। उनके शरीर का संस्थान (आकार) अति निकृष्ट और हुंड संस्थान वाला होता है।

विवेचन - जो पुद्गल अनिष्ट होते हैं वे ही नैरयिकों के द्वारा आहार आदि रूप में ग्रहण किये जाते हैं। उनके शरीर का संस्थान हुंडक होता है।

नैरयिकों की अशुभ विक्रिया

असुभा विउव्वणा खलु, णेरइयाणं तु होइ सव्वेसिं।
वेउव्वियं सरीरं, असंघयण हुंड संठाणं॥ ४॥

भावार्थ - सब नैरयिकों की उत्तरविक्रिया भी अशुभ ही होती है। उनका वैक्रिय शरीर असंहनन वाला और हुण्ड संस्थान वाला होता है।

विवेचन - सब नैरयिकों की विकुर्वणा अशुभ ही होती है। यद्यपि वे अच्छी विक्रिया बनाने का विचार करते हैं तथापि प्रतिकूल कर्मोदय के कारण वह विकुर्वणा भी अशुभ ही होती है। उनका भवधारणीय और उत्तर वैक्रिय शरीर संहनन रहित होता है क्योंकि उनमें हड्डियां आदि नहीं होती है। उत्तरवैक्रिय शरीर हुंड संस्थान वाला है क्योंकि उनके भवप्रत्यय से ही हुंड संस्थान नामकर्म का उदय होता है।

अस्साओ उववण्णो, अस्साओ चेव चयइ णिरयभवं।
सव्वपुढवीसु जीवो, सव्वेसु ठिइ विसेसेसुं॥ ५॥

भावार्थ - नैरयिक जीवों का-चाहे वे किसी भी नरक पृथ्वी के हों और चाहे जैसी स्थिति वाले हों-जन्म असाता वाला होता है। उनका संपूर्ण नारकीय जीवन दुःख में ही बीतता है वहां सुख का लेश मात्र भी नहीं है।

विवेचन - रत्नप्रभा आदि सभी नरक पृथ्वियों में कोई जीव चाहे जघन्य स्थिति का हो या उत्कृष्ट स्थिति का हो जन्म से ही असाता का वेदन करता है, उत्पत्ति के पश्चात् भी असाता का अनुभव करता है और पूरा नरक भव असाता में ही व्यतीत कर देता है क्योंकि वहां लेश मात्र भी सुख नहीं है। यद्यपि नैरयिकों में सदा दुःख ही दुःख है किंतु उसके अपवाद रूप में थोड़ा सुख आगे की गाथा में इस प्रकार बताया है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकों को होने वाली क्षणिक साता

उववाएण व सायं, णेरइओ देवकम्मुणो वावि।

अज्झवसाण णिमित्तं, अहवा कम्माणुभावेणं॥ ६॥

भावार्थ - नैरयिक जीवों में से कोई जीव उपपात के समय ही साता का वेदन करता है, पूर्व सांगतिक देव के निमित्त से कोई नैरयिक थोड़े समय के लिए साता का वेदन करता है, कोई नैरयिक सम्यक्त्व-उत्पत्तिकाल में शुभ अध्यवसायों के कारण साता का वेदन करता है अथवा कर्मानुभाव से-तीर्थंकरों के जन्म, दीक्षा, ज्ञान तथा निर्वाण कल्याण के निमित्त से साता का अनुभव करते हैं।

विवेचन - नैरयिक जीव क्षणिक साता का किस प्रकार अनुभव करते हैं यह प्रस्तुत गाथा में कहा गया है।

कोई नैरयिक जीव उपपात के समय साता का अनुभव करता है। जो नैरयिक जीव पूर्व के भव में दाह या छेद आदि के बिना सहज रूप में मृत्यु को प्राप्त हुआ हो वह अधिक संक्लिष्ट परिणाम वाला नहीं होता है। उस समय उसके न तो पूर्वभव में बांधा हुआ मानसिक दुःख है और न क्षेत्र स्वभाव से होने वाली पीड़ा है और न ही परमाधामी कृत या परस्पर उदीरित वेदना ही है। इस प्रकार दुःख का अभाव होने से कोई जीव साता का वेदन करता है।

कोई जीव देव के प्रभाव से थोड़े समय के लिए साता का अनुभव करता है। जैसे कृष्ण वासुदेव की वेदना के उपशम के लिए बलदेव नरक में गये थे। इसी प्रकार पूर्व सांगतिक देव के प्रभाव से थोड़े समय के लिये नैरयिकों को साता का अनुभव होता है।

कोई नैरयिक सम्यक्त्व उत्पत्ति के काल में अथवा उसके बाद भी कदाचित् तथाविध विशिष्ट शुभ अध्यवसाय से बाह्य क्षेत्रज वेदना आदि के होते हुए भी साता का अनुभव करता है। आगम में कहा है कि सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय जीव को वैसा ही प्रमोद भाव होता है जैसे किसी जन्मान्ध को नेत्र लाभ होने से होता है। इसके बाद भी तीर्थंकरों के गुणानुमोदन आदि विशिष्ट भावना भाते हुए वे साता का वेदन करते हैं।

तीर्थंकरों के जन्म, दीक्षा, ज्ञान तथा निर्वाण कल्याणक आदि बाह्य निमित्त को लेकर तथा तथाविध साता वेदनीय कर्म के विपाकोदय के निमित्त से नैरयिक जीव क्षणिक साता का अनुभव करते हैं।

देव प्रभाव से तथा कर्मानुभाव से - तीर्थंकर या कोई पुण्यवंत जीवों के पुण्य प्राग्भार से संभवतः परमाधामियों का संयोग ही नहीं मिलता होगा। अथवा तो परमाधामी दुःख देते हों तब भी पुद्गल परिणमन के कारण आम निंबोली अनुसार पानी परिणमनेवत् अल्प वेदना जैसा लगे एवं एक ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋतु में वर्त्तते हुए बुखार वाले को सर्दी गर्मी विशेष लगती है और नीरोग को कम, वैसे ही कर्म अल्प होने से क्षेत्र वेदना भी कम होती है। अन्योन्य कृत वेदना भी कम होती है। क्योंकि स्वयं होकर सामना नहीं करने पर दूसरा कितना दुःख देगा?

नैरयिकों का दुःख से उछलना

णेरइयाणुप्पाओ, उक्कोसं पंच जोयणसयाइं।

दुक्खेणभिहुयाणं, वेयणसयसंपगाढाणं॥ ७॥

कठिन शब्दार्थ - **णेरइयाणुप्पाओ** - नैरयिकों का उत्पात (उछलना), **दुक्खेणभिहुयाणं** - दुःखेनाभिद्रुतानाम्-दुःखों से सर्वात्मना व्याप्त, **वेयणसयसंपगाढाणं** - वेदनाशतसंप्रगाढाः-सैकड़ों वेदनाओं से अवगाढ होने से।

भावार्थ - सैकड़ों वेदनाओं से अवगाढ़ होने के कारण दुःखों से सर्वात्मना व्याप्त नैरयिक दुःखों से छटपटाते हुए उत्कृष्ट पांच सौ योजन तक ऊपर उछलते हैं॥ ७॥

विवेचन - अपरिमित वेदनाओं से युक्त नैरयिक जीव कुंभियों में पकाये जाने पर तथा भाले आदि से भेदे जाने पर भय से त्रस्त होकर जघन्य एक कोस उत्कृष्ट पांच सौ योजन तक ऊपर उछलते हैं। इस गाथा के बाद कहीं कहीं ऐसा पाठ भी मिलता है कि - '**णेरइयाणुप्पाओ गाउय उक्कोस पंचजोयणसयाइं**' अर्थात् जघन्य से एक कोस और उत्कृष्ट से ५०० योजन तक ऊपर उछलते हैं। ये ५०० योजन उत्सेध अंगुल से समझना चाहिये।

अच्छिणिमीलियमेत्तं, णत्थि सुहं दुक्खमेव पडिबद्धं।

णरए णेरइयाणं, अहोणिसं पच्चमाणाणं॥ ८॥

कठिन शब्दार्थ - **अच्छिणिमीलियमेत्तं** - अक्षिनिमेष मात्र काल के लिए भी, **पडिबद्धं** - प्रतिबद्ध, **अहोणिसं** - अहर्निश-रात दिन, **पच्चमाणाणं** - अनुभव करते हुए।

भावार्थ - रात दिन दुःखों से पचते हुए नैरयिकों को नरक में आंख मूंदने मात्र काल के लिए भी सुख नहीं है किंतु दुःख ही दुःख सदा उनके साथ लगा हुआ है।

जीव के द्वारा छोड़े गये शरीर

तेया कम्मसरीरा, सुहुमसरीरा य जे अपज्जत्ता।

जीवेण मुक्कमेत्ता, वच्चंति सहस्ससो भेयं॥ ९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - जीवेण - जीव के द्वारा **मुक्कमेत्ता** - छोड़े जाने पर, **सहस्ससो** - सहस्रशो-हजारों, **भेयं** - भेद (खण्ड)।

भावार्थ - तैजस कार्मण शरीर, सूक्ष्म शरीर और अपर्याप्त जीवों के शरीर जीव के द्वारा छोड़े जाते ही तत्काल हजारों खण्डों में खण्डित होकर बिखर जाते हैं।

विवेचन - नैरयिकों के वैक्रिय शरीर के पुद्गल उन जीवों द्वारा शरीर छोड़ते ही हजारों खण्डों में छिन्न भिन्न होकर बिखर जाते हैं। इस प्रकार बिखरने वाले अन्य शरीरों का कथन भी यहां प्रसंगवश कर दिया है। तैजस कार्मण शरीर, सूक्ष्म शरीर अर्थात् सूक्ष्म नाम कर्म के उदय वाले जीवों के औदारिक शरीर और पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवों के शरीर, जीवों द्वारा छोड़े जाते ही बिखर जाते हैं अर्थात् उनके परमाणुओं का संघात छिन्न भिन्न हो जाता है।

नैरयिकों के दुःख

अइसीयं अइउण्हं, अइतण्हा अइखुहा अइभयं वा।
णिरए णेरइयाणं, दुक्खसयाइं अविस्सामं॥ १०॥

कठिन शब्दार्थ - अइसीयं - अतिशीत, **अइउण्हं** - अति उष्ण, **अइतण्हा** - अति तृषा, **अइभयं** - अतिभय, **दुक्खसयाइं** - सैकड़ों दुःख, **अविस्सामं** - अविश्राम-विश्राम रहित।

भावार्थ - नरक में नैरयिकों को अत्यंत शीत, अत्यंत उष्ण, अत्यंत भूख और प्यास, अत्यंत भय और सैकड़ों दुःख लगातार बने रहते हैं।

एत्थ य भिण्णमुहुत्तो पोग्गल असुहा य होइ अस्साओ।
उववाओ उप्पाओ अच्छि सरीरा उ बोद्धव्वा॥ ११॥
से तं णेरइया॥ तइओ णेरइय उद्देसो समत्तो॥

भावार्थ - उपरोक्त गाथाओं में विकुर्वणा का अवस्थान काल, अनिष्ट पुद्गलों का परिणमन, अशुभ विकुर्वणा, नित्य असाता, उपपात काल आदि में क्षणिक साता, छटपटाते हुए ऊपर उछलना, अक्षिनिमेष के लिए भी साता न होना, वैक्रिय शरीर का बिखरना तथा नरकों में होने वाली सैकड़ों वेदनाओं का वर्णन किया गया है।

नैरयिकों का वर्णन समाप्त। तृतीय नैरयिक उद्देशक समाप्त।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा पूर्वोक्त सभी गाथाओं की संग्रहणी गाथा है। इस गाथा में सूत्रकार ने उपसंहार करते हुए इन गाथाओं का अर्थ संग्रह किया है।

॥ जीवाभिगम सूत्र की तृतीय प्रतिपत्ति का तीसरा नैरयिक उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमो तिरिक्खजोणिय उद्देसो

प्रथम तिर्यंचयोनिक उद्देशक

जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के तीन उद्देशकों में नरक का वर्णन करने के बाद अब सूत्रकार इस उद्देशक में तिर्यंचों का वर्णन करते हैं जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

तिर्यंचयोनिकों के भेद

से किं तं तिरिक्खजोणिया?

तिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा - एगिंदियतिरिक्खजोणिया बेइंदियतिरिक्खजोणिया, तेइंदियतिरिक्खजोणिया, चउरिंदियतिरिक्खजोणिया पंचिंदियतिरिक्खजोणिया।

भावार्थ - तिर्यंच योनिक जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

तिर्यंच योनिक जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक २. बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक ३. तेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक ४. चउरिन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और ५. पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेद

से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणिया?

एगिंदियतिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा - पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया जाव वणस्सइकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया।

से किं तं पुढविकाइय एगिंदियतिरिक्खजोणिया?

पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सुहुमपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया बायरपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया य।

से किं तं सुहुमपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया?

सुहुमपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्तसुहुमपुढविकाइय एगिंदियतिरिक्खजोणिया अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया, से तं सुहुमपुढविकाइयएगिंदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं बायरपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया?

बायरपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तबायर पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया अपज्जत्तबायरपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया, से तं बायरपुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया, से तं पुढवीकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया॥

भावार्थ - एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक पांच प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १-५. पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक। यह सूक्ष्म पृथ्वीकाय का वर्णन हुआ।

बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक। यह बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का वर्णन हुआ। यह पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचों का वर्णन हुआ।

से किं तं आउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया?

आउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, एवं जहेव पुढविकाइयाणं तहेव चउक्कओ (आउकाय) भेदो एवं जाव वणस्सइकाइया, से तं वणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया।

भावार्थ - अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का क्या स्वरूप है?

अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक के भेद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहे हैं उसी प्रकार अप्कायिक के भेद कह देने चाहिये यावत् वनस्पतिकायिक तक इसी प्रकार भेद कहने चाहिये। यह वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का कथन हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के भेद प्रभेद का कथन किया गया है। एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादर के भेद से दो प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म और बादर एकेन्द्रिय के भी पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद होते हैं। इस तरह एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के कुल बीस भेद हो जाते हैं।

बेइन्द्रिय आदि तिर्यंच जीव

से किं तं बेइंदियतिरिक्खजोणिया?

बेइंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्त बेइंदिय तिरिक्खजोणिया अपज्जत्त बेइंदिय तिरिक्खजोणिया। से तं बेइंदिय तिरिक्खजोणिया एवं जाव चउरिंदिया।

भावार्थ - बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - पर्याप्त बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और अपर्याप्त बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक। यह बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का कथन हुआ। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रियों तक कह देना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक के भेद

से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया?

पंचेंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - जलयर पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया थलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया खहयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया।

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक

से किं तं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?

जलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - संमुच्छिमजलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया य गब्भवक्कंतिय जलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं संमुच्छिम जलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

संमुच्छिम जलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तगसंमुच्छिम जलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया अपज्जत्तगसंमुच्छिम जलयर-पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया। से तं संमुच्छिम जलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं गब्भवक्कंतिय जलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

गब्भवक्कंतिय जलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तगगब्भवक्कंतिय जलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिय जलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया, से तं गब्भवक्कंतिय जलयर पंचेंदिय तिरिक्ख-जोणिया, से तं जलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया।

भावार्थ - जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और गर्भव्युत्क्रांतिक (गर्भज) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक का क्या स्वरूप है?

सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच दो प्रकार के कहे गये हैं - १. पर्याप्तक संमूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और २. अपर्याप्तक संमूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक। यह सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का कथन हुआ।

गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच और अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच। यह गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का वर्णन हुआ। इस प्रकार जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का कथन हुआ।

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक

से किं तं थलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

थलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - चउप्पयथलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया परिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं चउप्पयथलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

चउप्पयथलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - संमुच्छिम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउप्पयथलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया गब्भवक्कंतिय चउप्पयथलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया य, जहेव जलयराणं तहेव चउक्कओ भेओ, से त्तं चउप्पय थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं परिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

परिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - उरगपरिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया भुयगपरिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं उरगपरिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

उरगपरिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - जहेव जलयराणं तहेव चउक्कओ भेओ, एवं भूयगपरिसप्पाण वि भाणियव्वं, से तं भुयगपरिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया, से तं थलयर पंचेंदिय तिरिक्ख-जोणिया।

भावार्थ - स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और २. परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का क्या स्वरूप है?

चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच और २. गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच। जिस प्रकार जलचरों के विषय में चार भेद कहे हैं उसी प्रकार यहां भी चार भेद समझ लेने चाहिये। यह चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक का वर्णन हुआ।

परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का क्या स्वरूप है?

परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच और भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच।

उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच का क्या स्वरूप है?

उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच दो प्रकार के कहे गये हैं। जिस प्रकार जलचरों के चार भेद कहे हैं उसी प्रकार यहां चार भेद कह देने चाहिये। इसी प्रकार भुजपरिसर्पों के भी चार भेद समझने चाहिये। यह भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का वर्णन हुआ। इस प्रकार स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का कथन हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक

से किं तं खहयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सम्मुच्छिम खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया गब्भवक्कंतिय खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया य।

से किं तं संमुच्छिम खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया?

संमुच्छिम खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तग संमुच्छिम खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया अपज्जत्तग संमुच्छिम खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया य, एवं गब्भवक्कंतिया वि।

भावार्थ - खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का क्या स्वरूप है?

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक का क्या स्वरूप है?

सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक। इसी प्रकार गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक के विषय में कह देना चाहिये यावत् पर्याप्तक गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और अपर्याप्तक गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के भेदों का कथन किया गया है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं - १. जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच २. स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच और ३. खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच। जल ही जिन जीवों का निवास स्थान है, जल के अलावा स्थान में जो न ठहर सकते हैं न रह सकते हैं ऐसे मत्स्य, कच्छप आदि जीव जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक हैं। जो जीव स्थल-जमीन पर चलते फिरते हैं वे स्थलचर हैं तथा जो जीव आकाश में चलते फिरते हैं वे खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं। शेष भेद प्रभेद मूलपाठ एवं भावार्थ से स्पष्ट हैं।

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का योनिसंग्रह

खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया णं भंते! कइविहे जोणिसंगहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा - अंडया पोयया संमुच्छिमा। अंडया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - इत्थी पुरिसा णपुंसगा। पोयया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा- इत्थी पुरिसा णपुंसगा। तत्थ णं जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा॥ ९६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - जोणिसंगहे - योनि संग्रह-योनि (जन्म) को लेकर किया गया भेद, **अंडया** - अण्डज-अण्डे से उत्पन्न होने वाले जैसे मोर आदि, **पोयया** - पोतज-पोत से उत्पन्न होने वाले-गर्भ से निकलते ही दौड़ने वाले-चमगादड आदि, **संमुच्छिमा** - सम्मूर्च्छिम-माता पिता के संयोग बिना उत्पन्न होने वाले, खंजरीट आदि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों का योनिसंग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का योनिसंग्रह तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है- अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम। अण्डज तीन प्रकार के कहे गये हैं - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। पोतज तीन प्रकार के कहे गये हैं - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। सम्मूर्च्छिम सब नपुंसक ही होते हैं।

विवेचन - खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का योनिसंग्रह (जन्म की अपेक्षा भेद) तीन प्रकार का कहा गया है - अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम। वैसे सामान्यतया चार प्रकार का योनिसंग्रह कहा है - १. जरायुज २. अण्डज ३. पोतज और ४. सम्मूर्च्छिम, किंतु पक्षियों में जरायुज होते ही नहीं है अतः यहां तीन प्रकार का योनि संग्रह कहा गया है। अण्डज और पोतज स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन तीनों लिंगों वाले होते हैं, जबकि सम्मूर्च्छिम नपुंसक ही होते हैं।

द्वार प्ररूपणा

एएसि णं भंते! जीवाणं कइ लेसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन जीवों-पक्षियों में कितनी लेश्याएं कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पक्षियों में छह लेश्याएं कही गई हैं। यथा - कृष्णलेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

विवेचन - पक्षियों में द्रव्य और भाव की अपेक्षा छहों लेश्याएं संभव है।

ते णं भंते! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी?

गोयमा! सम्मदिट्ठी वि मिच्छादिट्ठी वि सम्मामिच्छादिट्ठी वि।

ते णं भंते! जीवा किं णाणी अण्णाणी?

गोयमा! णाणी वि अण्णाणी वि तिण्णी णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

ते णं भंते! जीवा किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी?

गोयमा! तिविहा वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ते णं भंते! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता?

गोयमा! सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! ये जीव क्या सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये जीव सम्यग्दृष्टि भी हैं मिथ्यादृष्टि भी हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे दो या तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं वे दो या तीन अज्ञान वाले हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या मनयोगी हैं, वचन योगी हैं या काययोगी हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव मनयोगी हैं, वचनयोगी भी हैं और काययोगी भी हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव क्या साकारोपयोग वाले हैं या अनाकारोपयोग वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव साकार उपयोग वाले भी हैं और अनाकार उपयोग वाले भी हैं।

ते णं भंते! जीवा कओ उववज्जंति ? किं णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति? पुच्छा।

गोयमा! असंखेज्जवासाउय अकम्मभूमग अंतरदीवग वज्जेहिंतो उववज्जंति।

तेसि णं भंते! जीवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा - वेयणा समुग्घाए जाव तेया समुग्घाए।

तेणं भंते! जीवा मारणंतिय समुग्घाएणं किं समोहया मरंति, असमोहया मरंति?

गोयमा! समोहया वि मरंति असमोहया वि मरंति॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या तिर्यंचों से आकर उत्पन्न होते हैं इत्यादि पृच्छा।

उत्तर - हे गौतम! असंख्यात वर्ष की आयु वालों, अकर्मभूमिजों और अंतरद्वीपजों को छोड़ कर सब जगह से उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग प्रमाण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों के कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों के पांच समुद्घात कहे गये हैं। यथा-वेदना समुद्घात यावत् तैजस समुद्घात।

प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर मरते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे जीव समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति? तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति। पुच्छा?

गोयमा! एवं उव्वट्टणा भाणियव्वा जहा वक्कंतीए तहेव।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ जाईकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?

गोयमा! बारस जाईकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता॥

कठिन शब्दार्थ - **जाईकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा** - जातिकुलकोडी योनि प्रमुख लाख।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! वे जीव मर कर अनन्तर कहां उत्पन्न होते हैं? कहां जाते हैं? क्या नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं आदि प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! प्रज्ञापना सूत्र के व्युत्क्रांति पद के अनुसार यहां भी उद्वर्तना समझनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! उन जीवों की कितने लाख योनिप्रमुख जातिकुल कोटि कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उन जीवों की बारह लाख योनि प्रमुख जातिकुल कोटि कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में खेचर जीवों में पाये जाने वाले लेश्या, दृष्टि आदि द्वारों की प्ररूपणा की गयी है जिनकी संग्रहणी गाथा इस प्रकार है -

जोणीसंगह लेस्सा दिट्ठी णाणे य जोग उवओगे।
उववाय ठिई समुग्घाय चयणं जाई कुलविही उ॥

अर्थात् - योनिसंग्रह, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, स्थिति, समुद्घात, च्यवन, जातिकुल-कोटि का प्रस्तुत सूत्र में प्रतिपादन किया गया है।

योनि प्रमुख जाति कुल कोटि - यहां जाति से अर्थ है - तिर्यंच जाति। उसके कुल हैं - कृमि, कीट, वृश्चिक आदि। ये कुल योनिप्रमुख हैं अर्थात् एक ही योनि में अनेक कुल होते हैं जैसे छगण (गोबर) योनि में कृमिकुल, कीटकुल, वृश्चिककुल आदि। जाति, कुल और योनि में परस्पर यह विशेषता है कि एक ही योनि में अनेक जाति कुल होते हैं। खेचर में बारह लाख जातिकुल कोटि है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भुयपरिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते! कइविहे जोणी संगहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते, तं जहा - अंडया पोयया संमुच्छिमा, एवं जहा खहयराणं तहेव णाणत्तं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता दोच्चं पुढविं गच्छंति, णव जाईकुलकोडी जोणीपमुह सयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, सेसं तहेव॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का योनि संग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का योनि संग्रह तीन प्रकार का कहा गया है वह इस प्रकार है - अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम। जिस प्रकार खेचरों के विषय में कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। विशेषता यह है कि इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है, मर कर यदि नरक में जावे तो दूसरी पृथ्वी तक जाते हैं। इनकी नौ लाख जातिकुलकोडी हैं। शेष वर्णन पूर्वानुसार जानना चाहिये।

उरगपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते! पुच्छा, जहेव भुयपरिसप्पाणं तहेव, णवरं ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता जाव पंचमिं पुढविं गच्छंति, दस जाईकुलकोडी०।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का योनि संग्रह कितने प्रकार का कहा गया है? इत्यादि प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार भुजपरिसर्प का कथन किया गया है उसी प्रकार यहां भी कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है। मरकर यदि नरक में जावे तो पांचवीं पृथ्वी तक जाते हैं। इनकी दस लाख जातिकुलकोडी है।

चउप्पय थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! दुविहे (जोणीसंगहे) पण्णत्ते, तं जहा - पोयया य संमुच्छिमा य।

से किं तं पोयया?

पोयया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - इत्थी पुरिसा णपुंसगा, तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसया।

भावार्थ - चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का योनिसंग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का योनि संग्रह दो प्रकार का कहा गया है। यथा - पोतज और सम्मूर्च्छिम

पोतज का क्या स्वरूप है?

पोतज तीन प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - स्त्री, पुरुष और नपुंसक। उनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं वे सब नपुंसक हैं।

विवेचन - यहां चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों का योनि संग्रह दो प्रकार का ही कहा गया है- १. पोतज और २. सम्मूर्च्छिम। क्योंकि यहां पोतज में अण्डजों से भिन्न जितने भी जरायुज या अजरायुज गर्भज जीव हैं उनका समावेश कर दिया गया है, अतएव दो प्रकार का योनिसंग्रह कहा है। अन्यथा गौ आदि जरायुज हैं और सर्पादि अण्डज हैं-ये दो प्रकार और एक सम्मूर्च्छिम, यों तीन प्रकार का योनिसंग्रह कहा जाता है। लेकिन यहां दो ही प्रकार का कहा है, अतएव पोतज में जरायुज अजरायुज सब गर्भजों का समावेश समझना चाहिये। जरायुज डोरें के समान और अजरायुज कपड़े के समान दिखते हैं।

तेसि णं भंते! जीवाणं कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

सेसं जहा पक्खीणं णाणत्तं ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, उव्वट्टित्ता चउत्थिं पुढविं गच्छंति, दसजाईकुलकोडी० ॥

भावार्थ - हे भगवन्! उन जीवों के कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

इत्यादि सारा वर्णन खेचरों (पक्षियों) की तरह समझना चाहिये। विशेषता यह है कि इनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है और मर कर यदि नरक में जावे तो चौथी नरक पृथ्वी तक जाते हैं। इन जीवों की जातिकुलकोडी दस लाख है।

जलयरपंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं पुच्छा?

जहा भुयपरिसप्पाणं णवरं उवट्टित्ता जाव अहेसत्तमं पुढविं अद्धतेरस जाइकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

भावार्थ - जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से संबंधित पृच्छा?

जिस प्रकार भुजपरिसर्पों के लिये कहा है उसी प्रकार कह देना चाहिये किंतु विशेषता यह है कि जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच मर कर यदि नरक में जावे तो सातवीं नरक पृथ्वी तक जाते हैं। इनकी साढ़े बारह लाख जातिकुलकोडी कही गई है।

चउरिंदियाणं भंते! कइ जाईकुलकोडी जोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?

गोयमा! णव जाईकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा समक्खाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! अट्ठ जाईकुल जाव मक्खाया।

बेइंदियाणं भंते! कई जाई कुलकोडीजोणी० पुच्छा।

गोयमा! सत्त जाईकुलकोडीजोणी पमुह०॥ ९७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जीवों की कितनी जातिकुलकोडी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चउरिन्द्रिय जीवों की नौ लाख जातिकुलकोडी कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! तेइन्द्रिय जीवों की कितनी जातिकुलकोडी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तेइन्द्रिय जीवों की आठ लाख जातिकुलकोडी कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों की कितनी जातिकुलकोडी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों की सात लाख जातिकुलकोडी कही गई है।

गंध और गंधशत

कइ णं भंते! गंधा पण्णत्ता? कइ णं भंते! गंधसया पण्णत्ता?

गोयमा! सत्त गंधा सत्त गंधसया पण्णत्ता।

कइ णं भंते! पुप्फजाईकुलकोडीजोणिपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?

गोयमा! सोलस पुप्फजाईकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता, तं जहा - चत्तारि जलयाणं चत्तारि थलयाणं चत्तारि महारुक्खियाणं चत्तारि महागुम्मियाणं।

कठिन शब्दार्थ - गंधा - गंध (गंधांग), **गंधसया** - गन्धशत-गंधांग की सौ उपजातियां, **महागुम्मियाणं** - महागुल्मिक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गंध (गंधांग) कितने कहे गये हैं? हे भगवन्! गंधशत कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! सात गंधांग और सात ही गंधशत हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! फूलों की कितनी लाख जातिकुलकोडी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! फूलों की सोलह लाख जातिकुलकोडी कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - चार लाख जलज पुष्पों की, चार लाख स्थलज पुष्पों की, चार लाख महावृक्षों के पुष्पों की और चार लाख महागुल्मिक पुष्पों की।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में गंधांग, गंधशत और फूलों की कुलकोटि विषयक कथन किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुख्य रूप से सात गंधांग कहे गये हैं जो इस प्रकार हैं - १. मूल २. त्वक् ३. काष्ठ ४. निर्यास ५. पत्र ६. फूल और ७. फल।

यहां मूल से मुस्ता, वालुका, उसिर आदि, त्वक् से सुवर्ण छाल आदि, काष्ठ से चन्दन, अगुरु आदि, निर्यास से कपूर आदि, पत्र से जातिपत्र तमालपत्र आदि, पुष्प से प्रियंगु, नागर आदि और फल से जायफल, इलायची, लौंग आदि का ग्रहण हुआ है।

इन सात गंधांगों की सात सौ उपजातियाँ इस प्रकार होती है-

मूल तयकट्ठनिज्जास पत्तपुप्फफल मेय गंधगा।

वण्णादुत्तरभेया गंधंगसया मुणेयव्वा॥ १॥

इसकी व्याख्या रूप दो गाथाएं टीका में इस प्रकार कही गई है -

मुत्था सुवण्णछल्ली अगुरुवाला तमालपत्तं च।

तह य पियंगू जाईफलं च जाईए गंधगा॥ १॥

गुणणाए सत्त सया पंचहिं वण्णेहिं सुरभिगंधेणं।

रसपणएणं तह फासेहि य चउहिं मित्ते(पसत्थे)हिं॥ २॥

मूल त्वक् आदि सात गंधांगों को पांच वर्णों से गुणा करने पर ३५ भेद हुए। ये सुरभिगंध वाले ही होते हैं अतः (३५×१=३५) पैंतीस हुए। एक एक वर्ण भेद में पांच रस पाये जाते हैं अतः ३५×५=१७५ एक सौ पिचहत्तर भेद हुए। वैसे तो स्पर्श आठ होते हैं किंतु इन गंधांगों में चार प्रशस्त (मृदु-लघु-शीत-उष्ण) स्पर्श पाते हैं अतः १७५×४=७०० सात सौ अवान्तर जातियां होती हैं।

जल में उत्पन्न होने वाले कमल आदि फूलों की चार लाख कुलकोटि है, स्थल में उत्पन्न होने वाले कोरण्ट आदि फूलों की चार लाख कुलकोटि है। महुआ आदि महावृक्षों के फूलों की चार लाख कुलकोटि है और जाती आदि महागुल्मिक फूलों की चार लाख कुलकोटि है। इस प्रकार फूलों की सोलह लाख कुलकोटियां कही गई हैं।

वल्लियाँ और वल्लिशत

कइ णं भंते! वल्लीओ कइ वल्लिसया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि वल्लीओ चत्तारि वल्लीसया पण्णत्ता।

लताएं और लताशत

कइ णं भंते! लयाओ कइ लयासया पण्णत्ता?

गोयमा! अट्ठ लयाओ अट्ठलयासया पण्णत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वल्लियां और वल्लिशत कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! चार प्रकार की वल्लियां और चार वल्लिशत कहे गये हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! लताएं और लताशत कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! आठ प्रकार की लताएं और आठ लताशत कहे गये हैं।

विवेचन - मूल रूप से वल्लियों के चार प्रकार हैं और अवान्तर जाति भेद से चार सौ प्रकार हैं। किंतु इनकी स्पष्टता उपलब्ध नहीं है। लता के मूल भेद आठ और आठ सौ उपजातियाँ हैं।

हरितकाय और हरितकायशत

कइ णं भंते! हरियकाया हरियकायसया पण्णत्ता?

गोयमा! तओ हरियकाया तओ हरियकायसया पण्णत्ता, फलसहस्सं च बिंट-बद्धाणं फलसहस्सं च णालबद्धाणं, ते सव्वे वि हरियकायमेव समोयरंति, ते एवं समणुगम्ममाणा समणुगम्ममाणा एवं समणुगाहिज्जमाणा समणुगाहिज्जमाणा एवं समणुपेहिज्जमाणा समणुपेहिज्जमाणा एवं समणुचिंतिज्जमाणा समणुचिंतिज्जमाणा एएसु चेव दोसु काएसु समोयरंति, तं जहा - तसकाए चेव थावरकाए चेव, एवामेव सपुव्वावरेणं आजीवियदिट्ठंतेणं चउरासीइ जाइकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खाया॥ ९८॥

कठिन शब्दार्थ - **समणुगम्ममाणा** - समनुगम्यमाना-स्वयं समझे जाने पर, **समणुगाहिज्जमाणा**-समनुग्राह्यमाणाः-दूसरों से समझाए जाने पर, **समणुपेहिज्जमाणा** - समनुप्रेष्यमाणाः-पर्यालोचन किये जाने पर, **समणुचिंतिज्जमाणा** - समनुचिन्त्यमानाः-चिंतन किये जाने पर, **समोयरंति** - समवतरन्ति-समाविष्ट होते हैं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! हरितकाय और हरितशत कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! हरितकाय तीन प्रकार के और हरितशत भी तीन प्रकार के कहे गये हैं। बिंटबद्ध फल के हजार भेद और नालबद्ध फल के हजार भेद, ये सभी हरितकाय में समाविष्ट हैं। इस प्रकार सूत्र के द्वारा स्वयं समझे जाने पर, दूसरों के द्वारा सूत्र से समझाये जाने पर, युक्तियों द्वारा पर्यालोचन करने पर और अर्थालोचन के द्वारा चिंतन किये जाने पर ये सभी दो कायों-त्रस काय और स्थावर काय-में समाविष्ट होते हैं। इस प्रकार पूर्वापर विचारणा करने पर समस्त संसारी जीवों की आजीविक दृष्टान्त से चौरासी लाख योनि प्रमुख जातिकुलकोडी होती है, ऐसा जिनेश्वर भगवंतों ने कहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - हरितकाय के तीन भेद हैं - जलज, स्थलज और उभयज। प्रत्येक की १००-१०० उपजातियां होने से हरितकाय के कुल तीन सौ अवान्तर भेद होते हैं। बैंगन आदि बींट वाले फलों के हजारों प्रकार कहे गये हैं और नालबद्ध फलों के भी हजारों प्रकार हैं। ये सब तीन सौ भेद और अन्य भी तथाप्रकार के फलादि सभी का समावेश हरितकाय में होता है। हरितकाय का वनस्पतिकाय में और वनस्पतिकाय का स्थावर जीवों में समावेश होता है। इस प्रकार सूत्र से स्वयं समझने या दूसरों द्वारा समझाया जाने पर, अर्थालोचन रूप से विचार करने से, युक्ति द्वारा गहन चिंतन करने से और पूर्वापर विचारणा से सभी संसारी जीवों का त्रसकाय और स्थावरकाय में समावेश होता है। इस विषय में आजीव दृष्टांत समझना चाहिये अर्थात् जिस प्रकार 'जीव' शब्द से त्रस स्थावर, सूक्ष्म बादर, पर्याप्त अपर्याप्त सभी जीवों का समावेश हो जाता है उसी प्रकार इन चौरासी लाख जीवयोनि से समस्त संसारी जीवों का समावेश समझ लेना चाहिये।

चौरासी लाख जीवयोनि - स्थावर जीवों की ५२ लाख जीवयोनियां - ७ लाख पृथ्वीकाय, ७ लाख अप्काय, ७ लाख तेउकाय, ७ लाख वायुकाय, १० लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय और चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय। त्रस जीवों की ३२ लाख जीवयोनियां - दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय और चौदह लाख मनुष्य। इस तरह स्थावर की ५२ लाख और त्रस की ३२ लाख मिला कर कुल ८४ लाख जीवयोनियां कही गई है।

कुल कोटियां - एक करोड़ साढे सित्याणु लाख जातिकुल कोटियां होती हैं जो इस प्रकार हैं - पृथ्वीकाय की १२ लाख, अप्काय की ७ लाख, तेउकाय की तीन लाख, वायुकाय की सात लाख, वनस्पतिकाय की २८ लाख, बेइन्द्रिय की सात लाख, तेइन्द्रिय की आठ लाख, चउरिन्द्रिय की नौ लाख, जलचर की १२॥ लाख, स्थलचर की दस लाख, खेचर की बारह लाख, उरपरिसर्प की दस लाख, भुजपरिसर्प की नौ लाख, नारकी की २५ लाख, देवता की २६ लाख, मनुष्य की बारह लाख - ये कुल मिला कर एक करोड़ साढे सित्याणु लाख कुल कोटियां हैं।

विमानों के नाम

अत्थि णं भंते! विमाणाइं सोत्थियाणि, सोत्थियावत्ताइं सोत्थियपभाइं सोत्थियकंताइं सोत्थियवण्णाइं सोत्थियलेस्साइं सोत्थियज्झयाइं सोत्थियसिंगाराइं सोत्थियकूडाइं सोत्थियसिट्ठाइं सोत्थुत्तर वडिंसगाइं? हंता अत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या स्वस्तिक नाम वाले, स्वस्तिकावर्त नाम वाले, स्वस्तिकप्रभ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वस्तिककांत, स्वस्तिकवर्ण, स्वस्तिकलेश्य, स्वस्तिकध्वज, स्वस्तिक श्रृंगार, स्वस्तिक कूट, स्वस्तिक शिष्ट और स्वस्तिकोत्तरावतंसक नामक विमान है?

उत्तर - हाँ गौतम! स्वस्तिक नाम वाले आदि विमान हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में विमान के विषय में प्रश्नोत्तर है। टीकाकार ने विमान शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है -

'विशेषतः पुण्यप्राणिभिर्मन्यन्ते-तद्गतसौख्यानुभवनेनानुभूयन्ते इति विमानानि' - जहां विशेष रूप से पुण्यशाली जीवों के द्वारा तद्गत सुखों का अनुभव किया जाता है वे विमान हैं।

विमानों के नामों में यहां **'सोत्थियाइं'** - स्वस्तिक आदि पाठ है जबकि टीकाकार ने **'अच्चियाइं'** अर्चि आदि पाठ मान कर व्याख्या की है। इस प्रकार नामों में अंतर है।

विमानों की महत्ता

ते णं भंते! विमाणा के महालया पण्णत्ता?

गोयमा! जावइए णं सूरिए उदेइ जावइए णं च सूरिए अत्थमइ एवइया तिण्णोवासंतराइं अत्थेगइयस्स देवस्स एगे विक्कमे सिया, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे वीईमयमाणे जाव एगाहं वा दुयाहं वा उक्कोसेणं छम्मासा वीईवएज्जा, अत्थेगइया विमाणं वीईवएज्जा अत्थेगइया विमाणं णो वीईवएज्जा, एमहालया णं गोयमा! ते विमाणा पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - **उदेइ** - उदित होता है, **अत्थमइ** - अस्त होता है, **तिण्णोवासंतराइं** - तीन अवकाशान्तर प्रमाण, **विक्कमे** - विक्रम (पदन्यास)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे विमान कितने बड़े हैं?

उत्तर - हे गौतम! जितनी दूरी से सूर्य उदित होता है और जितनी दूरी से सूर्य अस्त होता है, यह एक अवकाशान्तर है। ऐसे तीन अवकाशान्तर प्रमाण क्षेत्र किसी देव का एक विक्रम (पद न्यास) हो और वह देव उस उत्कृष्ट त्वरित यावत् दिव्य देवगति से चलता हुआ यावत् एक दिन, दो दिन उत्कृष्ट छह मास तक चलता रहे तो वह किसी विमान का तो पार पा सकता है और किसी विमान का पार नहीं पा सकता है। हे गौतम! इतने बड़े वे विमान कहे गये हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में विमानों की महत्ता बताने के लिये देव की उपमा का सहारा लिया गया है।

जम्बूद्वीप में सर्वोत्कृष्ट दिन में कर्क संक्रांति के प्रथम दिन में सूर्य सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन और एक योजन के साठिया इक्कीस भाग (४७२६३$\frac{२१}{६०}$) जितनी दूरी से उदित होता है यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसका उदित क्षेत्र है। इतना ही उसका अस्त क्षेत्र है। उदय क्षेत्र और अस्त क्षेत्र मिला कर कुल ९४५२६ $\frac{४२}{६०}$ योजन क्षेत्र का परिमाण होता है, यह एक अवकाशान्तर है। ऐसे तीन अवकाशान्तर होने से उसका परिमाण अट्ठाईस लाख तीन हजार पांच सौ अस्सी योजन और एक योजन के $\frac{६}{६०}$ भाग होता है। इतना उस देव के एक विक्रम (पदन्यास) का परिमाण होता है। इतने सामर्थ्य वाला कोई देव लगातार एक दिन, दो दिन उत्कृष्ट छह मास तक चलता रहे तो भी उन विमानों में से किन्हीं का पार पा सकता है और किन्हीं का पार नहीं पा सकता। इतने बड़े वे विमान हैं।

अत्थि णं भंते! विमाणाइं अच्चीणि अच्चिरावत्ताइं तहेव जाव अच्चुत्तरवडिंसगाइं?

हंता अत्थि।

ते णं भंते! विमाणा के महालया पण्णत्ता?

गोयमा! एवं जहा सोत्थी(याई)णि णवरं एवइयाइं पंचउवासंतराइं अत्थेगइयस्स देवस्स एगे विक्कमे सिया, सेसं तं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या अर्चि, अर्चिरावर्त आदि यावत् अचिरुत्तरावतंसक नाम के विमान हैं?

उत्तर - हाँ, गौतम! अर्चि आदि नाम के विमान हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे विमान कितने बड़े कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार स्वस्तिक आदि विमानों के विषय में कहा है उसी प्रकार यहां भी कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां तीन के स्थान पर पांच अवकाशान्तर प्रमाण क्षेत्र किसी देव का एक विक्रम (पद न्यास) कहना चाहिये। शेष सारा वर्णन तदनुसार ही है।

अत्थि णं भंते! विमाणाइं कामाइं कामावत्ताइं जाव कामुत्तरवडिंसयाइं?

हंता अत्थि।

ते णं भंते! विमाणा के महालया पण्णत्ता?

गोयमा! जहा सोत्थीणि णवरं सत्तउवासंतराइं विक्कमे सेसं तं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या काम, कामावर्त यावत् कामोत्तरावतंसक विमान हैं?

उत्तर - हाँ, गौतम! काम आदि नाम वाले विमान हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे विमान कितने बड़े हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार स्वस्तिक आदि विमानों की वक्तव्यता कही है उसी प्रकार यहां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां वैसे सात अवकाशान्तर प्रमाण क्षेत्र किसी देव का एक विक्रम (पद न्यास) कहना चाहिये। शेष सारा वर्णन वही है।

अत्थि णं भंते! विमाणाइं विजयाइं वेजयंताइं जयंताइं अपराजियाइं?

हंता अत्थि।

ते णं भंते! विमाणा के महालया?

गोयमा! जावइए णं सूरिए उदेइ० एवइयाइं णव ओवासंतराइं सेसं तं चेव, णो चेव णं ते विमाणे वीईवएज्जा एमहालया णं विमाणा पण्णत्ता समणाउसो॥ ९९॥

॥ पढमो तिरिक्खजोणिय उद्देसो समत्तो॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के विमान हैं?

उत्तर - हाँ, गौतम! विजय आदि विमान हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे विमान कितने बड़े हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसी वक्तव्यता स्वस्तिक आदि विमानों की कही है वैसी ही यहां कह देनी चाहिये। विशेषता यह है कि यहां नौ अवकाशान्तर प्रमाण क्षेत्र किसी देव का एक विक्रम (पद न्यास) कहना चाहिये। इस तीव्र और दिव्य देव गति से वह देव एक दिन, दो दिन उत्कृष्ट छह मास तक चलता रहे तो वह किन्हीं विमानों के पार पहुँच सकता है और किन्ही विमानों के पार नहीं पहुंच सकता है। हे आयुष्मन् श्रमण! वे विमान इतने बड़े कहे गये हैं।

उपर्युक्त स्वस्तिक आदि विमान वैमानिक जाति के देवों के विमान समझना चाहिये। विजय आदि चार विमान तो चार अनुत्तर विमान के समझना चाहिये।

शेष नामों वाले विमान किस देवलोक के हैं, इसका खुलासा नहीं मिलता है। ये सभी विमान पृथ्वीकाय के होने से इन विमानों की पृच्छाएं तिर्यंच उद्देशक में बताई गई है।

॥ प्रथम तिर्यंचयोनिक उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीओ तिरिक्खजोणिय उद्देसो

तिर्यंच योनिक का द्वितीय उद्देशक

प्रथम उद्देशक में तिर्यंचों का वर्णन करने के बाद विशेष वर्णन करने के लिये यह दूसरा उद्देशक है, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

कइविहा णं भंते! संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता?

गोयमा! छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - पुढविकाइया जाव तसकाइया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संसार समापन्नक जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! संसार समापन्नक जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - पृथ्वीकायिक यावत् त्रसकायिक।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में संसारी जीवों के छह भेद बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. पृथ्वीकायिक २. अप्कायिक ३. तेजस्कायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक और ६. त्रसकायिक।

पृथ्वीकायिक आदि जीव

से किं तं पुढविकाइया?

पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - सुहुमपुढविकाइया बायरपुढविकाइया य।

से किं तं सुहुम पुढविकाइया?

सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, से तं सुहुपुढविकाइया।

से किं तं बायरपुढविकाइया?

बायरपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य एवं जहा पण्णवणापए, सण्हा सत्तविहा पण्णत्ता, खरा अणेगविहा पण्णत्ता जाव असंखेज्जा, से तं बायरपुढविकाइया, से तं पुढविक्काइया एवं चेव जहा पण्णवणापए तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव वणप्फइकाइया, एवं जाव जत्थेगो तत्थ सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता, से तं बायर वणप्फइकाइया, से तं वणस्सइकाइया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक का कथन हुआ।

बादर पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

बादर पृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में कहा है वैसा कह देना चाहिये। श्लक्ष्ण (मृदु-बारीक पीसे हुए आटे के समान) पृथ्वीकायिक सात प्रकार के हैं और खर पृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। यावत् असंख्यात हैं। यह बादर पृथ्वीकायिक का कथन हुआ। इस प्रकार पृथ्वीकायिक का वर्णन हुआ। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में कहा है वैसा संपूर्ण रूप से समझ लेना चाहिये यावत् वनस्पतिकायिक तक कह देना चाहिये। यावत् जहां एक वनस्पतिकायिक जीव है वहां कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त वनस्पतिकायिक समझना चाहिये। यह बादर वनस्पतिकायिक का वर्णन हुआ। यह वनस्पतिकायिक का कथन हुआ।

विवेचन - पृथ्वीकायिक आदि पांच स्थावर जीवों का विशेष वर्णन जानने के लिए सूत्रकार ने प्रज्ञापना सूत्र प्रथम पद की भलामण दी है। जिज्ञासुओं को वहां देख लेना चाहिये।

त्रसकायिक जीव

से किं तं तसकाइया?

तसकाइया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचेंदिया।

से किं तं बेइंदिया?

बेइंदिया अणेगविहा पण्णत्ता, एवं जं चेव पण्णवणापए तं चेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवा से तं अणुत्तरोववाइया, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, से तं तसकाइया॥ १००॥

भावार्थ - त्रसकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

त्रसकायिक जीव चार प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

बेइन्द्रिय जीवों का क्या स्वरूप है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेइन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में कहा गया है वैसा ही यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों तक कह देना चाहिये। यह अनुत्तरौपपातिक देवों का कथन हुआ। यह देवों का कथन हुआ। यह पंचेन्द्रियों का कथन हुआ। इसके साथ ही त्रसकायिक का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद के अनुसार त्रस जीवों के भेदों का संपूर्ण वर्णन यहां भी समझना चाहिये।

पृथ्वीकायिकों का वर्णन

कइविहा णं भंते! पुढवी पण्णत्ता?

गोयमा! छव्विहा पुढवी पण्णत्ता, तं जहा - सण्हा पुढवी सुद्ध पुढवी वालुया पुढवी मणोसिला पुढवी सक्करा पुढवी खरपुढवी।

सण्हा पुढवी णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगं वाससहस्सं।

सुद्ध पुढवीए पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस वाससहस्साइं।

वालुया पुढवीए पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चोद्दस-वाससहस्साइं।

मणोसिला पुढवीए पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सोलस-वाससहस्साइं।

सक्करा पुढवीए पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अट्ठारस-वाससहस्साइं।

खर पुढवीए पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीस-वाससहस्साइं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! पृथ्वी कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वी छह प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - १. श्लक्ष्ण (मृदु) पृथ्वी २. शुद्ध पृथ्वी ३. बालुका पृथ्वी ४. मनःशिला पृथ्वी ५. शर्करा पृथ्वी और ६. खर पृथ्वी।

प्रश्न - हे भगवन्! श्लक्ष्ण पृथ्वी की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! श्लक्ष्ण पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष की है।

प्रश्न - हे भगवन्! शुद्ध पृथ्वी की पृच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बारह हजार वर्ष की स्थिति शुद्ध पृथ्वी की है।

प्रश्न - हे भगवन्! बालुका पृथ्वी की पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! बालुका पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट चौदह हजार वर्ष है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनःशिला पृथ्वी की पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट सोलह हजार वर्ष।

प्रश्न - हे भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी की पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट अठारह हजार वर्ष।

प्रश्न - हे भगवन्! खर पृथ्वी की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! खर पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वी छह प्रकार की कही गई है -

१. **श्लक्ष्ण पृथ्वी** - चूर्णित आटे के समान मुलायम पृथ्वी।

२. **शुद्ध पृथ्वी** - पर्वत आदि के मध्य में जो मिट्टी होती है वह शुद्ध पृथ्वी है

३. **बालुका पृथ्वी** - बारीक रेत बालुका पृथ्वी है।

४. **मनःशिला पृथ्वी** - मैनशिल आदि मनःशिला पृथ्वी है।

५. **शर्करा पृथ्वी** - कंकर, मुरुण्ड आदि शर्करा पृथ्वी है।

६. **खर पृथ्वी** - कठोर पाषाण रूप पृथ्वी खर पृथ्वी है।

इन पृथ्वियों की कालस्थिति इस प्रकार कही गई है -

श्लक्ष्ण पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष।

शुद्ध पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बारह हजार वर्ष।

बालुका पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट चौदह हजार वर्ष।

मनःशिला पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सोलह हजार वर्ष।

शर्करा पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अठारह हजार वर्ष।

खर पृथ्वी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष।

णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिइं, एवं सव्वं भाणियव्वं जाव सव्वट्ठसिद्ध देव त्ति॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। इस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के स्थिति पद के अनुसार यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों तक की स्थिति कह देनी चाहिये।

जीवे णं भंते! जीवेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सव्वद्धं।

पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सव्वद्धं एवं जाव तसकाइए॥ १०१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव, जीव रूप में कब तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सब काल तक जीव जीव ही रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक रूप में कब तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य की अपेक्षा पृथ्वीकाय सर्वकाल तक रहता है। इस प्रकार त्रसकाय तक कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने भवस्थिति का वर्णन करने के बाद कायस्थिति का कथन किया है। 'जीव पद' से यहां किसी एक खास जीव का ग्रहण नहीं हुआ किंतु जीव सामान्य का ग्रहण हुआ है। अर्थात् जीव, जीव के रूप में सदा रहेगा ही। वह सदा जिया है, जीता है और जीता रहेगा। इस प्रकार जीव को लेकर सामान्य जीव की अपेक्षा कायस्थिति कही गई है। पृथ्वीकाय भी पृथ्वीकाय रूप में सामान्य से सदैव रहेगा ही, कोई भी समय ऐसा नहीं होगा जब पृथ्वीकायिक जीव नहीं रहेंगे। इसलिये उनकी काय स्थिति सर्वाद्धा कही गई है। पृथ्वीकाय की तरह अप्काय आदि जीवों की कायस्थिति भी इसी प्रकार से समझ लेनी चाहिये।

पडुप्पण्ण पुढविकाइया णं भंते! केवइकालस्स णिल्लेवा सिया?

गोयमा! जहण्णपए असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी ओसप्पिणीहिं, उक्कोसपए असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी ओसप्पिणीहिं जहण्णपयाओ उक्कोसपए असंखेज्जगुणा, एवं जाव पडुप्पण्णवाउक्काइया॥

कठिन शब्दार्थ - पडुप्पण्ण - प्रत्युत्पन्न अर्थात् वर्तमान काल के, **णिल्लेवा** - निर्लेप-खाली होना

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रत्युत्पन्न पृथ्वीकायिक (वर्तमान काल के पृथ्वीकायिक) जीव कितने काल में निर्लेप हो सकते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में और उत्कृष्ट से भी असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में वर्तमान काल के पृथ्वीकायिक जीव निर्लेप हो सकते हैं। यहां जघन्य से उत्कृष्ट असंख्यात गुणा समझना चाहिये। इसी प्रकार यावत् प्रत्युत्पन्न वायुकायिक के विषय में कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - यहां निर्लेप का अर्थ है - प्रति समय एक एक जीव का अपहार किया जाय तो कितने समय में वे जीव सब के सब अपहृत हो जायें अर्थात् वह आधार स्थान उन जीवों से रिक्त हो जाय। प्रस्तुत सूत्र में प्रत्युत्पन्न-वर्तमान काल के पृथ्वीकायिक जीवों के निर्लेप होने के विषय में प्रश्न किया गया है। जघन्य से अर्थात् जब एक समय में कम से कम पृथ्वीकायिक जीव मौजूद होते हैं उस अपेक्षा से यदि प्रत्येक समय में एक एक जीव अपहृत किया जावे तो उनके पूरे अपहरण होने में असंख्यात उत्सर्पिणियां और असंख्यात अवसर्पिणियां समाप्त हो जावेंगी। इसी प्रकार उत्कृष्ट से जब एक ही काल में अधिक से अधिक पृथ्वीकायिक जीव मौजूद होते हैं उस अपेक्षा से एक एक समय में एक एक जीव का अपहार किया जाय तो भी पूरे अपहरण में असंख्यात उत्सर्पिणियां और असंख्यात अवसर्पिणियां व्यतीत हो जायेगी अर्थात् इतने काल में वह स्थान पूरा उन जीवों से खाली होगा। यहां जघन्य पद से उत्कृष्ट पद असंख्यातगुणा अधिक है। प्रत्युत्पन्न पृथ्वीकायिक की तरह प्रत्युत्पन्न अप्कायिक, प्रत्युत्पन्न तेजस्कायिक और प्रत्युत्पन्न वायुकायिक के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

पडुप्पण्ण वणप्फइकाइया णं भंते! केवइ कालस्स णिल्लेवा सिया?

गोयमा! पडुप्पण्ण वणप्फइकाइया जहण्णपए अपया उक्कोसपए अपया पडुप्पण्ण वणप्फइकाइयाणं णत्थि णिल्लेवणा॥

पडुप्पण्ण तसकाइयाणं पुच्छा, जहण्णपए सागरोवम सय पुहुत्तस्स उक्कोसपए सागरोवम सय पुहुत्तस्स, जहण्णपया उक्कोसपए विसेसाहिया॥ १०२॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकायिक जीव कितने काल में निर्लेप हो सकते हैं?

उत्तर - हे गौतम! प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकायिकों के लिये जघन्य और उत्कृष्ट दोनों पदों में ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वनस्पतिकायिक अनन्तानन्त होने से उनका निर्लेप नहीं हो सकता।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक जीव कितने काल में निर्लेप हो सकते हैं?

उत्तर - हे गौतम! प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक जीव जघन्य सागरोपम शतपृथक्त्व काल में और उत्कृष्ट भी सागरोपम शत पृथक्त्व काल में निर्लेप हो सकते हैं। यहां जघन्य से उत्कृष्ट पद विशेषाधिक समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वनस्पतिकायिक जीवों की निर्लेपना संबंधी प्रश्न के उत्तर में जघन्य पद में और उत्कृष्ट पद में अपया-अपद कहा गया है अर्थात् उक्त पद द्वारा वे नहीं कहे जा सकते हैं। क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव अनन्तानंत है अतएव 'वे इतने समय में अपहृत हो जायेंगे' ऐसा कहना संभव नहीं है।

जघन्य पद में सागरोपम शत पृथक्त्व (दो सौ सागरोपम से नौ सौ सागरोपम) जितने काल में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उत्कृष्ट पद में भी सागरोपम शत पृथक्त्व काल में प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक जीव निर्लेप हो सकते हैं किंतु यहां जघन्य पद के काल से उत्कृष्ट पद का काल विशेषाधिक समझना चाहिये।

विशेष विवेचन - प्रत्युत्पन्न पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय संबंधी विचारणा-इस वर्णन में प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकायिक जीवों को जघन्य पद और उत्कृष्ट पद में 'अपद' कहा है। यदि इसका अर्थ 'टीका के अनुसार' प्रथम समय के (तत्काल उत्पद्यमान) वनस्पति किया जायेगा तो अपद की स्थिति नहीं बन सकेगी। क्योंकि पांचों कायों में से आकर वनस्पतिकाय में उत्पन्न हुए प्रथम समय के वनस्पतिकायिकों की तो निश्चित संख्या है। इससे जघन्य पद व उत्कृष्ट पद संभव हैं। आगम में जघन्य, उत्कृष्ट पद में 'अपद' कहा है। अतः इसका अर्थ टीकानुसार करना उचित प्रतीत नहीं होता है। इसका अर्थ तो - 'वर्तमान में जो वनस्पतिकाय का आयु वेदन कर रहे हैं, वे सभी प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकाय कहलाते हैं।' ऐसा अर्थ करने पर जघन्य, उत्कृष्ट पद में 'अपदता' सिद्ध हो जाती है। क्योंकि सिद्ध होने पर जीव वनस्पतिकाय में से घटते (कम होते) हैं। अतः उनका जघन्य उत्कृष्ट पद निश्चित नहीं हो सकता। वनस्पति के समान ही 'प्रत्युत्पन्न पृथ्वी' आदि पांचों कायों का भी यही अर्थ करना चाहिये। 'प्रत्युत्पन्न' शब्द वर्तमान का द्योतक है। 'प्रथम समय' के लिए तो इसी आगम में **'पढम समय'** शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः प्रत्युत्पन्न शब्द का अर्थ 'प्रथम समय' करना उचित नहीं है।

शंका - यदि वर्तमान के सभी त्रस जीवों को प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक समझा जायेगा तो इनकी संख्या 'सागरोपम शत पृथक्त्व' कैसे सिद्ध (घटित) होगी?

समाधान - प्रज्ञापना सूत्र के १२ वें पद में 'बद्धमुक्त शरीरों के वर्णन में' तो प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक जीव 'प्रतर के असंख्यातवें भाग की-असंख्यात कोटाकोटि योजन प्रमाण विष्कंभ सूचि' जितने ही बताये हैं। इसका समाधान यही है कि यहां पर 'अद्धा सागरोपम' नहीं समझकर 'क्षेत्र सागरोपम' लेने चाहिये। 'पृथक्त्व' शब्द 'अनेक' अर्थवाची होने से अन्य स्थलों की तरह यहां पर भी 'असंख्यात' के अर्थ समझना चाहिये। इस प्रकार अर्थ करने पर प्रज्ञापना सूत्र के १२ वें पद के अनुसार 'असंख्यात कोटाकोटी योजन' प्रमाण प्रतर के असंख्यातवें भाग के प्रदेशों जितने त्रस जीवों का प्रमाण होता है। अतः सागरोपम शत पृथक्त्व शब्द भी उसी अर्थ का द्योतक-पूरक हो जाता है। प्रत्युत्पन्न पृथ्वीकायिक आदि चार कायों को यहां पर 'असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी प्रमाण' बताया है। इसे भी असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण क्षेत्र के प्रदेशों को गिनने में जितनी असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी होती है उतनी यहां पर ग्रहण करनी चाहिये। चार कायों के अत्यधिक जीव जब वनस्पतिकाय में उत्पन्न हो जाते हैं तब जघन्य पद वाले प्रत्युत्पन्न पृथ्वीकायिक आदि प्राप्त होते हैं। जब अत्यधिक जीव इन कायों में विद्यमान (मौजूद) रहते हैं, तब उत्कृष्ट पद वाले प्रत्युत्पन्न पृथ्वीकायिक आदि कहलाते हैं। जघन्य पद से उत्कृष्ट पद की अधिकता बताना संभव नहीं है। त्रसकाय मात्र बादर एवं अत्यल्प होने से जघन्य पद से उत्कृष्ट पद विशेषाधिक ही होता है। आगम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(जीवाभिगम, भगवती आदि) में त्रसकाय के १९ (उन्नीस) ही दण्डकों में जघन्य उपपात **'एकोत्तरिया'** (१,२,३ यावत् संख्याता, असंख्याता) बताया है। अतः सभी दण्डकों का उपपात-जघन्य में बहुत थोड़ा होना चाहिए। 'सागरोपम शत पृथक्त्व' जितनी संख्या की कोई संभावना भी नहीं है।

बन्ध विहाणं (मूल पयडी बन्धो) ग्रन्थ के पृष्ठ २८६ में 'त्रसों के आयु बंधक अशाश्वत है।' ऐसा बताया गया है। 'प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक' को 'प्रथम समय के त्रसकायिक' मानने पर 'जघन्य पद से उत्कृष्ट पद को असंख्यात गुणा' मानना पड़ेगा। अतः प्रत्युत्पन्न (पडुप्पण्ण) शब्द का अर्थ 'वर्तमान कालीन' करना ही उचित प्रतीत होता है।

।। इति संभावना ।। तत्वं तु बहुश्रुतगम्यम् इति ।।

अविशुद्ध लेशी-विशुद्ध लेशी अनगार

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

हंता जाणइ पासइ। जहा अविसुद्धलेस्सेणं छ आलावगा एवं विसुद्धलेस्सेण वि छ आलावगा भाणियव्वा जाव विसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?

हंता जाणइ पासइ॥ १०३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अविशुद्ध लेश्या वाला अनगार समुद्घात से विहीन आत्मा द्वारा क्या अविशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता देखता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वह जानता देखता नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! अविशुद्ध लेश्या वाला अनगार समुद्घात से विहीन आत्मा द्वारा क्या विशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता देखता है।

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! अविशुद्ध लेश्या वाला अनगार समुद्घात युक्त आत्मा द्वारा क्या अविशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता है, देखता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! अविशुद्ध लेश्या वाला अनगार समुद्घात युक्त आत्मा द्वारा क्या अविशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता देखता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! अविशुद्ध लेश्या वाला अनगार समवहत-असमवहत आत्मा द्वारा क्या अविशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता देखता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! अविशुद्ध लेश्या वाला अनगार समुद्घात से समवहत-असमवहत आत्मा द्वारा क्या विशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता देखता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! विशुद्ध लेश्या वाला अनगार समुद्घात द्वारा असमवहत आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता देखता है?

उत्तर - हाँ, गौतम! जानता देखता है। जिस प्रकार अविशुद्ध लेश्या वाले अनगार के लिए छह आलापक कहे हैं उसी प्रकार छह आलापक विशुद्ध लेश्या वाले अनगार के लिए भी कह देने चाहिये यावत्

प्रश्न - हे भगवन्! विशुद्ध लेश्या वाला अनगार समवहत-असमवहत आत्मा द्वारा क्या विशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता देखता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हाँ, गौतम ! जानता देखता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अशुद्ध लेश्या वाले और विशुद्ध लेश्या वाले अनगार को लेकर ज्ञान दर्शन विषयक प्रश्न किये गये हैं। अविशुद्ध लेश्या से तात्पर्य कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या से है। विशुद्ध लेश्या से तात्पर्य तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या से है। समवहत का अर्थ है - वेदना आदि समुद्घात से युक्त होना और असमवहत का अर्थ है - वेदना आदि समुद्घात से रहित। समवहत-असमवहत का अर्थ है - वेदना आदि समुद्घात से न तो पूर्णतया युक्त है और न पूर्णतया रहित। अविशुद्ध लेश्या वाले अनगार के विषय में छह आलापक इस प्रकार कहे गये हैं -

१. असमवहत होकर अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानना देखना

२. असमवहत होकर विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानना देखना

३. समवहत होकर अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानना देखना

४. समवहत होकर विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानना देखना

५. समवहत-असमवहत होकर अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानना देखना

६. समवहत-असमवहत होकर विशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानना देखना।

उपरोक्त छह आलापकों में अविशुद्ध लेश्या वाले अनगार के जानने देखने का निषेध किया गया है क्योंकि अविशुद्ध लेश्या वाला होने से उसका ज्ञान और दर्शन व्यवस्थित नहीं होता है अतः वह किसी को सम्यक् रूप से जानता देखता नहीं है। विशुद्ध लेश्या वाले अनगार के लिए भी उपरोक्तानुसार छह आलापक कह देने चाहिये किंतु विशुद्ध लेश्या वाला होने से उसका यथावस्थित ज्ञान दर्शन होता है अतः वह देवादि पदार्थों को सम्यक् रूप जानता देखता है। मूल टीका में भी विशुद्ध लेश्या वाले के लिए कहा है - **"शोभनमशोभनं वा वस्तु यथावद् विसुद्धलेश्यो जानाति। समुद्घातोऽपि तस्याप्रतिबन्धक एव।"**

अर्थात् विशुद्ध लेश्या वाला शोभन या अशोभन वस्तु को यथार्थ रूप में जानता है। समुद्घात भी उसका प्रतिबन्धक नहीं होता।

यहां पर अविशुद्ध लेश्या में लेश्या अशुभ (कृष्ण आदि तीन) होने से स्वयं का देखना सही नहीं होने से जानता देखता नहीं है। समुद्घात अवस्था जानने देखने में प्रतिबन्धक (रुकावट करने वाली) नहीं होती है। लेश्या से तो प्रतिबन्धकता होती है जैसे अस्थिर पानी में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब बराबर दिखाई नहीं देता है वैसे ही अशुभ लेश्याओं में पदार्थों का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है।

यहां पर अणगार (अनगार) शब्द से प्रथम गुणस्थान वाले भावित आत्मा अनगार अन्यतीर्थी भी समझ सकते हैं। विशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी को भी विशिष्ट अवधिज्ञान वाले अनगार ही जानते हैं। छोटे अवधिज्ञान वाले नहीं जानते हैं। तेजो आदि तीन शुभ लेश्याओं में साधु में शुभ योग ही होने की संभावना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्यतीर्थिक और क्रिया-प्ररूपणा

अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति एवं भासेंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति- एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तं जहा - सम्मत्त किरियं च मिच्छत्त किरियं च, जं समयं सम्मत्त किरियं पकरेइ तं समयं मिच्छत्तं किरियं पकरेइ, जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ तं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ, सम्मत्त किरिया पकरणयाए मिच्छत्तकिरियं पकरेइ मिच्छत्तं किरियापकरणयाए सम्मत्तकिरियं पकरेइ, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तं जहा - सम्मत्त किरियं च मिच्छत्त किरियं च, से कहमेयं भंते! एवं?

गोयमा! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ तहेव जाव सम्मत्त किरियं च मिच्छत्त किरियं च, जे ते एवमाहंसु तं णं मिच्छा, अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि-एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ, तं जहा - सम्मत्त किरियं वा मिच्छत्त किरियं वा, जं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ णो तं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ, तं चेव जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ णो तं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ, सम्मत्त किरियापकरणयाए णो मिच्छत्तकिरियं पकरेइ मिच्छत्तकिरियापकरणयाए णो सम्मत्तकिरियं पकरेइ, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ, तं जहा - सम्मत्तकिरियं वा मिच्छत्तकिरियं वा॥ १०४॥

॥ बीओ तिरिक्खजोणिय उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **अण्णउत्थिया** - अन्यतीर्थिक, **एवं** - इस प्रकार, **आइक्खंति** - कहते हैं, **भासंति** - बोलते हैं, **पण्णवेंति** - प्रज्ञापना करते हैं, **परूवेंति** - प्ररूपणा करते हैं, **सम्मत्तकिरियं** - सम्यक्क्रिया, **मिच्छत्तकिरियं** - मिथ्याक्रिया, **पकरेइ** - करता है, **सम्मत्तकिरियापकरणयाए** - सम्यक् क्रिया करते हुए।

भावार्थ - हे भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार बोलते हैं, इस प्रकार प्रज्ञापना करते हैं, इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि "एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है। यथा - सम्यक् क्रिया और मिथ्या क्रिया। जिस समय सम्यक् क्रिया करता है उसी समय मिथ्या क्रिया भी करता है और जिस समय मिथ्या क्रिया करता है उस समय सम्यक् क्रिया भी करता है। सम्यक् क्रिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए मिथ्या क्रिया भी करता है और मिथ्या क्रिया करते हुए सम्यक् क्रिया भी करता है। इस प्रकार एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है, यथा – सम्यक् क्रिया और मिथ्या क्रिया।"

प्रश्न – हे भगवन्! उनका यह कथन कैसा है?

उत्तर – हे गौतम! अन्यतीर्थिक जो ऐसा कहते हैं, ऐसा बोलते हैं, ऐसी प्रज्ञापना करते हैं और ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है यथा – सम्यक् क्रिया और मिथ्या क्रिया। जो अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कथन करते हैं।

हे गौतम! मैं ऐसा कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि एक जीव एक समय में एक ही क्रिया करता है यथा – सम्यक् क्रिया या मिथ्या क्रिया। जिस समय सम्यक् क्रिया करता है उस समय मिथ्या क्रिया नहीं करता और जिस समय मिथ्या क्रिया करता है उस समय सम्यक् क्रिया नहीं करता है। सम्यक् क्रिया करते हुए मिथ्या क्रिया नहीं करता और मिथ्या क्रिया करते हुए सम्यक् क्रिया नहीं करता। इस प्रकार एक जीव एक समय में एक ही क्रिया करता है वह इस प्रकार है – सम्यक् क्रिया अथवा मिथ्या क्रिया।

।। तिर्यंच योनिक का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

विवेचन – प्रस्तुत सूत्र में "एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है" अन्यतीर्थिकों के इस मत का खण्डन किया गया है। सुंदर अध्यवसाय वाली क्रिया सम्यक् क्रिया कहलाती है और असुन्दर अध्यवसाय वाली क्रिया मिथ्या क्रिया है। अन्यतीर्थिकों का मानना है कि 'जीव जिस समय सम्यक् क्रिया करता है उस समय मिथ्या क्रिया भी करता है और जिस समय मिथ्या क्रिया करता है उस समय सम्यक् क्रिया भी करता है।' किंतु प्रभु अन्यतीर्थिकों की इस मान्यता का खंडन करते हुए फरमाते हैं कि हे गौतम! एक जीव एक समय में एक ही क्रिया कर सकता है। यथा – सम्यक् क्रिया या मिथ्या क्रिया। वह इन दोनों क्रियाओं को एक साथ नहीं कर सकता क्योंकि इन दोनों में परस्पर परिहार रूप विरोध है। जिस समय सम्यक् क्रिया हो रही है उस समय मिथ्या क्रिया नहीं हो सकती और जिस समय मिथ्या क्रिया हो रही है उस समय सम्यक् क्रिया नहीं हो सकती। क्योंकि जीव का उभयकरण स्वभाव है ही नहीं। यदि जीव का उभयकरण स्वभाव माना जाय तो मिथ्यात्व की कभी निवृत्ति नहीं होगी और जीव कभी भी मोक्ष में नहीं जा सकेगा। किंतु ऐसा नहीं होता। अतएव यह सिद्ध होता है कि जीव सम्यक् क्रिया करते समय मिथ्या क्रिया नहीं करता और मिथ्या क्रिया करते समय सम्यक् क्रिया नहीं करता। दोनों क्रियाएं एक साथ कभी संभव नहीं है अतः यह सिद्धान्त सही है कि जीव एक समय में एक ही क्रिया कर सकता है – सम्यक् क्रिया या मिथ्या क्रिया।

।। तृतीय प्रतिपत्ति के तिर्यंचयोनिक अधिकार में दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणुस्स उद्देसो - मनुष्य उद्देशक

(मनुष्य अधिकार)

तिर्यंच जीवों का वर्णन करने के बाद सूत्रकार अब मनुष्य का कथन करते हैं जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

मनुष्य के भेद

से किं तं मणुस्सा?

मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - संमुच्छिम मणुस्सा य गब्भवक्कंतिय मणुस्सा य॥ १०५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सम्मूर्च्छिम मनुष्य और २. गर्भव्युत्क्रांतिक (गर्भज) मनुष्य।

से किं तं संमुच्छिम मणुस्सा?

संमुच्छिम मणुस्सा एगागारा पण्णत्ता।

कहि णं भंते! संमुच्छिम मणुस्सा संमुच्छंति?

गोयमा! अंतोमणुस्सखेत्ते जहा पण्णवणाए जाव से त्तं संमुच्छिम मणुस्सा॥ १०६॥

कठिन शब्दार्थ - संमुच्छंति - संमूर्च्छन्ति-पैदा होते हैं, **अंतोमणुस्सखेत्ते** - अन्तर्मनुष्य क्षेत्रे-मनुष्य क्षेत्र में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्य एक ही प्रकार के कहे गये हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहाँ पैदा होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्य, मनुष्य क्षेत्र में चौदह अशुचि स्थानों में उत्पन्न होते हैं इत्यादि सारा वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार कह देना चाहिये यावत् यह सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का वर्णन हुआ।

विवेचन - सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में एवं जीवाभिगम सूत्र की दूसरी प्रतिपत्ति में किया गया है अतः जिज्ञासुओं को वहां देख लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं गब्भवक्कंतिय मणुस्सा?

गब्भवक्कंतिय मणुस्सा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा - कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा अंतरदीवगा॥ १०७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कर्मभूमिज २. अकर्मभूमिज और ३. अंतरद्वीपज (अन्तरद्वीपिक)।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में गर्भज मनुष्यों के तीन भेद - कर्मभूमिज (कर्मभूमिक), अकर्मभूमिज (अकर्मभूमिक) और अतंरद्वीपज (अंतरद्वीपिक) का कथन किया गया है। अनानुपूर्वी क्रम से अब सूत्रकार अंतरद्वीपिक मनुष्यों का वर्णन करते हैं -

से किं तं अंतरदीवगा?

अंतरदीवगा अट्ठावीसइविहा पण्णत्ता, तं जहा - एगूरुया आभासिया वेसाणिया णंगोलिया हयकण्णा ४ आयंसमुहा ४ आसमुहा ४ आसकण्णा ४ उक्कामुहा ४ घणदंता जाव सुद्धदंता॥ १०८॥

भावार्थ - अंतरद्वीपिक मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

अंतरद्वीपिक मनुष्य अट्ठाईस प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - एकोरुक, आभाषिक, वैषाणिक, नांगोलिक, हयकर्ण आदि, आदर्श मुख आदि, अश्वमुख आदि, अश्वकर्ण आदि, उल्कामुख आदि घनदन्त आदि यावत् शुद्धदंत।

विवेचन - लवण समुद्र के भीतर होने से अथवा परस्पर द्वीपों में अंतर (दूरी) होने से ये अन्तरद्वीप कहलाते हैं। अंतरद्वीपों में रहने वाले मनुष्यों को अंतरद्वीपिक कहते हैं।

अतंरद्वीपिक मनुष्यों के अट्ठावीस भेद इस प्रकार हैं - १. एकोरुक २. आभाषिक ३. वैषाणिक ४. नांगोलिक ५. हयकर्ण ६. गजकर्ण ७. गोकर्ण ८. शष्कुली कर्ण ९. आदर्शमुख १०. मेण्ढमुख ११. अयोमुख १२. गोमुख १३. अश्वमुख १४. हस्तिमुख १५. सिंहमुख १६. व्याघ्रमुख १७. अश्व कर्ण १८. सिंहकर्ण १९. अकर्ण २०. कर्ण प्रावरण २१. उल्कामुख २२. मेघ मुख २३. विद्युन्मुख २४. विद्युद्दन्त २५. घनदन्त २६. लष्ट दन्त २७. गूढदन्त और २८. शुद्धदन्त। यद्यपि अन्तरद्वीपों की संख्या ५६ होती है तथापि यहां पर जो २८ बताई गई है उसका कारण यह है कि - नाम २८ ही होते हैं। ये ही २८ नामों वाले अन्तरद्वीप चुल्लहिमवन्त पर्वत की चारों विदिशाओं में सात-सात की चार पंक्तियों के रूप में आये हुए हैं तथा ये ही २८ नामों वाले अन्तरद्वीप शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में सात-सात की चार पंक्तियों के रूप में आये हुए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकोरुक आदि द्वीपों में रहे हुए मनुष्यों को एकोरुकीय आदि कहे जाते हैं जैसे भारत में रहने वाले को भारतीय कहा जाता है।

एकोरुक द्वीप का वर्णन

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं एगोरुय मणुस्साणं एगोरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते? गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवण समुद्दं तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगूरुयद्दीवे णामं दीवे पण्णत्ते तिण्णि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं णव एगूणपण्णजोयणसए किंचि विसेसेण परिक्खेवेणं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं च वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

सा णं पउमवरवेइया अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं एगूरुयदीवं सव्वओ समंता परिक्खेवेणं पण्णत्ता। तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा - वइरामया णिम्मा एवं वेइयावण्णओ जहा रायपसेणइए तहा भाणियव्वो॥ १०९॥

कठिन शब्दार्थ - वासहरपव्वयस्स - वर्षधर पर्वत के, **पउमवरवेइया** - पद्मवरवेदिका, **वण्णावासे** - वर्णावास-वर्णन, **वइरामया** - वज्रमयी, **णिम्मा** - नेमिः-नींव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दक्षिण दिशा के एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक नामक द्वीप कहां है?

उत्तर - हे गौतम! जंबूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के उत्तरपूर्व के चरमान्त से लवण समुद्र में तीन सौ योजन जाने पर दक्षिण दिशा के एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक नामक द्वीप कहा गया है। वह द्वीप तीन सौ योजन की लम्बाई चौड़ाई वाला तथा नौ सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक परिधि वाला है। उसके चारों ओर एक पद्मवर वेदिका और एक वनखंड है।

वह पद्मवरवेदिका आठ योजन ऊंची, पांच सौ धनुष चौड़ाई वाली और एकोरुक द्वीप को चारों ओर से घेरे हुए हैं। उस पद्मवरवेदिका का वर्णन इस प्रकार है। यथा उसकी नींव वज्रमय है आदि वेदिका का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार कह देना चाहिये।

सा णं पउमवरवेइया एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। से णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं वेइयासमेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, से णं वणसंडे किण्हे किण्होभासे एवं जहा रायपसेणइयवणसंडवण्णओ तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं तणाण य वण्णगंधफासो सद्दो तणाणं वावीओ उप्पायपव्वया पुढविसिलापट्टगा य भाणियव्वा जाव तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंति॥ ११०॥

कठिन शब्दार्थ - चक्कवालविक्खंभेणं - चक्रवाल विष्कम्भ-गोलाकार विस्तार वाला, **वेइयासमेणं** - वेदिका के समान, **वावीओ** - बावडियाँ, **उप्पायपव्वया** - उत्पात पर्वत, **पुढविसिलापट्टगा**- पृथ्वीशिलापट्टक।

भावार्थ - वह पद्मवरवेदिका एक वनखण्ड से सब ओर से घिरी हुई है। वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन गोलाकार विस्तार वाला और वेदिका के समान परिधि वाला है। वह वनखण्ड बहुत हरा भरा और सघन होने से काला और काली कांति वाला प्रतीत होता है। इस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार वनखण्ड का सारा वर्णन समझ लेना चाहिये। तृणों का वर्ण, गंध, स्पर्श, शब्द तथा बावड़ियां, उत्पात पर्वत, पृथ्वीशिलापट्टक आदि का वर्णन भी कह देना चाहिये यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव और देवियां उठते बैठते हैं यावत् सुखानुभव करते हुए विचरण करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक द्वीप कहां है? इसका वर्णन किया गया है। एकोरुक द्वीप जंबूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में तथा चुल्लहिमवंत पर्वत के ईशानकोण के चरमांत से लवणसमुद्र में तीन सौ योजन आगे जाने पर आता है। वह एकोरुक द्वीप तीन सौ योजन की लम्बाई चौड़ाई वाला और नौ सो उनपचास योजन से कुछ अधिक परिधि वाला कहा गया है। उसके चारों ओर स्थित पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र के समान समझ लेना चाहिये।

एगोरुयदीवस्स णं दीवस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा एवं सयणिज्जे भाणियव्वे जाव पुढविसिलापट्टगंसि तत्थ णं बहवे एगोरुयदीवया मणुस्सा य मणुस्सीओ य आसयंति जाव विहरंति।

एगोरुयद्दीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे उद्दालका कोद्दालका कयमाला णयमाला णट्टमाला सिंगमाला संखमाला दंतमाला सेलमाला णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो जाव बीयमंतो पत्तेहि य पुप्फेहि य अच्छण्णपडिच्छण्णा सिरीए अईव अईव उवसोहेमाणा उवसोहेमाणा चिट्ठति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **बहुसमरमणिज्जे** - बहुत समतल रमणीय, **आलिंगपुक्खरेइ** - आलिंग-पुष्करइति आलिंग अर्थात् मुरज (मृदंग विशेष) और पुष्कर का अर्थ है - चर्मपुटक, **दुमगणा** - द्रुम गण-वृक्ष समूह, **कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला** - कुश विकुश विशुद्ध वृक्षमूला-कुश (दर्भ) और कांस से रहित मूल वाले, **अच्छण्णपडिच्छण्णा** - आच्छन्न प्रतिच्छन्ना-लदे हुए, **सिरीए** - श्रिया-शोभा से, **उवसोहेमाणा**- शोभायमान।

भावार्थ - एकोरुक द्वीप का भीतरी भाग बहुत समतल और रमणीय कहा गया है। जैसे मुरज का चर्मपुट समतल होता है वैसा समतल वहां का भूमिभाग है - आदि। इसी प्रकार शय्या की मृदुता भी कह देनी चाहिये यावत् पृथ्वीशिलापट्टक पर बहुत से एकोरुक द्वीप के मनुष्य और मनुष्य स्त्रियां उठते हैं, बैठते हैं यावत् शुभकर्मों के फल का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में यहां वहां बहुत से उद्दालक, कोद्दालक, कृतमाल, नतमाल, नृत्यमाल, श्रृंगमाल, शंखमाल, दंतमाल और शैलमाल नामक वृक्ष कहे गये हैं। वे वृक्ष दर्भ और कांस से रहित मूल वाले हैं। वे प्रशस्त मूल वाले, कंद वाले यावत् प्रशस्त बीज वाले हैं और पत्रों तथा फूलों से आच्छन्न प्रतिच्छन्न हैं अर्थात् पत्रों और फूलों से लदे हुए हैं तथा शोभा से अतीव अतीव शोभायमान हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकोरुक द्वीप की भूमि रचना एवं वनखंड के वृक्षों का वर्णन किया गया है। एकोरुक द्वीप के भूमि भाग की समतलता और रमणीयता बताने के लिए मूल पाठ में प्रयुक्त **'जाव'** शब्द से निम्न पाठ का ग्रहण किया गया है - **''मुइंगपुक्खरेइ वा सरतलेइ वा करतलेइ वा चंदमंडलेइ वा सूरमंडलेइ वा आयंसमंडलेइ वा उरब्भचम्मेइ वा उसभचम्मेइ वा वराहचम्मेइ वा सीहचम्मेइ वा वग्घचम्मेइ वा विगचम्मेइ वा दीवियचम्मेइ वा अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते आवड पच्चावड सेणिपसेणि सोत्थिय सोवत्थिय पूसमाणवद्धमाण मच्छंडग मकरंडग जारमार फुल्ला वलि पउमपत्तसागरतरंगवासंतिलय पउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाए सप्पभेहिं सस्सिरीएहिं समरीइहिं सउज्जोएहिं णाणाविह पंचवण्णेहिं तणेहि य मणिहि य उवसोहिए''** - अर्थात् जैसे मृदंग का मुख चिकना और समतल होता है, जैसे पानी से लबालब भरे हुए तालाब का पानी समतल होता है जैसे हथेली का तल, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, दर्पण का तल आदि समतल होते हैं वैसे ही यहां का भूमिभाग समतल है। जैसे भैड, बैल, सूअर, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेडिया) और चीता इनके चर्म को बड़ी बड़ी कीलों द्वारा खींच कर अति समतल कर दिया जाता है वैसे ही वहां का भूमिभाग अति समतल और रमणीय है। वह भूमि आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्यमान, वर्द्धमान, मत्स्याण्ड, मकराण्ड, जार मार पुष्पावलि, पद्म पत्र, सागरतरंग, वासन्तीलता, पद्मलता आदि नाना प्रकार के मांगलिक रूपों की रचना से चित्रित तथा सुंदर दृश्य वाले, सुंदर कांति, सुंदर शोभा वाले, चमकती हुई उज्ज्वल किरणों वाले और प्रकाश वाले नाना प्रकार के पांच वर्णों वाले तृणों और मणियों से उपशोभित होती रहती है।''

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह भूमिभाग शय्या के समान कोमल स्पर्श वाला है। जैसे आजीनिक (मृग चर्म), रुई, बूर (वनस्पति विशेष), मक्खन, तूल का मुलायम स्पर्श होता है उसी प्रकार मुलायम स्पर्शवाली वहां की भूमि है। वह भूमिभाग रत्नमय, स्वच्छ, चिकना, घृष्ट (घिसा हुआ), मृष्ट (मंजा हुआ), रजरहित, निर्मल, निष्पंक, कंकर रहित, सप्रभ, सश्रीक, उद्योत वाला, प्रसाद (प्रसन्नता) पैदा करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

वहाँ स्थित पृथ्वीशिलापट्टक का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिये।

एगूरुयदीवे णं दीवे रुक्खा बहवे हेरुयालवणा भेरुयालवणा मेरुयालवणा सेरुयालवणा सालवणा सरलवणा सत्तवण्णवणा पूयफलिवणा खज्जूरिवणा णालिएरिवणा कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति।

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे० बहवे तिलया लवया णग्गोहा जाव रायरुक्खा णंदिरुक्खा कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति।

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहूओ पउमलयाओ जाव सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ एवं लयावण्णओ जहा उववाइए जाव पडिरूवाओ।

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे सेरियागुम्मा जाव महाजाइ गुम्मा, ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमंति विहूयग्गसाहा जेण वायविहूयग्गसाला एगोरुय दीवस्स बहुसमरमणिज्जभूमिभाग. मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेंति।

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहूओ वणराईओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणराइओ किण्हाओ किण्होभासाओ जाव रम्माओ महामेहणिउरुंबभूयाओ जाव महइं गंधद्धुणिं मुयंतीओ पासाईयाओ ४॥

कठिन शब्दार्थ - **विहुयग्गसाहा** - विधूताग्रशाखाः, **मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं** - मुक्तपुष्प पुञ्जोपचारकलितं-फूलों की वर्षा, **महामेहणिउरुंबभूयाओ** - महामेघ निकुरम्बभूताः-महामेघ के समुदाय रूप, **वणराईओ** - वनराजियाँ-वनों की पंक्तियां।

भावार्थ - उस एकोरुक नामक द्वीप में बहुत से वृक्ष हैं। साथ ही हेरुताल वन, भेरुताल वन, मेरुताल वन, सेरुताल वन, साल वन, सरल वन, सप्तपर्ण वन, सुपारी वन, खजूर वन और नारियल के वन हैं। ये वृक्ष और वन कुश और कांस से रहित यावत् शोभा से अतीव अतीव शोभायमान हैं।

उस एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से तिलक, लवक, न्यग्रोध यावत् राजवृक्ष नंदिवृक्ष है जो कुश (दर्भ) और कांस से रहित हैं यावत् शोभा से अतीव अतीव शोभायमान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत सी पद्मलताएं यावत् श्यामलताएं हैं जो सदैव कुसुमित रहती हैं यावत् लता का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार कह देना चाहिये यावत् वे अत्यंत प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उस एकोरुक नामक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से सेरिका गुल्म यावत् महाजाति गुल्म हैं। वे गुल्म पांच वर्णों के फूलों से सदा कुसुमित रहते हैं। उनकी शाखाएं पवन से हिलती रहती हैं जिससे उनके फूल एकोरुकद्वीप के भूमिभाग को आच्छादित करते रहते हैं जिससे ऐसा लगता है मानो ये फूलों की वर्षा कर रहे हों।

उस एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत सी वनराजियां हैं। वे वनराजियां अत्यंत हरी भरी होने से काली प्रतीत होती हैं, काली ही उनकी कांति है यावत् वे रम्य हैं और महामेघ के समुदाय रूप प्रतीत होती है यावत् वे बहुत ही मोहक और तृप्तिकारक सुगंध छोड़ती है। वे अत्यंत प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकोरुक द्वीप के बहुत रमणीय समतल भूमिभाग पर स्थित वनखण्ड के वृक्षों, लताओं, गुल्मों और वनराजियों का वर्णन किया गया है। वृक्षों के समुदाय को वन कहते हैं। जिनका स्कंध तो छोटा हो किंतु शाखाएं बड़ी बड़ी हों और जो पत्र, पुष्प आदि से लदी रहती हों, उन्हें गुल्म कहते हैं। वनों की पंक्तियों को वनराजि कहते हैं।

दस वृक्षों का वर्णन

१. मत्तांगा नामक वृक्ष

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे मत्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से चंदप्पभ-मणिसिलाग-वर-सीहुपवरवारुणि-सुजातफलपत्तपुप्फ-चोय-णिज्जा-ससारबहुदव्वाजुत्तसंभारकालसंधयासवा महुमेरगरीट्ठाभ-दुद्धजाई-पसण्णमेल्लगसयाउ खज्जूरमुद्दियासार-काविसायण-सुपक्कखोयरसवरसुरा-वण्णरसगंधफरिसजुत्तबल वीरिय परिणामा मज्जविहित्थबहुप्पगारा तदेवं ते मत्तंगयावि दुमगणा अणेग बहुविविहवीससा परिणयाए मज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा वीसंदंति कुसविकुस विसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति १।

कठिन शब्दार्थ - मत्तंगा - मत्तांगा-पोष्टिक रस देने वाले, **बलवीरियपरिणामा** - बलवीर्य पैदा करने वाले, **मज्जविहित्थबहुप्पगारा** - बहुत मद्य प्रकारों में, **अणेगबहुविविहवीससा परिणयाए मज्जविहीए उववेया** - विविध परिणाम वाली मद्यविधि से युक्त।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! उस एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर मत्तांगा नामक द्रुमगण हैं। जैसे चन्द्रप्रभा, मणिशलाका श्रेष्ठ सीधु, प्रवर वारुणी, जातिवंत फल पत्र पुष्प सुगंधित द्रव्यों से निकाले हुए सारभूत रस और नाना द्रव्यों से युक्त एवं उचित काल में संयोजित करके बनाये हुए आसव, मधु, मेरक, रिष्टाभ, दुग्ध तुल्य स्वाद वाली प्रसन्न, मेल्लक, शतायु, खजूर और मृद्विका (दाख) के रस, कपिश (धूम) वर्ण का गुड़ का रस, सुपक्व क्षोद (काष्ठादि चूर्णों का) रस, वरसुरा आदि विविध मद्य प्रकारों में जैसे वर्ण, रस, गंध और स्पर्श तथा बलवीर्य पैदा करने वाले परिणाम होते हैं वैसे ही मत्तांगा वृक्ष नाना प्रकार के विविध स्वाभाविक परिणाम वाली मद्य विधि से युक्त और फलों से परिपूर्ण हैं एवं विकसित हैं। वे कुश (दर्भ) कांस से रहित मूल वाले यावत् शोभा से अतीव अतीव शोभायमान होते हैं।

२. भृतांगा नामक वृक्ष

एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे भिंगगया णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से बारगघडकरगकलसककरिपायंकंचणिउदंकवद्धणिसुप(इट्ठक) विट्ठरपारीचसगभिंगारकरोडिसरग थरग पत्तीथालणत्थगववलिय अवपदगवारय विचित्तवट्टगमणिवट्टगसुत्तिचारुपिणया कंचणमणिरयणभत्तिचित्ता भायणविहीए बहुप्पगारा तहेव ते भिंगगयावि दुमगणा अणेग बहुविविहवीससाए परिणयाए भायणविहीए उववेया फलेहिं पुण्णाविव विसट्टंति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति २॥

कठिन शब्दार्थ - भिंगगया - भृताङ्गा-पात्र आदि देने वाले।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! उस एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से भृत्तांगा नाम के द्रुमगण हैं। जैसे वारक (मंगलघट), घट, करक, कलश, कर्करी (गगरी) पादकंचनिका (पांव धोने की सोने की पात्री) उदंक (उलचना) वद्धणि (लोटा) सुप्रतिष्ठक (फूल रखने का पात्र) पारी (घी तेल का पात्र), चषक (पान पात्र-गिलास आदि) भिंगारक (झारी), करोटि (कटोरा), शरक, थरक (पात्र विशेष) पात्री, थाली, जल भरने का घड़ा, विचित्र वर्त्तक (भोजनकाल में घृतादि रखने के पात्र विशेष) मणियों के वर्तक, शुक्ति (चन्दन आदि घीस कर रखने का पात्र) आदि बर्तन जो सोने, मणि रत्नों के बने होते हैं तथा जिन पर विचित्र प्रकार की चित्रकारी की हुई होती है वैसे ही ये भृत्तांगा वृक्ष भाजनविधि में नाना प्रकार के विस्रसा परिणत (स्वाभाविक परिणाम वाले) भाजनों से युक्त होते हैं, फलों से परिपूर्ण और विकसित होते हैं। ये कुश-कांस से रहित मूल वाले यावत् शोभा से अतीव अतीव शोभायमान होते हैं॥ २॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. त्रुटितांगा नामक वृक्ष

एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे तुडियंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से आलिंगमुयंगपणव पडहदद्दर करडिडिंडिमभंभाहोरंभ कण्णियास खरमुहि मुगुंद संखिय परिलीवव्वग परिवाइणिवंसावेणुवीणासुघोस विवंचि महइकच्छ भिरगसगातल ताल कंसताल सुसंपउत्ता आओज्जविहीणिउणगंधव्व समयकुसलेहिं फंदिया तिट्ठाणकरणसुद्धा तहेव ते तुडियंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससा-परिणामाए ततवितत घणझुसिराए चउव्विहाए आओज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुसविकुस विसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ३॥

कठिन शब्दार्थ - तुडियंगा - त्रुटिताङ्गा-बाजे (वादिन्त्र) का काम देने वाले।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से त्रुटितांगा नामक द्रुमगण हैं। जैसे मुरज, मृदंग, प्रणव (छोटा ढोल), पटह (ढोल), दर्दरक (काष्ट की चौकी पर रख कर बजाया जाने वाला तथा गोधादि के चमड़े से मढा हुआ वाद्य) करटी, डिंडिंम, भंभा-ढक्का, होरंभ (महाढक्का), क्वणित (वीणा विशेष), खरमुखी (काहला), मुकुंद (मृदंग विशेष), शंखिका (छोटा शंख), परिलीवच्चक (घास के तृणों को गूंथ कर बनाये जाने वाले वाद्य विशेष), परिवादिनी (सात तार वाली वीणा), वंश (बांसुरी), वीणा-सुघोषा-विपंची-महती कच्छपी (ये सब वीणाओं के प्रकार हैं) रिंगसका (घिस कर बजाये जाने वाला वाद्य), तलताल (हाथ से बजाई जाने वाली ताली) कांस्यताल (कांसी का वाद्य जो ताल देकर बजाया जाता है) आदि वादिन्त्र जो सम्यक् प्रकार से बजाये जाते हैं वाद्य कला में निपुण एवं गंधर्व शास्त्र में कुशल व्यक्तियों द्वारा जो बजाये जाते हैं जो आदि-मध्य-अवसान रूप तीन स्थानों से शुद्ध हैं वैसे ही ये त्रुटितांगा वृक्ष नानाप्रकार के स्वाभाविक परिणाम से परिणत होकर तत, वितत, घन और शुषिर रूप चार प्रकार की वाद्य विधि से युक्त होते हैं। ये फलादि से लदे हुए और विकसित होते हैं। ये वृक्ष कुशविकुश (कांस) से रहित मूल वाले यावत् अतीव अतीव शोभा से शोभायमान होते हैं।

४. दीपशिखा नामक वृक्ष

एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे दीवसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता, समणाउसो! जहा से संझाविरागसमए णवणिहिपइणो दीविया चक्कवालविंदे पभूय वट्टिपलित्तणेहे धणिउज्जालिय-तिमिरमद्दए कणगणिगर कुसुमियपालियातयवणप्पगासो कंचणमणिरयण विमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाहि दीवियाहिं सहसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जलिऊसविय्यणिद्ध तेयदिप्पंत विमलगहगणसमप्पहाहिं वितिमिरकरसूरपसरिउल्लोय चिल्लियाहिं जावुज्जलपहसियाभिरामाहिं सोहेमाणा तहेव ते दीवसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससा परिणामाए उज्जोयविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुसविकुसविसुद्ध रुक्खमूला जाव चिट्ठंति ४॥

कठिन शब्दार्थ - संझाविरागसमए - सन्ध्या विराग समये-संध्या के समय में, **दीवसिहा** - दीपशिखा-दीपक का काम देने वाले, **णवणिहिपइणो** - नवनिधिपति-चक्रवर्ती, **चक्कवालविंदे** - चक्रवालवृन्दं-चक्रसमूह में चारों ओर, **पभूयवट्टिपलित्तणेहे** - प्रभूतवर्तिंपर्याप्तस्नेहमं-जिनमें बहुत सारी बत्तियां और भरपूर तैल भरा हुआ है, **घणिउज्जालियतिमिरमद्दए** - घणियोज्वालित तिमिरमर्दकम्-घने प्रकाश से अंधकार का मर्दन करने वाली, **कणगणिगरकुसुमियपालियातयवणप्पगासो** - कनकनिकरकुसुमित पारिजातकवन प्रकाशं-कनकनिकर (स्वर्ण राशि) जैसे प्रकाश वाले कुसुमों से युक्त पारिजातक के वन के प्रकाश जैसा, **कंचणमणिरयण विमल महरिह तवणिज्जुज्जल विचित्त दंडाहिं** - कांचनमणि रत्न विमलमहार्ह तपनीयोज्वलं विचित्रदण्डाभि-कंचन (सोना) मणि रत्न से बने हुए विमल, महोत्सवों पर स्थापित करने योग्य तपनीय-स्वर्ण के समान उज्ज्वल और विचित्र जिनके दण्ड हैं, **सहसापज्जलिय ऊसवियणिद्ध तेयदिप्पंत विमलगहगण समप्पहाहिं** - सहसा प्रज्वलितोत्सर्पित स्निग्धतेजोदीव्यद् विमल ग्रहगण समप्रभाभिः - एक साथ प्रज्वलित, बत्ती को उकेर कर अधिक प्रकाश वाली किये जाने से जिनका तेज खूब प्रदीप्त हो रहा है, निर्मल ग्रहगणों की तरह प्रभासित, **वितिमिरकरसूरपसरिउज्जोय चिल्लियाहिं** - वितिमिरकर सूर्यं प्रसृतोद्द्योत दीप्यमानाभिः - अंधकार को दूर करने वाले सूर्य की फैली हुई प्रभा जैसी चमकीली।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से दीपशिखा नामक वृक्ष हैं। जैसे संध्या के उपसन्त समय में नवनिधिपति चक्रवर्ती के यहां दीपिकाएं होती हैं जिनका प्रकाश मण्डल सब ओर फैला होता है तथा जिनमें बहुत सारी बत्तियां और भरपूर तैल भरा होता है जो अपने घने प्रकाश से अंधकार को दूर करती हैं जिनका प्रकाश स्वर्ण राशि जैसे प्रकाश वाले फूलों से युक्त पारिजात (देव वृक्ष) के वन के प्रकाश जैसा होता है, कंचन मणिरत्न से बने हुए निर्मल बहुमूल्य या महोत्सवों पर स्थापित करने योग्य तपनीय-स्वर्ण के समान उज्ज्वल और विचित्र जिनके दण्ड हैं जिन दण्डों पर एक साथ प्रज्वलित, बत्ती को उकेर कर अधिक प्रकाश वाली किये जाने से जिनका तेज खूब प्रदीप्त हो रहा है, जो निर्मल ग्रहगणों की तरह प्रभासित हैं तथा जो अंधकार को दूर करने वाले सूर्य की फैली हुई प्रभा जैसी चमकीली हैं जो अपनी उज्ज्वल प्रभा से मानो हंस रही हैं ऐसी वे दीपिकाएं शोभित होती हैं वैसे ही वे दीप शिखा नामक वृक्ष भी अनेक और विविध प्रकार के विस्रसा परिणाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाली उद्योत विधि से (प्रकाश से) युक्त हैं। वे फलों से पूर्ण हैं, विकसित हैं, कुशविकुश से विशुद्ध उनके मूल हैं यावत् वे शोभा से अतीव अतीव शोभायमान हैं॥

५. ज्योतिशिखा नामक वृक्ष

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे जोइसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से अचिरुग्गयसरय-सूरमंडल-पडंतउक्का-सहस्सदिप्पंतविज्जुज्जालहुय-वहणिद्धूमजलिय णिद्धंत धोयतत्त तवणिज्ज किंसुयासोय जावासुयणकुसुमविमउलिय पुंजमणिरयण किरण जच्चहिंगुलुय णिगररूवाइरेगरूवा तहेव ते जोइसिहा वि दुमगणा अणेग बहुविविह विससा परिणयाए उज्जोयविहीए उववेया सुहलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा कूडाय इव ठाणठिया अण्णमण्ण समोगाढाहिं लेस्साहिं साए पभाए सपएसे सव्वओ समंता ओभासंति उज्जोवेंति पभासेंति कुसविकुसविसुद्ध रुक्खमूला जाव चिट्ठंति ५॥

कठिन शब्दार्थ - जोइसिहा - ज्योतिशिखा-सूर्य के समान ज्योति (प्रकाश) देने वाले, अग्नि का काम देने वाले, **अच्चिरुग्गय सरय सूरमंडल पडंत उक्का सहस्स दिप्पंत विज्जुयालहुय वह णिद्धूमजलिय णिद्धंत धोयतततवणिज्ज किंसुयासोयजवाकुसुमविमुउलिय पुंजमणिरयण किरण जच्चहिंगुलुय णिगररुवाइरेगरूवा** - अचिरोद्‌गत-तत्कालोदित शरत्सूर्य मण्डल पतदुल्कासहस्र दीप्यमान विद्युज्जालहुतवह निर्धूमज्वलित निर्ध्मातद्योत तप्त तपनीय किंशुका शोकजपाकुसुम विमुकुलित पुंजमणिरत्न किरण जात्यहिंगुलक निकररूपातिरेक रूपा:-तत्काल उदित हुआ शरत् कालीन सूर्यमण्डल, गिरती हुई हजार उल्काएं, चमकती हुई बिजली, ज्वाला सहित निर्धूम प्रदीप्त अग्नि, अग्नि से शुद्ध हुआ तप्त तपनीय सुवर्ण, विकसित हुंए किंशुकपुष्पों, अशोक पुष्पों और जपापुष्पों का समूह, मणि रत्न की किरणें, श्रेष्ठ हिंगलु का समुदाय अपने अपने रूपों से अधिक सुहावना तेजस्वी लगता है, **ओभासंति** - प्रकाशित करते हैं, **उज्जोवेंति** - उद्योतित करते हैं, **पभासेंति** - प्रभासित करते हैं।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से ज्योतिशिखा वृक्ष हैं। जैसे तत्काल उदित हुआ शरत्कालीन सूर्य मण्डल, गिरती हुई हजार उल्काएं, चमकती हुई बिजली, ज्वाला सहित निर्धूम प्रदीप्त अग्नि, अग्नि से शुद्ध हुआ तप्त तपनीय स्वर्ण, विकसित हुए किंशुक के पुष्पों, अशोक के पुष्पों और जपा के पुष्पों का समूह, मणिरत्न की किरणें, श्रेष्ठ हिंगलु का समुदाय अपने अपने वर्ण एवं आभा रूप से तेजस्वी लगते हैं वैसे ही वे ज्योतिशिखा वृक्ष अपने बहुत प्रकार के अनेक विस्रसा (स्वाभाविक) परिणाम से उद्योतविधि (प्रकाश) से युक्त होते हैं। उनका प्रकाश सुखकारी है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीक्ष्ण होकर मंद है, उनका आताप तीव्र नहीं है, जैसे पर्वत के शिखर एक स्थान पर रहते हैं वैसे ही ये अपने स्थान पर स्थित होते हैं, एक दूसरे से मिश्रित अपने प्रकाश द्वारा ये अपने प्रदेश में रहे हुए पदार्थों को सब तरफ से प्रकाशित करते हैं, उद्योतित करते हैं, प्रभासित करते हैं। ये वृक्ष कुश विकुश आदि से रहित मूल वाले हैं यावत् शोभा से अतीव अतीव शोभायमान है।

६. चित्रांगा नामक वृक्ष

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे चित्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से पेच्छाघरे विचित्ते रम्मे वरकुसुमदाममालुज्जले भासंतमुक्कपुप्फ-पुंजोवयारकलिए विरल्लि विचित्तमल्ल सिरिदाममल्लसिरिसमुदयप्पगब्भे गंथिम वेढिमपूरिमसंघाइमेण मल्लेण छेयसिप्पियं विभागरइएण सव्वओ चेव समणुबद्धे पविरललंबंत विप्पइट्ठेहिं पंचवण्णेहिं कुसुमदामेहिं सोहमाणेहिं सोहमाणे वणमाल(क)यग्गए चेव दिप्पमाणे तहेव ते चित्तंगयावि दुमगणा अणेग-बहुविविहवीससा परिणयाए मल्लविहीए उववेया कुसविकुसविसुद्ध रुक्खमूला जाव चिट्ठति ६॥

कठिन शब्दार्थ - चित्तंगा - चित्रांगा-विविध प्रकार के फूल देने वाले, **पेच्छाघरे** - प्रेक्षा घर (नाट्यशाला), **वरकुसुमदाममालुज्जले** - वरकुसुमदाममालोज्ज्वलं-श्रेष्ठ फूलों की मालाओं से उज्ज्वल, **भासंतमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए** - भासमानमुक्त पुष्पपुंजोपचारकलितम्-विकसित-प्रकाशित-बिखरे हुए पुष्प पुंजों से सुंदर, **विरल्लियविचित्तमल्लसिरिदाममल्लसिरिसमुदयप्पगब्भे** - विरल्लित विचित्र माल्य श्रीदाम माल्य श्री समुदाय प्रगल्भं-विरल (पृथक् पृथक् रूप से स्थापित हुई) एवं विविध प्रकार की मालाओं की शोभा से अतीव मनमोहक, **गंथिम** - ग्रथित-गूंथी हुई, **वेढिम** - वेष्टित, **पूरिम** - पूरित, **संघाइमेण** - संघातिम-संघातित कर-मिलाकर गूंथी हुई, **छेयसिप्पियं** - छेक शिल्पिनां-परम दक्ष (चतुर) कलाकारों द्वारा, **पविरललंबंत विप्पइट्ठेहिं** - प्रविरललम्बमान विप्रकृष्टैः-अलग अलग रूप से दूर दूर पर लटकती हुई।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! उस एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से चित्रांगा नाम के वृक्ष हैं। जैसे कोई प्रेक्षाघर (नाट्यशाला) विविध प्रकार के चित्रों से चित्रित, रम्य, श्रेष्ठ फूलों की मालाओं से उज्ज्वल, विकसित-प्रकाशित-बिखरे हुए पुष्पपुंजों से सुंदर, विरल-पृथक् पृथक् रूप से स्थापित हुई एवं विविध प्रकार की गूंथी हुई मालाओं की शोभा की अधिकता से अतीव मनमोहक होता है ग्रथित-वेष्टित-पूरित-संघातिम मालाएं जो चतुर कलाकारों द्वारा गूंथी हुई हैं उन्हें बड़ी ही चतुराई के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ सजा कर सब ओर रखी जाने से जिसका सौन्दर्य बढ़ गया है, अलग अलग रूप से दूर दूर लटकती हुई पांच वर्णों (रंगों) वाली फूलमालाओं से जो सजाया गया हो तथा अग्र भाग में लटकाई गई वनमाला से जो दीप्तिमान हो रहा हो ऐसे प्रेक्षागृह के समान वे चित्रांगा वृक्ष हैं जो अनेक-बहुत और विविध प्रकार के विस्रसा परिणाम से माल्यविधि (मालाओं) से युक्त हैं। वे कुश-विकुश से रहित मूल वाले यावत् शोभा से अतीव अतीव शोभायमान हैं।

७. चित्ररसा नामक वृक्ष

एगूरूयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे चित्तरसा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से सुगंधवरकलमसालि विसिट्ठ णिरुवहयदुद्धरद्धे सारयघयगुडखंडमहुमेलिए अइरसे परमण्णे होज्ज उत्तमवण्णगंधमंते रण्णो जहा वा चक्कवट्टिस्स होज्ज णिउणेहिं सूयपुरिसेहिं सज्जिएहिं वाउकप्पेसेयसित्ते इव ओयणे कलमसालिणिज्जत्तिए विप(ए)क्के सव्वप्फमिउविसयसगलसित्थे अणेग सालणगसंजुत्ते अहवा पडिपुण्ण दव्वुवक्खडेसुसक्कए वण्णगंधरसफरिस जुत्तबलवीरियपरिणामे इंदियबलपुट्ठिवद्धणे खुप्पिवासमहणे पहाण गुलकटिय खंडमच्छंडिय उवणीए पमोयगे सण्हसमियगब्भे हवेज्ज परमइट्ठंगसंजुत्ते तहेव ते चित्तरसा वि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससा परिणयाए भोयणविहीए उववेया कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति॥ ७॥

कठिन शब्दार्थ - चित्तरसा - चित्ररसा-विविध प्रकार के भोजन देने वाले, **सुगंधवरकलमसालिविसिट्ठ णिरुवहयदुद्धरद्धे** - सुगंधवरकलम शालि विशिष्ट, निरुपहतदुग्धराद्धम्-सुगंधित श्रेष्ठ कलम जाति के चावल और विशेष प्रकार की गाय से निसृत दोष रहित शुद्ध दूध से पकाया हुआ, **सारयघयगुडखंडमहुमेलिए** - शरद् ऋतु के घी, गुड़, शक्कर और मधु से मिश्रित, **अइरसे** - अति स्वादिष्ट, **परमण्णे** - परमान्न-कल्याण भोजन-खीर, **सूयपुरिसेहिं** - सूपकारों (रसोइयों) द्वारा, **सज्जिएहिं** - सज्जितः-निष्पादित, **सव्वप्फमिउविसयसगलसित्थे** - सबाष्पमृदुविशदसकलसिक्थ-जिसका एक एक दाना बाष्प से सीझ कर मृदु हो गया है, **अणेगसालणगसंजुत्ते** - अनेकशालनकसंयुक्त-अनेक प्रकार के मेवों-द्राक्ष पुष्प फल से युक्त, **पडिपुण्णदव्वुवक्खडेसुसक्कए** - परिपूर्ण द्रव्योपस्कृतः सुसंस्कृत-इलाइची आदि भरपूर सुगंधित द्रव्यों से सुसंस्कारित, **इंदियबलपुट्ठिवद्धणे** - इन्द्रिय बलपुष्टिवर्धनः-इन्द्रियों की शक्ति बल को बढ़ाने वाला, **खुप्पिवासमहणे** - क्षुत् पिपासामथनः-भूख प्यास को शांत करने वाला, **पहाणगुलकटियखंडमच्छंडिय उवणीए** - प्रधान क्वथितगुडखण्ड मत्स्यण्डीघृतोपनीतः-प्रधान रूप से चासनी रूप बनाये हुए गुड शक्कर या मिश्री से युक्त एवं गर्म घी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

डाला हुआ, **पमोयगे** - प्रमोदकः आह्लादजनक, **परमइट्ठंगसंजुत्ते** - परमेष्टाङ्ग संयुक्त-अत्यंत प्रियकारी द्रव्यों से युक्त।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! उस एकोरुक में स्थान स्थान पर बहुत से चित्ररसा नामक वृक्ष हैं। जैसे सुगंधित श्रेष्ठ कलम जाति के चावल और विशेष प्रकार की गाय से निकाले हुए दोष से रहित शुद्ध दूध से पकाया हुआ, शरद ऋतु के घी गुड़ शक्कर और मधु से मिश्रित, अति स्वादिष्ट और उत्तम वर्ण गंध वाला परमान्न (कल्याणभोजन-खीर) निष्पन्न किया जाता है अथवा जैसे चक्रवर्ती राजा के कुशल सूपकारों (रसोइयों) द्वारा निष्पादित चार उकालों से (कल्पों से) सिका हुआ, कलम जाति के चावल जिनका एक एक दाना वाष्प से सीझ कर मृदु (कोमल) हो गया है, जिसमें अनेक प्रकार के मेवा-मसाले डाले गये हैं, इलाइची आदि भरपूर सुगंधित द्रव्यों से जो संस्कारित किया गया है, जो श्रेष्ठ वर्ण गंध रस स्पर्श से युक्त होकर बलवीर्य रूप में परिणत होता है, इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने वाला है, भूख-प्यास को शांत करने वाला है, प्रधान रूप से चासनी रूप बनाये हुए गुड़, शक्कर या मिश्री से युक्त किया हुआ है, गर्म किया हुआ घी डाला गया है जिसका अन्दरुनी भाग एकदम मुलायम एवं स्निग्ध हो गया है जो अत्यंत प्रियकारी द्रव्यों से युक्त है ऐसा परम आनंददायक परमान्न होता है उसी प्रकार की भोजनविधि से युक्त वे चित्ररसा नामक वृक्ष होते हैं। वे वृक्ष अनेक प्रकार के विस्रसा परिणाम से युक्त होते हैं। वे कुश-कांस आदि से रहित मूल वाले और अतीव अतीव शोभा से शोभायमान होते हैं।

८. मण्यङ्गा नामक वृक्ष

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे मणियंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से हारद्धहार-वट्टणगमउड-कुंडलवामुत्तग-हेमजाल-मणिजाल-कणगजालग सुत्तगउच्चिइय-कडगा-खुड्डिय-एगावलिकंठसुत्तमंगरिम-उरत्थगेवेज्ज-सोणिसुत्तग चूलामणि-कणग-तिलगफुल्ल-सिद्धत्थय-कण्णवालिससिसूर-उसभ-चक्कग तलभंग तुडिय हत्थिमालगवलक्खदीणारमालिया चंदसूरमालिया हरिसय केऊरवलय पालंब अंगुलेज्जगकंचीमेहला कलावपयरग (पाडिहारिया) पायजालघंटिय-खिंखिणि-रयणोरुजालत्थिगियवर-णेउरचलणमालिया कणगणिगरमालिया कंचणमणिरयण-भत्तिचित्ता भूसणविही बहुप्पगारा तहेव ते मणियंगा वि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससा परिणयाए भूसणविहीए उववेया कुसविकुसविसुद्ध रुक्खमूला जाव चिट्ठंति ८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - मणियंगा - मण्यङ्गा-आभूषण का काम देने वाले, **हारद्धहार** - हार (अठारह लडियों वाला) अर्धहार (नौ लडियों वाला), **वट्टणग** - वर्त्तनकः-कर्ण का आभूषण विशेष, **मउडकुंडल**- मुकुट, कुण्डल, **वामुत्तग** - वामोत्तक-(छिद्र-जाली वाला आभूषण), **सुत्तग** - सूत्रक-स्वर्ण सूत्र, **उच्चिइय कडगा** - उच्चयित कटकानि-उठा हुआ कडा या चूड़ी, **खुडिय** - क्षुद्रिका-अंगूठी, **एगावलि**- एकावली-मणियों की एक सूत्री माला, **कंठसुत्तमंगरिम** - कण्डसूत्रं मकरिका-कण्डसूत्र, मकराकार आभूषण विशेष, **उरत्थ** - उरः स्कंध **गेवेज्ज** - ग्रैवेयक-गले का आभूषण, **सोणिसुत्तग** - श्रोणी सूत्र- कंदौरा, **चूलामणि** - चूडामणि (मस्तक का आभूषण), **कणगतिलग** - स्वर्ण तिलक, **फुल्ल** - फुल्लक-फूल के आकार का ललाट का आभूषण, **सिद्धत्थय** - सिद्धार्थक-सर्षप प्रमाण सोने के दानों से बना आभरण, **कण्णवालि** - कर्णपाली (लटकन), **ससिसूरउसभ** - शशि सूर्य ऋषभाः-स्वर्णमय चन्द्र, सूर्य और वृषभ के आकार के आभूषण, **चक्कग** - चक्राकार आभूषण विशेष, **तलभंगतुडिय** - तल भंगक त्रुटित-भुजा का आभूषण-भुजबंद, **हत्थिमालग** - हस्तमालक-मालाकार हाथ का भूषण, **वलक्ख** - वलक्ष-गले का भूषण, **दीणारमालिया** - दीनारमालिका-दीनार की आकृति की मणिमाला, **हरिसयकेऊरवलयपालंब** - हर्षक (भूषण विशेष) केयूर वलय (ककण) प्रालम्बनक (झूमका) **अंगुलेज्जग-कंचीमेहला कलाव पयरग (पाडिहारिय) पायजालघंटिय खिंखिणी रयणोरु जालत्थिमियवरणेउर चलणमालिया** - अंगुलीयक (मुद्रिका-अंगूठी) काञ्ची, मेखला, कलाप, प्रतरक (प्रातिहारिक) पांव में पहने जाने वाले घुंघरु किंकिणी (बिच्छुडी), रत्नमय कंदौरा, नुपूर चरणमालिका, **कणगणिगरमालिया** - कनकनिकरमालिका, **कंचणमणिरयणभत्तिचित्ता** - कंचन, मणि और रत्नों से चित्रित, **भूसणविही** - भूषणविधि।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से मण्यंगा नामक वृक्ष हैं। जैसे हार, अर्द्धहार, वर्त्तनक (कान का भूषण), मुकुट, कुण्डल, वामोत्तक, हेमजाल, मणिजाल, कनकजाल, सूत्रक (स्वर्णसूत्र), उच्चयित कटक, मुद्रिका, एकावली, कण्ठसूत्र मकराकार आभूषण, उरःस्कन्ध, ग्रैवेयक, श्रेणीसूत्र, चूडामणि, स्वर्ण तिलक (टीका), फूल के आकार का ललाट का आभूषण, सिद्धार्थक, कर्णपाली, चन्द्र-सूर्य और वृषभ के आकार के आभूषण, चक्राकार आभूषण, भुजबंद, माला के आकार का हस्त का आभूषण, वलक्ष, दीनाकार मणिमाला, चन्द्रसूर्य मालिका, हर्षक, केयूर, वलय, प्रालम्बनक, अंगुलीयक (मुद्रिका) काञ्ची, मेखला, कलाप, प्रतरक, प्रातिहारिक, घूंघरु, किंकणी, रत्न का कंदोरा, नुपूर, चरणमालिका, कनकनिकरमाला, कंचनमणिरत्न आदि की रचना से चित्रित और बहुत प्रकार के सुंदर आभूषण हैं उसी तरह मण्यंगा वृक्ष भी नाना प्रकार के विस्रसा परिणाम से परिणत होकर विविध भूषणों से युक्त हैं। वे कुश कास आदि से रहित मूल वाले हैं और शोभा से अतीव अतीव शोभायमान हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. गेहाकारा नामक वृक्ष

एगूरुयद्दीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे गेहागारा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से पागारट्टालग चरियदार गोपुरपासायागासतलमंडवएग सालग बिसालग तिसालग चउरंस चउसाल गब्भघरमोहणघरवलभिघर चित्तसाल मालय भत्तिघर वट्ट तंस चउरंस णंदियावत्त संठियायय पंडुरतल मुंडमालहम्मियं अहव णं धवलहर अद्धमागह विब्भमसेलद्ध सेल संठिय कूडागारड्ढ सुविहि कोट्ठग अणेगघरसरणलेण आवणविडंगजाल चंदणिज्जूह अपवरकदोवालि चंदसालियरूव विभत्तिकलिया भवणविही बहुविगप्पा तहेव ते गेहागारा वि दुमगणा अणेगबहु विविह वीससा परिणयाए सुहारुहणे सुहोत्ताराए सुहणिक्खमणप्पवेसाए दद्दरसोपाणपंतिकलियाए पइरिक्काए सुहविहाराए मणोऽणकूलाए भवणविहीए उववेया कुसविकुसविसुद्ध-रुक्खमूला जाव चिट्ठंति ९ ॥

कठिन शब्दार्थ - गेहागारा - गेहाकारा-मकान के आकार में परिणत हो जाने वाले अर्थात् मकान की तरह आश्रय देने वाले, **पागारट्टालक** - प्राकाराट्टालक-प्राकार (परकोटा) अट्टालक (अटारी) **चरिय** - चरिका-प्राकार और शहर के बीच आठ हाथ प्रमाण मार्ग, **दार** - द्वार, **गोपुर** - गोपुर (प्रधान द्वार), **पासायागासतल** - प्रासादाकाश तल-प्रासाद (राजमहल) आकाश तल (अगासी), **मंडव** - मंडप, **एगसालग** - एक शालक-एक खंड वाले, **बिसालग** - द्विशालक-दो खण्ड वाले **तिसालग** - त्रिशालक-तीन खण्ड वाले, **चउरंसचउसाल** - चतुरस्र चतुःशाल-चौकोने, चार खण्ड वाले, **गब्भघर** - गर्भगृह (भौंहरा), **मोहणघर** - मोहनगृह (शयनकक्ष), **वलभिघर** - वलभीगृह (छज्जेवाला घर), **चित्तसाल मालय** - चित्रशालमालकं-अनेक प्रकार के चित्रों से सुसज्जित प्रकोष्ठगृह, **भत्तिघर** - भोजनालय, **णंदियावत्त** - नंदिकावर्त्त-स्वस्तिक के आकार का गृह, **पंडुरतलमुंडमाल** - पाण्डुरतल मुण्डमाल-छत रहित शुभ्र आंगन वाला गृह, **हम्मियं** - हर्म्य-शिखर रहित हवेली, **धवलहर अद्धमागह विब्भय सेलद्ध सेल संठिय** - धवलगृहार्द्ध मागध विभ्रम शैलार्द्ध शैल संस्थित-धवलगृह, अर्द्धगृह, मागधगृह, विभ्रमगृह, शैलार्द्धगृह, शैलसंस्थितगृह (पर्वत के जैसे आकार का घर), **कूडागारड्ढ सुविहि कोट्ठग** - कूटाकार-सुविधिकोष्टक-पर्वत के शिखर के आकार का गृह, अच्छी तरह से बनाए हुए कोठों वाला गृह, **सरणलेण आवण** - शरणगृह, शयनगृह, आपणगृह (दूकान) **विडंगजाल** - विडंग (छज्जेवाले गृह) जाल (जाली वाले घर), **चंदणिज्जूह अपवरक दोवालि** - चन्द्रनिर्व्यूह-दरवाजे के आगे निकला हुआ काष्ठ भाग कमरों और द्वार वाले गृह, **चंदसालिय** - चन्द्रशालिका-शिरोगृह (छत के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर बना हुआ घर), **सुहारुहणे** - सुखारोहण-सुख से चढा जा सके, **सुहोत्ताराए** - सुखोत्तारेण-सुख से उतरा जा सके, **सुहणिक्खमणपवेसाए** - सुख पूर्वक निष्क्रमण और प्रवेश वाले, **दद्दरसोपाणपंतिकलियाए** - दर्दर सोपान पंक्ति कलितेन-जिनकी सोपान पंक्तियां समीप समीप है, **पइरिक्काए** - परतिरिक्तेन-विशाल।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से गेहाकार नाम के वृक्ष हैं जैसे - प्राकार, अट्टालक, चरिका, द्वार, गोपुर, प्रासाद, आकाशतल, मण्डप, एकशालक-एक खंड वाले, द्विशालक, त्रिशालक, चौकोन, चौशालक-चार खण्ड वाले मकान, गर्भगृह, मोहनगृह, वलभीगृह, चित्रशालक गृह, भोजनालय, गोल, तिकोने, चौरस, नंदियावर्त आकार के गृह, छत रहित शुभ्र आंगन वाला घर, हर्म्य-शिखर रहित हवेली अथवा धवल गृह, अर्धगृह, मागधगृह, विभ्रमगृह, शैलार्द्धगृह-पहाड़ के अर्द्धभाग के आकार के गृह, शैलगृह, कूटाकार (पर्वत के शिखर के आकार के) गृह, सुविधिकोष्टक गृह, अनेक कोठों वाला घर, शरण गृह, शयन गृह, दुकान, छज्जे वाले घर, जाली वाले घर, निर्व्यूह कमरों और द्वार वाले गृह और चंद्रशालिका-शिरोगृह आदि अनेक प्रकार के भवन होते हैं उसी प्रकार वे गेहाकारा वृक्ष भी विविध प्रकार के बहुत से विस्रसा (स्वाभाविक) परिणाम से परिणत भवनों और गृहों से युक्त हैं। उन भवनों में सुख पूर्वक चढा जा सकता है सुखपूर्वक उतरा जा सकता है, उनमें सुखपूर्वक प्रवेश और निष्क्रमण हो सकता है, उन भवनों के चढाव के सोपान समीप समीप हैं विशाल होने से उनमें सुख रूप गमनागमन होता है और वे भवन मन के अनुकूल होते हैं। ऐसे विविध प्रकार के भवनों से युक्त गेहाकारा वृक्ष हैं। वे वृक्ष कुशकास से रहित मूल वाले हैं और वे अतीव अतीव शोभा से शोभायमान है।

१०. अनग्ना नामक वृक्ष

एगूरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे अणिगणा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से आईणग-खोमतणुय-कंबल-दुगुल्लकोसेज्जकालमिगपट्ट-चीणंसुय-अणहय णिउण णिप्पावियणिद्धगज्जिय पंचवण्णा चरणातवारवणिगय-थुणाभरणचित्त-सहिणगकल्लाणग भिंगि-मेहणीलकज्जल-बहुवण्ण-रत्तपीय-णीलसुक्किल-मक्खय मिगलोम-हेमप्फरुण्णग-अवसरत्तगसिंधु-ओसभदामि-लवंग-कलिंगणेलिणतंतुमय भत्तिचित्ता वत्थविही बहुप्पगारा हवेज्ज वरपट्टणुग्गया वण्णरागकलिया तहेव ते अणियणा वि दुमगणा अणेग बहुविविह वीससा परिणयाए वत्थविहीए उववेया कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति॥ १०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **अणिगणा** - अनग्ना-वस्त्र आदि का काम देने वाले, **आईणग** - आजिनक-चर्मवस्त्र, **खोमतणुय** - कपास के वस्त्र, **कंबल** - ऊन के वस्त्र, **दुगुल्ल** - दुकूल-मुलायम बारीक वस्त्र, **कोसेज्ज** - कोशेय-रेशम के कीड़ों से निर्मित वस्त्र, **कालमिगपट्ट** - काले मृग के चर्म से बने वस्त्र, **चीणंसुय** - चीनांशुक-चीनदेश में निर्मित वस्त्र, **आभरणचित्त** - आभूषणों के द्वारा चित्रित, **सहिणग** - श्लक्ष्ण-सूक्ष्म तंतुओं से निष्पन्न वस्त्र, **कल्लाणग** - कल्याणक-महोत्सव आदि पर पहनने योग्य उत्तम वस्त्र, **भिंगिमेहणीलकज्जल** - भृंगी (भंवरी) नील और काजल जैसे वर्ण के वस्त्र, **मक्खयमिगलोम** - स्निग्ध मृग रोम के वस्त्र, **हेमरुप्पवण्णग** - सोने चांदी के तारों से बने वस्त्र, **अवरुत्तग** - अपर-पश्चिम देश और उत्तरदेश का बना वस्त्र, **सिंधुओसभदामिलबंगकलिंगणेल्लिणतंतुमयभत्तिचित्ता** - सिन्धू, ऋषभ, तामिल, बंग, कलिंग देशों में बना हुआ सूक्ष्म तंतुमय बारीक वस्त्र, **वरपट्टणुग्गया** - वरपत्तनोद्‌गताः-श्रेष्ठ नगरों के कुशल कारीगरों से बना हुआ, **वण्णरागकलिया** - वर्णरागकलिताः-मजिष्ठादि सुंदर रंगों से रंगे हुए।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में स्थान स्थान पर बहुत से अनग्ना नाम के वृक्ष कहे गये हैं। जैसे - आजिनक (चर्मवस्त्र) क्षोम वस्त्र, कंबल, दुकुल (मुलायम बारीक वस्त्र) रेशमी वस्त्र, काले मृग के चर्म से बने वस्त्र, चीन देश के वस्त्र, नाना देशों के प्रसिद्ध वस्त्र, आभूषणों द्वारा चित्रित वस्त्र, बारीक तंतुओं से बने वस्त्र, कल्याणक वस्त्र, भंवरी नील और काजल जैसे वर्ण के वस्त्र, रंग बिरंगे वस्त्र, लाल पीले श्वेत वस्त्र, स्निग्ध मृग रोम के वस्त्र, सोने चांदी के तारों से निर्मित वस्त्र, पश्चिम देश का बना वस्त्र, उत्तरदेश का बना वस्त्र, सिन्धू-ऋषभ-तमिल-बंग-कलिंग देशों में बना हुआ सूक्ष्म तंतुमय बारीक वस्त्र इत्यादि नाना प्रकार के वस्त्र हैं जो श्रेष्ठ नगरों (देशों) के कुशल कारीगरों से निर्मित हैं, सुंदर वर्ण वाले हैं उसी प्रकार अनग्ना नाम के वृक्ष हैं जो अनेक और बहुत प्रकार के विस्रसा परिणाम से परिणत विविध वस्त्रों से युक्त हैं। वे वृक्ष कुश काश से रहित मूल वाले हैं यावत् वे अतीव अतीव शोभा से शोभायमान हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकोरुक द्वीप में पाये जाने वाले दस प्रकार के वृक्षों का वर्णन किया गया है। उनके नाम और अर्थ इस प्रकार हैं -

१. **मत्तंगा** - शरीर के लिये पौष्टिक रस देने वाले।

२. **भृतांगा** - पात्र आदि देने वाले।

३. **त्रुटितांगा** - बाजे (वादिन्त्र) का काम देने वाले।

४. **दीपांगा** - दीपक का काम देने वाले।

५. **ज्योतिरंगा** - प्रकाश को ज्योति कहते हैं। सूर्य के समान प्रकाश देने वाले। अग्नि को भी ज्योति कहते हैं अतः अग्नि का काम देने वाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. **चित्रांगा** - विविध प्रकार के फूल देने वाले।

७. **चित्ररसा** - विविध प्रकार के भोजन देने वाले।

८. **मण्यङ्गा** - आभूषण का काम देने वाले।

९. **गेहकारा**-मकान के आकार में परिणत हो जाने वाले अर्थात् मकान की तरह आश्रय देने वाले।

१०. **अणिगणा** - अनग्ना-वस्त्र आदि का काम देने वाले।

टीकाकार ने और ग्रंथकार ने इन वृक्षों को कल्पवृक्ष लिखा है परन्तु ठाणांग सूत्र के दसवें ठाणे के तीसरे उद्देशक में इनको दस प्रकार के वृक्ष लिखा है। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में भी इनको वृक्ष ही कहा है। यहां मूलपाठ में भी **दुमगणा**- द्रुमगण-वृक्ष ही कहा है अतः इनको कल्पवृक्ष कहना ठीक नहीं है।

एकोरुक द्वीप के मनुष्यों का वर्णन

एगूरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाणं केरिसए आयारभाव पडोयारे पण्णत्ते?

गोयमा! ते णं मणुया अणुवमतरसोमचारुरूवा भोगुत्तमगयलक्खणा भोगसस्सिरीया सुजायसव्वंगसुंदरंगा सुपइट्ठियकुम्मचारुचलणा रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतला णगणगरसागरमगर-चक्कं-कवरंकलक्खणं-कियचलणा अणुपुव्वसुसाहयंगुलीया उण्णयतणुतंबणिद्धणहा संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा एणीकुरुविंदावत्त वट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गणिमग्गगूढजाणू गयससणसुजायसण्णिभोरू वरवारणमत्ततुल्ल विक्कमविलसियगई सुजायवरतुरगगुज्झदेसा आइण्णहओवणिरुवलेवा पमुइयवरतुरयसीहअइरेग-वट्टियकडी साहयसोणिंदमुसलदप्पण-णिगरिय-वरकणगच्छ रुसरिसवरवइरपलियमज्झा उज्जुयसमसहिय सुजायजच्च तणुकसिणणिद्ध आदेज्जलडहसुकुमाल मउयरमणिज्ज रोमराई गंगावत्तपयाहिणावत्त तरंगभंगुररविकिरण-तरुणबोहिय अकोसायंतपउमगंभीर वियडणाभी झसविहगसुजाय पीणकुच्छी झसोयरा सुइकरणा पम्हवियडणाभा सण्णयपासा संगयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मियमाइय-पीणरइयपासा अकरुंडयकणगरुयगणिम्मलसुजाय णिरुवहयदेहधारी पसत्थबत्तीस लक्खणधरा कणगसिलायलुज्जल पसत्थ समतलोवचियविच्छिण्ण पिहुलवच्छा सिरिवच्छंकिय वच्छा पुरवरफलिहट्टियभुया भुयगीसरविउलभोग आयाणफलिह उच्छूढदीहबाहू जूयसण्णिभपीणरइय पीवरपउट्ठ संठिय सुसिलिट्ठ विसिट्ठ घणथिरसुबद्ध सुणिगूढ पव्वसंधी रत्ततलोवइयमउय मंसल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थलक्खणसुजाय अच्छिद्दजालपाणी पीवरवट्टियसुजायकोमलवरंगुलीया तंबतलिणसुइरुइर-णिद्धणक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा दिसासोत्थिय-पाणिलेहा चंदसूरसंखचक्कदिसासोत्थियपाणिलेहा अणेगवरलक्खणुत्तम-पसत्थ-सुइरइयपाणिलेहा वरमहिसवराहसीह-सद्दुल-उसभणागवरपडिपुण्ण विउल उण्णय मइंदखंधा चउरंगुलसुप्पमाण कंबुवरसरिसगीवा अवट्ठिय सुविभत्तसुजाय-चित्तमंसूमंसल संठियपसत्थ-सद्दूलविपुलहणुया ओतविय सिलप्पवालबिंबफलसण्णि-भाहरोट्ठा पंडुरससिसगल-विमलणिम्मल-संखगोखीर-फेणदगरय मुणालिया धवलदंतसेढी अखंडदंता अफुडियदंता अविरलदंता सुजायदंता एगदंतसेढिव्व अणेगदंता हुयवहणिद्धंत-धोयतत्ततवणिज्ज रत्ततलतालुजीहा गरुलायय-उज्जुतुंग णासा अवदालियपोंडरीय णयणा कोयासिय-धवल-पत्तलच्छा आणामिय-चावरुइलकिण्हपूराइय संठिय संगय आययसुजाय तणुकसिणणिद्धभुमया अल्लीण-पमाणजुत्तसवणा सुस्सवणा पीणमंसल कवोलदेसभागा अचिरुग्गयबाल-चंदसंठिय-पसत्थविच्छिण्णसमणिडाला उडुवइपडिपुण्ण-सोमवयणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणणिचिय-सुबद्धलक्खणुण्णय कूडागार-णिभ-पिंडियसीसे दाडिमपुप्फपगास तवणिज्जसरिसणिम्मलसुजाय केसंतकेसभूमी सामलिबोंडघणणिचिय छोडियमिउविसय पसत्थ-सुहुमलक्खण-सुगंधसुंदर-भूयमोयग-भिंगिणीलकज्जल-पहट्ठभमर-गणणिद्ध-णिउरुंब णिचिय कुंचिय चियपयाहिणावत्तमुद्धसिरया लक्खणवंजणगुणोववेया सुजायसुविभत्तसुरूवगा-पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

कठिन शब्दार्थ - आयारभावपडोयारे - आकार भाव प्रत्यवतारः - आकार प्रकार आदि स्वरूप, **अणुवमतरसोमचारुरूवा** - अनुपमतर, सौमचारुरूपाः - चन्द्रमा की तरह अत्यंत सुंदर रूप वाले, **भोगुत्तमगयलक्खणा** - भोगोत्तमगत लक्षणाः - उत्तम भोगों के सूचक लक्षणों वाले, **भोगसस्सिरीया** - भोगसश्रीकाः - भोगजन्य शोभा से युक्त, **सुजायसव्वंगसुंदरंगा** - सुजात सर्वांग सुंदराङ्गाः - श्रेष्ठ और सुंदर प्रमाणोपेत अंग वाले, **सुपइट्ठिय कुम्मचारुचलणा** - सुप्रतिष्ठित कूर्म चारु चरणाः - सुंदर आकार और कच्छप की पीठ जैसे उन्नत चरण वाले, **रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतला** - लाल और उत्पल (कमल) के पत्र के समान मृदु पांवों के तल वाले, **णगणगरसागरमगरचक्कंकवरंक-लक्खणंकियचलणा** - पर्वत, नगर, समुद्र, मगर, चक्र, चन्द्रमा आदि के चिन्हों से युक्त चरण वाले,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुपुव्वसुसाहयंगुलीया - पांवों की अंगुलियां प्रमाणोपेत और मिली हुई है जिनकी, **उण्णयतणुतंबणिद्धणहा** - उन्नत तनु ताम्र स्निग्धनखाः - जिनकी पैरों की अंगुलियों के नख उन्नत, पतले, ताम्र-लालवर्ण के और स्निग्ध (कांतिवाले) हैं, **संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा** - संस्थित सुश्लिष्ट गूढगुल्फाः - जिनके गुल्फ (टखने) संस्थित (प्रमाणोपेत) घने और गूढ हैं, **एणीकुरुविंदावत्त-वट्टाणुपुव्वजंघा** - एणीकुरुविन्दावर्त्त वृत्तानुपूर्व्यजंघाः - हरिणी और कुरुविंद (तृण विशेष) की तरह जिनकी पिण्डलियां क्रमशः स्थूल और गोल है, **समुग्गणिमग्गगूढजाणू** - समुद्गक निमग्न गूढ जानवः - संपुट में रखे हुए की तरह गूढ (अनुपलक्ष्य) घुटने वाले, **गयससण-सुजायसण्णिभोरु** - गजश्वसनसुजातसन्निभोरवः - जिनकी जांघे हाथी की सुंड की तरह सुंदर गोल और पुष्ट है, **वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलसियगई** - वरवारणमत्ततुल्यविक्रमविलासितगतयः - जिनकी चाल श्रेष्ठ मदोन्मत्त हाथी की चाल की तरह है, **सुजायवरतुरगगुज्झदेसा** - श्रेष्ठ घोडे की तरह जिनका गुह्यदेश गुप्त है, **आइण्णहओवणिरुवलेवा** - आकीर्णक घोड़े की तरह निरुपलेप-मलमूत्रादि के लेप से रहित, **पमुइयवरतुरयसीहअइरेगवट्टियकडी** - प्रमुदितवरतुरगसिंहातिरेक वर्त्ति कटयः - रोग रहित श्रेष्ठ घोडे और सिंह की तरह पतली और गोल कमर वाले, **साहयसोणिंदमुसलदप्पणणि-गरियवरकणगच्छरुसरिसवरवइरवलियमज्झा** - संहृत सौनन्द मुसल दर्पण निगरितवर कनकत्सरु सदृशवरव्रजवलित मध्याः - उनकी कमर संकुचित की गई तिपाई, मूसल, दर्पण का दण्डा और शुद्ध किये हुए सोने की मूंठ जैसी बीच में से पतली है, **उज्जुयसमसहियसुजाय जच्चतणुकसिण णिद्ध आदेज्जलडहसुकुमालमउय रमणिज्ज रोमराई** - ऋजुक सम संहित सुजात जात्य तनु कृष्ण स्निग्ध आदेय लडह सुकुमार मृदुक रमणीय रोमराजयः - उनकी रोमराजि सरल, सम, सघन, सुंदर, श्रेष्ठ, पतली काली, स्निग्ध, आदेय, लावण्यमय, सुकुमार, सुकोमल और रमणीय है, **गंगावत्त पयाहिणावत्ततरंग भंगुर रविकिरण तरुणबोहिय अकोसायंत पउम गंभीर वियड णाभी** - गंगावर्त्त प्रदक्षिणावर्त्त तरंग भंगुर रवि किरण तरुण बोधिताकोशायमान पद्म गंभीर विकट नाभयः - उनकी नाभि गंगा के आवर्त्त की तरह दक्षिणावर्त्त तरंग जैसी त्रिवली से भुग्न एवं तरुण-अभिनव रवि किरणों से खिले कमल के समान गंभीर और विशाल है, **झसविहगसुजायपीणकुच्छी** - झष विहग सुजात पीन कुक्षयः - मत्स्य और पक्षी की तरह सुंदर और पुष्ट कुक्षि वाले, **झसोयरा** - झषोदरा-मछली की तरह कृश पेट, **सुइकरणा** - शुचिकरणाः - पवित्र इन्द्रियां, **पम्हवियडणाभा** - पद्म विकट नाभयः - कमल के समान विशाल नाभि **सण्णयपासा** - सन्नतपार्श्वाः - नीचे झुके हुए पार्श्वभाग, **संगयपासा** - संगतपार्श्वाः - प्रमाणोपेत पार्श्व भाग, **सुजायपासा** - सुजात पार्श्वाः - जन्म से सुंदर पार्श्व भाग, **मियमाइयपीणरइयपासा** - मित मात्रिक पीनरतिदपार्श्वाः - परिमित मात्रा युक्त स्थूल और आनंद देने वाले पार्श्व, **अकरंडुयकणगरुयगणिम्मल-सुजायणिरुवहयदेहधारी** - अकरण्डुक कनक रुचक निर्मल सुजात निरुपहत देह धारिणः - वे ऐसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देह धारी होते हैं जिसके पृष्ठ की हड्डी नहीं दिखती है, कनक के समान जो दीप्ति वाला है जो निर्मल, गर्भ जन्म दोष रहित और निरुपहत (स्वस्थ-ज्वरादि से रहित) होता है, **कणगसिलायलुज्जलपसत्थ-समतलोवचियविच्छिण्ण पिहुलवच्छा** - कनकशिला तल उज्ज्वल प्रशस्त समतलोपचित विस्तीर्ण पृथुल वक्षसः - उनका वक्षस्थल सोने की शिला तल जैसा उज्ज्वल, प्रशस्त, समतल, पुष्ट, विस्तीर्ण और स्थूल होता है, **सिरिवच्छंकियवच्छा** - श्रीवत्साङ्कितवक्षसः - श्रीवत्सकी चिह्नांकित छाती, **पुरवरफलिहवट्टियभुया** - पुरवर परिघवृतभुजाः - नगर की अर्गला के समान लम्बी भुजा, **भुयगीसरविउलभोग आयाणफलिहउच्छूढदीहबाहू** - भुजगेश्वर विपुल भोग आदान परिघोत्क्षिप्त दीर्घबाहवः - शेष नाग के विपुल शरीर तथा उठाई हुई अर्गला के समान लम्बे बाहु वाले **जूयसण्णिभपीणरइय पीवरपउट्ठसंठिय सुसिलिट्ठ विसिट्ठ घणथिरसुबद्धसुनिगूढपव्वसंधी** - यूपसन्निभरतिदपीवर प्रकोष्ठ संस्थित सुश्लिष्ट विशिष्ट घन स्थिर सुबद्ध सुनिगूढ पर्व सन्धयः - हाथों की कलाइयां बैलों के कंधे पर रखे जाने वाले जूए के समान दृढ, आनंद देने वाली, पुष्ट, सुस्थित, सुश्लिष्ट (सघन) विशिष्ट, घन, स्थिर, सुबद्ध और निगूढ पर्व संधियों वाली है, **रत्ततलोवइयमउय मंसलपसत्थ लक्खणसुजाय अच्छिद्दजालपाणी** - रक्त तलोपचित मृदुक मांसल प्रशस्तलक्षण सुजात अच्छिद्र जाण पाणयः - उनके हाथ रक्त तल वाले, पुष्ट, मृदुल-चिकने, मांसल, प्रशस्त लक्षण युक्त, सुंदर और छिद्र रहित अंगुलियों वाले होते हैं, **पीवरवट्टियसुजाय कोमलवरंगुलिया** - पीवर वृत्त सुजात कोमलवरांगुलिकाः - पुष्ट, गोल, सुजात और कोमल अंगुलियां, **तंबतलिणसुइरुइर णिद्धणक्खा** - ताम्र तलिन शुचि रुचिर स्निग्ध नखाः - ताम्र वर्ण के पतले, स्वच्छ, मनोहर और स्निग्ध नख वाले **चंदसूरसंखचक्कदिसासोत्थियपाणिलेहा** - चन्द्र सूर्य शंख चक्र दिक्सौवस्तिक पाणि रेखाः - जिनके हाथों में चन्द्र-सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त स्वस्तिक की रेखाएं होती है, **अणेगवरलक्खणणुत्तम पसत्थसुइरइय पाणिलेहा** - अनेक वर लक्षणोत्तम प्रशस्त शुचिरतिद् पाणि रेखाः - उनके हाथ में अनेक श्रेष्ठ लक्षणयुक्त उत्तम प्रशस्त, स्वच्छ, आनंद देने वाली रेखाएं होती हैं, **वरमहिसवरा-हसीहसद्दुलउसभणागवर पडिपुण्णविउल उण्णयमउंदखंधा** - वर महिष वराह सिंह शार्दुल वृषभ नागवर पडिपूर्ण विपुलोन्नत स्कंधाः - श्रेष्ठ भैंस, वराहसिंह शार्दुल, बैल और हाथी की तरह प्रतिपूर्ण विपुल और उन्नत स्कन्ध वाले, **चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा** - चतुरंगुल सुप्रमाण कम्बुवर सदृशग्रीवाः - चार अंगुल प्रमाण और श्रेष्ठ शंख के समान ग्रीवा, **अवट्ठिय सुविभत्त सुजाय चित्त मंसू मंसल संठिय पसत्थ सद्दूल विपुलहणुया** - अवस्थित सुविभक्त सुजात चित्रश्मश्रुवः मांसल संस्थित प्रशस्त शार्दुल विपुल हनुकाः - उनकी ठुड्ढी अवस्थित सुविभक्त-अलग अलग सुंदर रूप से उत्पन्न दाढी के बालों से युक्त मांसल, सुंदर संस्थान युक्त प्रशस्त और व्याघ्र की विपुल-विस्तीर्ण ठुड्ढी के समान है, **ओतवियसिलप्पवाल बिंबफलसण्णिभाहरोट्ठा** - ओयविय शिलाप्रवाल बिम्बफल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सन्निभाधरोष्ठाः - उनके अधरोष्ठ-होठ परिकर्मित शिला प्रवाल और बिम्बफल के समान लाल हैं, **पंडुरससिसगलविमल णिम्मल संखगोखीरफेणदगरयमुणालिया धवलदंतसेढी** - पांडुर शशि सकल विमल निर्मल शंख गोक्षीर फेनदकरजोमृणालिका धवलदन्तश्रेणयः - उनके दांत सफेद चन्द्रमा के टुकड़ों के समान विमल, विर्मल, शंख, गाय का दूध, फेन, जलकण और मृणालिका (कमल नाल) के तंतु जैसे श्वेत है, **हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा** - हुतवहनिर्ध्मांत धौततप्त तपनीय रक्ततलतालुजिह्वाः - अग्नि में तपाकर धोए हुए और पुनः तप्त किये गये तपनीय स्वर्ण के समान लाल तालु और जिह्वा वाले, **गरुलाययउज्जुतुंगणासा** - गरुडायत ऋजु तुंग नासाः - गरुड की नासिका के समान लम्बी, सीधी और ऊंची नाक वाले, **अवदालियपोंडरीयणयणा** - अवदालित पुण्डरीक नयनाः - सूर्य किरणों से विकसित पुण्डरीक कमल जैसी आंखें, **कोयासिय धवलपत्तलच्छा** - कोकासित धवल पत्र लाक्षाः - विकसित श्वेत कमल जैसी कोनों पर लाल, **आणामिय चाव रुइल किण्ह पूराइय संठियसंगय आयय सुजाय तणुकसिण णिद्धभूमया** - आनामित चाप रुचिर कृष्णाभ्रराजिसंस्थित संगतायत सुजात तनु कृष्ण स्निग्ध भ्रुवः - ईषत् आरोपित धनुष के समान वक्र, रमणीय, कृष्ण मेघराजि के समान काली, संगत, दीर्घ, सुजात, पतली, काली और स्निग्ध भौंहे, **अलीणप्पमाणजुत्तसवणा** - आलीनप्रमाणयुक्तश्रवणाः - मस्तक के भाग तक कुछ कुछ लगे हुए प्रमाणोपेत कान, **पीणमंसलकवोलदेसभागा** - पीन मांसल कपोल देशभागाः - पीन (पुष्ट) और मांसल कपोल (गाल) वाले, **अचिरुग्गयबालचंदसंठिय पसत्थविच्छिण्णसमणिडाला** - अचिरोद्गत बालचन्द्र संस्थित प्रशस्त विस्तीर्ण समललाटाः - नविन उदित बालचन्द्र जैसे प्रशस्त, विस्तीर्ण और समतल ललाट, **उडुवइपडिपुण्णसोमवयणा** - उडुपति परिपूर्ण सोमवदना-पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा सौम्य मुख **छत्तागारुत्तमंगदेसा** - छत्राकारोत्तमाङ्गदेशाः - छत्राकार उत्तम मस्तक, **घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णय, कूडागार णिभपिंडियसीसे** - घन निचिंत सुबद्ध लक्षणोन्नत कूटागार निभपिण्डित शीर्षाः - उनका सिर घननिबिड़-सुबद्ध, प्रशस्त लक्षणों वाला, कूटागार-पर्वत शिखर की तरह, उन्नत, पाषाण की पिण्डी की तरह मजबूत और गोल होता है, **दाडिमपुप्फपगासतवणिज्ज सरिसणिम्मलसुजाय केसंतकेसभूमी**- दाडिम पुष्प प्रकाशतपनीय सदृश निर्मल सुजात केशान्त केशभूमयः - दाडिम के फूल की तरह लाल, तपनीय सोने के समान निर्मल और सुन्दर केशान्तभूमि (खोपडी की चमडी) **सामलिबोंडघण णिचिय छोडिय मिउविसय पसत्थसुहुमलक्खण सुगंध सुंदर भूयमोयग भिंगीणीलकज्जल पहट्ठ भमरगण णिद्धणिउरुंब णिचिय कुंचिय चियपयाहिणावत्तमुद्धसिरया** - शाल्मलीबोण्ड घन निचित छोटित मृदु विशद प्रशस्त सूक्ष्मलक्षण सुगन्ध सुंदर भुजमोजक भृङ्गनील कज्जल प्रहृष्ट भ्रमरगण स्निग्ध निकुरम्बनिचित कुञ्चित चित्त प्रदक्षिणावर्त्तमूर्द्धशिरोजाः - मस्तक के बाल खुले किये जाने पर भी शाल्मली वृक्ष के फल जैसे घने और निबिड़, मृदु, निर्मल, प्रशस्त, सूक्ष्म लक्षण युक्त, सुगंधित, सुंदर,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भुजमोचक (रत्नविशेष) नीलमणि, भंवरी, नील और काजल के समान काले, हर्षित भंवरों जैसे काले, स्निग्ध और निचित (इधर उधर बिखरे हुए) नहीं, जमे हुए, घुंघराले और दक्षिणावर्त्त होते हैं, **लक्खणवंजणगुणोववेया** - लक्षण व्यंजन गुणोपपेताः - लक्षण-स्वस्तिक आदि व्यञ्जन-मश तिलक आदि, गुण-क्षमा, गंभीरता आदि युक्त।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में मनुष्यों का आकार प्रकार आदि स्वरूप किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! एकोरुक द्वीप के मनुष्य अनुपम सौम्य और सुंदर रूप वाले हैं, उत्तम भोगों के सूचक लक्षणों वाले हैं, भोगजन्य शोभा से युक्त है। उनके अंग सुजात-जन्म से ही श्रेष्ठ और सर्वांग सुंदर हैं। उनके पांव सुप्रतिष्ठित और कछुए की तरह सुन्दर (उन्नत) हैं, उनके पांवों के तल लाल और कमल के पत्ते के समान मृदु-मुलायम और कोमल हैं उनके चरणों में पर्वत, नगर, समुद्र, मगर, चक्र, चन्द्रमा आदि के चिन्ह हैं, उनके चरणों की अंगुलियां क्रमशः बड़ी छोटी-प्रमाणोपेत और मिली हुई है, उनकी अंगुलियों के नख उठे हुए, पतले, ताम्रवर्ण जैसे एवं स्निग्ध-कांतिवाले हैं। उनके गुल्फ (टखने) प्रमाणोपेत घने और गूढ हैं, हरिणी और कुरुविंद (तृण विशेष) की तरह उनकी पिण्डलियां क्रमशः स्थूल, स्थूलतर और गोल हैं, उनके घुटने संपुट में रखे हुए की तरह गूढ है, उनकी जांघें हाथी की सूण्ड की तरह सुंदर, गोल और पुष्ट है, श्रेष्ठ मदोन्मत्त हाथी की तरह उनकी चाल है, श्रेष्ठ घोड़े की तरह उनका गुह्यदेश सुगुप्त है, आकीर्णक जाति के घोड़े की तरह वे मलमूत्रादि के लेप से रहित हैं, उनकी कमर यौवन प्राप्त श्रेष्ठ घोड़े और सिंह की कमर जैसी पतली और गोल है जैसे संकुचित की गई तिपाई मूसल, दर्पण का दण्डा और शुद्ध किये हुए सोने की मूंठ बीच में से पतले होते हैं उसी प्रकार उनकी कटि (मध्यभाग) पतली है, उनकी रोमराजि सरल-सम-सघन-सुंदर-श्रेष्ठ, पतली, काली, स्निग्ध, आदेय, लावण्यमय सुकुमार सुकोमल और रमणीय है, उनकी नाभि गंगा के आवर्त की तरह दक्षिणावर्त तरंग-त्रिलवी की तरह वक्र और सूर्य की उगती किरणों से खिले हुए कमल की तरह गंभीर और विशाल है। उनकी कुक्षि (पेट के दोनों भाग) मत्स्य और पक्षी की तरह सुंदर और पुष्ट है उनका पेट मछली की तरह कृश है, उनकी इन्द्रियां पवित्र हैं, उनकी नाभि कमल के समान विशाल है उनके पार्श्व भाग नीचे नमे हुए हैं, प्रमाणोपेत हैं, सुंदर हैं, जन्म से सुंदर है, परिमित मात्रा युक्त, स्थूल और आनन्द देने वाले हैं। उनकी पीठ की हड्डी मांसल होने से अनुपलक्षित है, उनके शरीर कंचन की तरह कांति वाले, निर्मल, सुंदर और निरुपहत (रोग रहित-स्वस्थ) होते हैं, वे शुभ बत्तीस लक्षणों से युक्त होते हैं, उनका वक्षस्थल कंचन की शिलातल जैसा उज्ज्वल, प्रशस्त, समतल, पुष्ट, विस्तीर्ण और मोटा होता है, उनकी छाती पर श्रीवत्स का चिन्ह अंकित होता है, उनकी भुजा नगर की अर्गला के समान लम्बी होती है, उनके बाहु शेष नाग के विपुल-लम्बे शरीर तथा उठी हुई अर्गला के समान लम्बे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। उनके हाथों की कलाइयां बैलों पर रखे हुए जूए के समान दृढ़, आनंद देने वाली, पुष्ट, सुस्थित, सघन, विशिष्ट, घन, स्थिर, सुबद्ध और निगूढ पर्व संधियों वाली होती है। उनकी हथेलियां लाल रंग की पुष्ट, कोमल, मांसल, प्रशस्त, लक्षणयुक्त, सुंदर और छिद्र जाल रहित अंगुलियां वाली हैं। उनके हाथों की अंगुलियां पुष्ट, गोल, सुजात और कोमल हैं। उनके नख ताम्रवर्ण सदृश पतले, स्वच्छ, मनोहर और स्निग्ध होते हैं। उनके हाथों में चन्द्र रेखा, सूर्य रेखा, शंख रेखा, चक्र रेखा, दक्षिणावर्त स्वस्तिक रेखा होती है, चन्द्र-सूर्य-शंख, चक्र दक्षिणावर्त स्वस्तिक की मिलीजुली रेखाएं होती है। उनके हाथ अनेक श्रेष्ठ, लक्षणयुक्त उत्तम, प्रशस्त, स्वच्छ और आनंदप्रद रेखाओं से युक्त होते हैं। उनके स्कंध श्रेष्ठ भैंस, वराह, सिंह, शार्दूल (व्याघ्र) बैल और हाथी की स्कंध की तरह परिपूर्ण, विपुल और उन्नत होते हैं, उनकी ग्रीवा चार अंगुल प्रमाण और श्रेष्ठ शंख के समान है। उनकी ठुड्डी (होठों के नीचे का भाग) अवस्थित-सदा एक समान रहने वाली, सुविभक्त-अलग अलग सुंदर रूप से उत्पन्न दाढ़ी के बालों से युक्त, मांसल, सुंदर संस्थान युक्त, प्रशस्त और व्याघ्र की विपुल ठुड्डी के समान है उनके अधरोष्ठ (होठ) परिकर्मित शिला प्रवाल और बिम्बफल के समान लाल हैं। उनके दांत सफेद चन्द्रमा के टुकड़ों जैसे विमल, निर्मल और शंख, गाय का दूध, फेन, जलकण और मृणालिका के तंतुओं के समान श्वेत हैं, उनके दांत अखण्डित, टूटे हुए नहीं और अलग अलग नहीं होते हैं, वे सुंदर दांत वाले हैं, उनके दांत अनेक होते हुए भी एक पंक्ति बद्ध हैं। उनकी जीभ और तालु अग्नि में तपा कर धोये गये और पुनः तप्त किये गये तपनीय स्वर्ण के सदृश लाल हैं। उनकी नाक गरुड़ की नाक जैसी लम्बी, सीधी और ऊंची होती है। उनकी आंखें सूर्य किरणों से विकसित पुण्डरीक कमल जैसी तथा खिले हुए श्वेत कमल जैसी कोनों पर लाल, बीच में काली और धवल तथा पश्मपुट वाली होती है उनकी भौंहे ईषत् आरोपित धनुष के समान वक्र, रमणीय, कृष्ण मेघराजि की तरह काली, प्रमाणोपेत, दीर्घ, सुजात, पतली, काली और स्निग्ध होती हैं। उनके कान मस्तक के भाग तक कुछ कुछ लगे हुए और प्रमाणोपेत होते हैं। वे सुंदर कानों वाले-भलीप्रकार सुनने वाले हैं। उनके गाल पुष्ट और मांसल होते हैं। उनका ललाट नवीन उदित बालचन्द्र जैसा प्रशस्त विस्तीर्ण और समतल होता है। उनका मुख पूर्णिमा के चांद जैसा सौम्य होता हैं। उनका मस्तक छत्राकार और उत्तम होता है। उनका सिर घन-निबिड सुबद्ध, प्रशस्त लक्षणों वाला, कूटाकार-पर्वत शिखर की तरह उन्नत, पाषाण पिण्डी की तरह गोल और मजबूत होता है। उनकी केशान्तभूमि-खोपडी की चमड़ी दाडिम के फूल की तरह लाल, तपनीय सोने के समान निर्मल और सुंदर होती है। उनके मस्तक के बाल खुले किये जाने पर भी शाल्मलि वृक्ष के फल की तरह घने और निबिड होते हैं। उनके बाल मृदु, निर्मल, प्रशस्त, सूक्ष्म, लक्षणयुक्त, सुगंधित, सुंदर, भुजमोचक (रत्नविशेष), नीलमणि (मरकत मणि) भंवरी, नील और काजल के समान काले, हर्षित भ्रमरों के समान अत्यंत काले स्निग्ध और निचित-बिखरे हुए नहीं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जमे हुए होते हैं, वे धुंघराले और दक्षिणावर्त होते हैं। वे मनुष्य लक्षण, व्यञ्जन और गुणों से युक्त होते हैं। वे सुंदर और सुविभक्त स्वरूप वाले होते हैं। वे प्रासादीय-प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप होते हैं।

ते णं मणुया ओहस्सरा हंसस्सरा कोंचस्सरा० णंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सर णिग्घोसा छाया उज्जोइयंगमंगा वज्जरिसहणाराय संघयणा समचउरंससंठाण संठिया सिणिद्धछवि णिरायंका उत्तमपसत्थअइसेस णिरुवमतणू जल्लमलकलंकसेयरयदोस वज्जियसरीरा णिरुवलेवा अणुलोमवाउ वेगा कंकग्गहणी कवोयपरिणामा सउणिव्व पोसपिट्ठंतरोरु परिणया विग्गहिय उण्णयकुच्छी पउमुप्पलसरिसगंध णिस्साससुरभिवयणा अट्ठधणुसयं ऊसिया।

कठिन शब्दार्थ - हंसस्सरा - हंस स्वराः-हंस पक्षी जैसे स्वर वाले, **णंदिघोसा** - नंदी घोष-बारह वाद्यों का समिश्रित स्वर जैसे घोष करने वाले, **छाया उज्जोइयंगमंगा** - छायोद्योतिताङ्गप्रत्यङ्गा-अंग अंग में कांति वाले, **सिणिद्धछवि** - स्निग्धच्छवयः-स्निग्ध छवि वाले, **उत्तमपसत्थअइसेसणिरुवमतणू** - उत्तम प्रशस्तातिशेष निरुपम तनवः-उत्तम, प्रशस्त, अतिशय युक्त और निरुपम शरीर वाले, **जलमलकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरा** - जल्लमलकलंकस्वेद रजोदोष वर्जित शरीराः-शरीर से उत्पन्न मल, स्वेद (पसीने) आदि मैल के कलंक से रहित, स्वेद-रज आदि दोष से रहित शरीर वाले, **णिरुवलेवा** - निरुपलेप-मल मूत्र आदि के लेप रहित, **कंकग्गहणी** - कंकग्रहणयः-कंक पक्षी की तरह निर्लेप ग्रहणी-पाचन संस्थान (आंते) वाले, **कवोयपरिणामा** - कपोत परिणामाः-कपोत की तरह जिनकी जठराग्नि है जो कंकर आदि सबको पचाने वाले, **सउणिव्वपोसपिट्ठंतरोरुपरिणया** - शकुनेरिव पोसपृष्टान्तरोपरिणतः-पक्षी की तरह मलोत्सर्ग के लेप से रहित अपान देश (गुदा भाग) वाले, सुंदर पृष्ठ भाग, उदर और जंघा वाले, **विग्गहिय उण्णाहीयकुच्छी** - विगृहीतोन्नत कुक्षयः-उन्नत और मुष्टिग्राह्य कुक्षि वाले, **पउमुप्पलसरिसगंधणिस्सास सुरभिवयणा** - पद्मोत्पल सदृश गंध निश्वास सुरभिवदनाः-पद्म कमल और उत्पल कमल जैसी सुगंध युक्त श्वासोच्छ्वास से सुगंधित मुख वाले।

भावार्थ - वे मनुष्य हंस जैसे स्वर वाले, क्रौंच जैसे स्वर वाले, नंदी (बारह वाद्यों का समिश्रित स्वर जैसे) घोष करने वाले, सिंह के समान स्वर वाले और गर्जना करने वाले, मधुर स्वर वाले, मधुर घोष वाले, सुस्वर वाले, सुस्वर और सुघोष वाले, अंग अंग में कान्ति वाले, वज्रऋषभनाराच संहनन वाले, समचतुरस्रसंस्थान वाले, स्निग्ध छवि वाले, रोगादि रहित, उत्तम प्रशस्त अतिशय युक्त और निरुपम शरीर वाले, स्वेद (पसीना) आदि मैल के कलंक से रहित और स्वेद-रज आदि दोषों से रहित शरीर वाले, उपलेप से रहित, अनुकूल वायु वेग वाले, कंक पक्षी की तरह निर्लेप ग्रहणी-पाचन संस्थान (आंतें) वाले, कबूतर की तरह जिनकी जठराग्नि है जो कंकर आदि सब पचा लेने वाले, पक्षी की तरह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मलोत्सर्ग के लेप से रहित अपान देश (गुदा भाग) वाले, सुंदर पृष्ठ भाग उदर और जंघा वाले, उन्नत और मुष्टि ग्राह्य कुक्षि वाले और पद्मकमल तथा उत्पल कमल जैसी सुगंध युक्त श्वासोच्छ्वास से सुगंधित मुख वाले वे मनुष्य हैं। उनकी ऊंचाई आठ सौ धनुष की होती है।

तेसिं मणुयाणं चउसट्ठि पिट्ठिकरंडगा पण्णत्ता समणाउसो! ते णं मणुया पगइभद्दगा पगइविणीयणा पगइउवसंता पगइ पयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपण्णा अल्लीणा भद्दगा विणीया अप्पिच्छा असंणिहिसंचया अचंडा विडिमंतरपरिवसणा जहिच्छियकामगामिणो य ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - **पिट्ठिकरंडगा** - पृष्ठ करण्डकाः-पृष्ठकरंडक (पसलियां), **पगइ-पयणुकोहमाणमायालोभा** - प्रकृत्यैव प्रतनु क्रोध मान माया लोभाः-स्वभाव से अतिमंद क्रोध मान माया लोभ वाले, **मिउमद्दवसंपण्णा** - मृदु-मार्दव संपन्न, **अल्लीणा** - आलीनाः-संयत चेष्टा वाले **भद्दगा**- भद्रकाः, **असंणिहिसंचया** - असन्निधि संचयाः-संचय-संग्रह नहीं करने वाले, **विडिमंतर - परिवसणा** - विडिमान्तर परिवसनाः-वृक्षों की शाखाओं में रहने वाले, **जहिच्छियकामगामिणो** - यथेप्सित कामकामिनः-इच्छानुसार विचरण करने वाले।

भावार्थ - हे आयुष्मन् श्रमण! उन मनुष्यों के चौसठ पसलियां होती हैं वे मनुष्य स्वभाव से भद्र, स्वभाव से विनीत, स्वभाव से शान्त, स्वभाव से अल्प क्रोध मान माया लोभ वाले, मृदुता और मार्दव से संपन्न, अल्लीन (संयत चेष्टा वाले) हैं, भद्र, विनीत, अल्प इच्छा वाले, संचय-संग्रह न करने वाले, क्रूर परिणामों से रहित, वृक्षों की शाखाओं में रहने वाले और इच्छानुसार विचरण करने वाले वे एकोरुक द्वीप वाले मनुष्य हैं।

तेसि णं भंते! मणुयाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ?

गोयमा! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन मनुष्यों को कितने काल में आहार की अभिलाषा होती है?

उत्तर - हे गौतम! उन मनुष्यों को चतुर्थ भक्त अर्थात् एक दिन छोड़ कर दूसरे दिन आहार की अभिलाषा होती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकोरुक द्वीप के मनुष्यों का वर्णन किया गया है। आगे के सूत्र में एकोरुक द्वीप की मनुष्य स्त्रियों का वर्णन किया जाता है -

एकोरुक मनुष्य स्त्रियों का वर्णन

एगोरुयमणुईणं भंते! केरिसए आगारभाव पडोयारे पण्णत्ते?

गोयमा! ताओ णं मणुईओ सुजाय सव्वंग सुदंरीओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अच्चंत-विसप्पमाण पउमसूमालकुम्मसंठिय विसिट्ठचलणाओ उज्जुमउयपीवरणिरंतर-पुट्ठसाहियंगुलीया उण्णयरइयतलिणंतंबसुइणिद्ध णक्खा रोमरहियवट्टलट्ठसंठिय अजहण्णपसत्थलक्खण अकोप्पजंघजुयला सुणिम्मिय सुगूढजाणु मंडल सुबद्धसंधी कयलिक्खंभाइरेग संठिय णिव्वणसुकुमालमउयकोमल अविरलसमसहिय सुजाय वट्ट पीवरणिरंतरोरू अट्ठावयवीईपट्ट संठिय पसत्थ विच्छिण्ण पिहुलसोणी वयणाया-मप्पमाणदुगुणिय विसालमंसल सुबद्ध जहणवर धारणीओ वज्जविराइयपसत्थलक्खण णिरोदरा तिवलिवलीय तणुणम्मियमज्झियाओ उज्जुयसमसहिय-जच्चतणुकसिण णिद्ध आदेज्जलडहसुविभत्त सुजाय कंत सोहंतरुइल रमणिज्ज रोमराई गंगावत्तपयाहिणावत्त तरंग भंगुररविकिरण तरुण बोहियअकोसायंतपउमवण गंभीर वियडणाभी अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छी सण्णयपासा संगयपासा सुजायपासा मियमाइय पीण-रइयपासा अकरंडुय कणगरुयगणिम्मलसुजाय णिरुवहयगायलट्ठी कंचणकलससम-पमाणसमसहिय सुजायलट्ठ चूचुय आमेलगजमलजुयल वट्टिय अब्भुण्णयरइयसंठिय पओहराओ भुयंगणुपुव्वतणुयगोपुच्छ-वट्टसम-सहियणमिय-आएज्जललियबाहाओ तंबणहा मंसलग्गहत्था पीवर-कोमलवरंगुलीओ णिद्धपाणिलेहा रविससिसंखचक्क-सोत्थियसुविभत्तसुविरइय पाणिलेहा पीणुण्णयकक्खवत्थिदेसा पडिपुण्णगलकवोला चउरंगुलसुप्पमाण कंबुवरसरिसगीवा मंसल संठिय पसत्थहणुया दाडिमपुप्फप्पगास-पीवरकुंचियवराधरा सुंदरोत्तरोट्ठा दहिदगरयचंदकुंदवासंतिमउल अच्छिद्दविमलदसणा रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहा कणयरमुउलअकुडिल अब्भुग्गय उज्जुतुंगणासा सारयणवकमलकुमुय कुवलय विमुक्कदल णिगरसरिस लक्खण अंकिय कंतणयणा पत्तलचवलायंततंबलोयणाओ आणामिय-चावरुइल-किण्हब्भराइसंठिय संगय आययसुजाय तणुकसिण णिद्ध भमुया अल्लीणपमाण-जुत्तसवणा (सुसवणा) पीणमट्ठरमणिज्जगंडलेहा चउरंसपसत्थसमणिडाला कोमुइरयणियरविमल पडिपुण्ण सोमवयणा छत्तुण्णय उत्तिमंगा कुडिल सुसिणिद्धदीहसिरया छत्तज्झयजुगथूभदामिणि कमंडलुकलसवा-विसोत्थिय पडाग जवमच्छ कुम्मरहवर मगरसुयथाल अंकुसअट्ठावय वीइसुपइट्ठग-मऊरसिरिदामा भिसेयतोरणमेइणिउदहिवरभवणगिरिवर आयंसललियगय उसभसीहचमर उत्तमपसत्थबत्तीस लक्खणधराओ हंससरिसगईओ कोइलमहुरगिर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुस्सराओ कंता सव्वस्स अणुणयाओ ववगयवलिपलिया वंगदुव्वण्णवाहीदोहग्ग सोगमुक्काओ उच्चत्तेण य णराण थोवूणमुसियाओ सभावसिंगारागार चारुवेसा संगयगयहसिय भणियचेट्ठिय विलाससंलावणिउणजुत्तोवयार कुसला सुंदरथण-जहणवयणकरचलण-णयणमाला वण्णलावण्णजोवण्णविलासकलिया णंदणवण-विवरचारिणीउव्व अच्छराओ अच्छेरगपेच्छणिज्जा पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ॥

कठिन शब्दार्थ - पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता - प्रधान महिला गुणैर्युक्ताः-प्रधान महिला गुणों से युक्त, **अच्चंत विसप्पमाण पउम सुकुमाल कुम्मसंठियविसिट्ठ चलणाओ** - अत्यन्त विसर्पन्मृदु सुकुमार कूर्मसंस्थित विशिष्ट चरणाः-उनके चरण अत्यंत विकसित पद्म कमल की तरह सुकोमल कछुए की तरह उन्नत होने से सुंदर आकार के हैं, **उज्जुमउयपीवरणिरंतरपुट्ठसाहियंगुलीया** - ऋजुमृदुकपीवर निरन्तर पुष्ट संहता अंगुलयः-सीधी कोमल स्थूल निरन्तर पुष्ट और मिली हुई पांवों की अंगुलियां वाली, **उण्णयरइयतलिणतंब सुइणिद्धणक्खा** - उन्नतरतिदतलिन ताम्र शुचि स्निग्ध नखाः-उन्नत, रति देने वाले, तलिन-पतले, ताम्र जैसे लाल, स्वच्छ एवं स्निग्ध नख वाली, **रोमरहिय वट्टलट्ठसंठिय अजहण्णपसत्थलक्खण अकोप्पजंघजुयला** - रोम रहित वृत्तलष्ट संस्थिताजघन्य प्रशस्तलक्षणा कोप्यजंघ युगलाः-उनकी पिण्डलियां रोम रहित, गोल, सुंदर, संस्थित, उत्कृष्ट शुभ लक्षण वाली और प्रीतिकर होती है, **सुणिम्मियसुगूढ जाणु मंडल सुबद्धसंधी** - सुनिर्मित सुगूढ जानुमंडल सुबद्धसंधयः-सुनिर्मित, सुगूढ और सुबद्ध संधी वाले घुटने, **कयलिक्खंभाइरेगसंठिय णिव्वणसुकुमाल मउयकोमल अविरल समसहियसुजाय वट्टपीवर णिरंतरोरु** - कदलीस्तम्भातिरेक संस्थित निव्रर्ण सुकुमार मृदुक कोमलाविरल सम संहत सुजातवृत्त पीवर निरन्तरोरवः-उनकी जंघाएं कदली के स्तंभ के आकार वाली, व्रणादि रहित, सुकुमाल, मृदु, कोमल, अविरल-पास पास, समान प्रमाण वाली, मिली हुई, सुजात, गोल, मोटी और निरन्तर है, **अट्ठावयवीई पट्टसंठियपसत्थविच्छिण्ण पिहुलसोणी** - अष्टापदवीचि पट्टसंस्थित प्रशस्त-विस्तीर्ण पृथुल श्रोणयः-अष्टापद द्यूत के पट्ट के आकार का प्रशस्त शुभ विस्तीर्ण मोटी श्रोणि-कमर के पीछे का भाग, **वयणायामप्पमाणदुगुणिय विसाल मंसलसुबद्ध जहणवरधारणीओ** - वदनायाम प्रमाण द्वि गुणित विशाल मंसल सुबद्ध जघनवर धारिण्यः-मुख प्रमाण से दुगुना-चौबीस अंगुल प्रमाण, विशाल, मांसल एवं सुबद्ध उनका जघन प्रदेश है, **वज्जविराइयपसत्थ लक्खण णिरोदरा** - वज्र विराजित प्रशस्त लक्षण निरुदराः-वज्र की तरह सुशोभित शुभ लक्षणों वाला पतला पेट, **तिवलिवलीयतणुणमियमज्झियाओ** - त्रिवलिवलितनुनमितमध्यिकाः-त्रिवलि से युक्त, पतली और लचीली कमर, **अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छी** - अनुद्भट प्रशस्त पीन कुक्षयः-उग्रता रहित, प्रशस्त और स्थूल कुक्षि, **कंचणकलससमपमाणसम**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहियसुजायलट्ठचुचूय आमेलगजमलजुयल वट्टिय अब्भुण्णयरइयसंठियपओहराओ - काञ्चन कलशसमप्रमाणसमसंहित सुजात लष्ट चुचुकामेलक यमल युगल वर्तिताभ्युन्नतरतिद संस्थित पयोधराः- उनके पयोधर (स्तन) सोने के कलश के समान प्रमाणोपेत, समसंहत बराबर मिले हुए, सुजात सुंदर हैं उनके चुचूक मुकुट के समान लगते हैं दोनों एक साथ उत्पन्न होते और एक साथ वृद्धिंगत होते हैं गोल, उन्नत और प्रीतिकारी होते हैं, **भुयंगणु पुव्वतणुयगोपुच्छवट्टसमसहिय णमिय आएज्ज ललिय बाहाओ** - भुजङ्गानुपूर्व्यतनुक गोपुच्छवृत्त समसंहित नत आदेय ललित बाहवः-भुजंग की तरह अनुक्रम से पतली गोपुच्छ की तरह गोल, आपस में समान और मिली हुई, नत, आदेय और सुंदर बाहु, **पीणुण्णयकक्खवत्थिदेसा** - पीनोन्नत कक्षवस्तिदेशाः-पीन और उन्नत कक्ष और वस्ति भाग, **दहिदगरयचंदकुंदवासंतिमउल अच्छिद्दविमलदसणा** - दधिदकरजश्चन्द्रकुंद-वासन्ती मुकुला च्छिद्रविमलदसनाः-दही, जलकण, चन्द्र, कुंद वासंतीकली के समान श्वेत और छिद्र विहीन दांत।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप की मनुष्य स्त्रियों का आकार प्रकार आदि कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वे मनुष्यस्त्रियां श्रेष्ठ अवयवों से सर्वांग सुंदर हैं, महिलाओं के श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं। उनके चरण अत्यंत विकसित पद्म कमल की तरह सुकोमल और कछुए की तरह उन्नत होने से सुंदर आकार के हैं। उनके पांवों की अंगुलियां सीधी, कोमल, स्थूल, निरन्तर, पुष्ट और मिली हुई हैं। उनके नख उन्नत, रति देने वाले, पतले, तांबे जैसे लाल, स्वच्छ एवं स्निग्ध हैं। उनकी पिण्डलियां रोम रहित, गोल, सुंदर, संस्थित, उत्कृष्ट शुभ लक्षण वाली और प्रीतिकर होती हैं। उनके घुटने सुनिर्मित, सुगूढ और सुबद्ध संधि वाले हैं, उनकी जंघाएं कदली के स्तंभ से भी अधिक सुन्दर, व्रणादि रहित, सुकोमल, मृदु, कोमल, पास-पास, समान प्रमाण वाली, मिली हुई, सुजात गोल, मोटी एवं निरन्तर हैं, उनकी कमर के नीचे का भाग अष्टापद द्यूत के पट्ट के आकार का, शुभ, विस्तीर्ण और मोटा है, मुख प्रमाण से दुगुना चौबीस अंगुल प्रमाण, विशाल, मांसल एवं सुबद्ध उनका जघन प्रदेश है, उनका पेट वज्र की तरह सुशोभित, शुभ लक्षणों वाला और पतला होता है, उनकी कमर त्रिवली से युक्त, पतली और लचीली होती है उनकी रोमराजि सरल, सम, मिली हुई, जन्मजात पतली, काली, स्निग्ध, सुहावनी सुंदर, सुविभक्त, सुजात, कांत, शोभायुक्त, रुचिर और रमणीय होती है। उनकी नाभि गंगा के आवर्त की तरह दक्षिणावर्त, तरंग भंगुर सूर्य की किरणों से ताजे विकसित हुए कमल की तरह गंभीर और विशाल है। उनकी कुक्षि उग्रता रहित, प्रशस्त और स्थूल है। उनके पार्श्व कुछ झुके हुए, प्रमाणोपेत, सुंदर, जन्मजात सुंदर, परिमित मात्रा युक्त स्थूल और आनंद देने वाले हैं। उनका शरीर इतना मांसल होता है कि उसमें पीठ की हड्डी और पसलियां दिखाई नहीं देती हैं। उनका शरीर सोने जैसी कांति वाला, निर्मल, जन्मजात सुंदर और ज्वर आदि उपद्रव से रहित होता है। उनके पयोधर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(स्तन) सोने के कलश के समान प्रमाणोपेत, बराबर मिले हुए, सुजात और सुंदर हैं जिनके चूचूक उन स्तनों पर मुकुट जैसे लगते हैं उनके दोनों स्तन एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक साथ बढ़ते हैं। वे गोल, उन्नत (उठे हुए) और आकार प्रकार से प्रीतिकर होते हैं। उनकी दोनों बाहु भुजंग की तरह क्रमशः नीचे की ओर पतली गोपुच्छ की तरह गोल समान, अपनी अपनी संधियों से सटी हुई, नत, आदेय और सुंदर होती हैं। उनके नख ताम्रवर्ण के होते हैं। उनका पंजा मांसल होता है। उनकी अंगुलियां पुष्ट, कोमल और श्रेष्ठ होती हैं। उनकी हाथ की रेखाएं स्निग्ध होती हैं। उनके हाथ में चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र-स्वस्तिक की अलग अलग और सुविरचित रेखाएं होती हैं। उनके कक्ष और वस्ति (नाभि के नीचे का भाग) पीन और उन्नत होता है। उनके गाल भरे भरे होते हैं, उनकी गर्दन चार अंगुल प्रमाण और श्रेष्ठ शंख की तरह होती है उनके ठुड्डी मांसल, सुंदर आकार की तथा शुभ होती है। उनका अधरोष्ठ (नीचे का होठ) दाडिम के फूल की तरह लाल, प्रकाशमान पुष्ट और कुछ कुछ वलित होने से सुंदर लगता है। उनका ऊपर का होठ भी सुंदर होता है। उनके दांत, दही, जलकण, चन्द्र, कुंद वासंतीकली के समान श्वेत और छेद रहित होते हैं। उनका तालु और जीभ कमल के पत्ते के समान लाल, मृदु और कोमल होते हैं। उनकी नाक कनेर की कली की तरह सीधी उन्नत, ऋजु और तीखी होती है। उनके नेत्र शरद ऋतु के कमल की तरह और चन्द्र विकासी नील कमल के विमुक्त पत्रदल के समान कुछ श्वेत कुछ लाल और कुछ कालिमा लिये हुए और बीच में काली पुतलियों से अंकित होने से सुंदर लगते हैं। उनके लोचन पश्मपुट युक्त, चंचल, कान तक लम्बे और ताम्रवत होते हैं। उनकी भौंहे कुछ नमे हुए धनुष की तरह टेढी, सुंदर, काली और मेघराजि के समान प्रमाणोपेत, लम्बी सुजात काली और स्निग्ध होती है। उनके कान मस्तक से कुछ लगे हुए और प्रमाणोपेत होते हैं। उनकी गंडलेखा-गाल और कान के बीच का भाग, मांसल चिकनी और रमणीय होती है। उनका ललाट, चौरस, प्रशस्त और समतल होता है, उनका मुख कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह निर्मल और परिपूर्ण होता है। उनका मस्तक छत्र के समान उन्नत होता है। उनके बाल घुंघराले, स्निग्ध और लम्बे होते हैं। वे निम्न बत्तीस लक्षणों को धारण करने वाली हैं - १. छत्र २. ध्वज ३. युग (जुआ) ४. स्तूप ५. दामिनी (पुष्पमाला) ६. कमण्डलु ७. कलश ८. वापी (बावड़ी) ९. स्वस्तिक १०. पताका ११. यव १२. मत्स्य १३. कुम्भ १४. श्रेष्ठ रथ १५. मकर १६. शुकस्थाल- तोते को चुगाने का पात्र १७. अंकुश १८. अष्टापद-वीचिद्युतफलक १९. सुप्रतिष्ठक-स्थापनक २०. मयूर २१. श्रीदाम (मालाकार आभरण विशेष) २२. अभिषेक-कमलाभिषेक युक्त लक्ष्मी जिसका दो हाथियों से अभिषेक किया जाता है ऐसा चिह्न २३. तोरण २४. मेदिनी-पृथ्वीपति-राजा २५. उदधिवर- समुद्र २६. भवन २७. प्रासाद २८. दर्पण २९. ललित गज श्रेष्ठ - क्रीड़ा करता हुआ श्रेष्ठ हाथी ३०. वृषभ-बैल ३१. सिंह और ३२. चामर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे एकोरुक द्वीप की स्त्रियां हंस के समान चाल वाली हैं। कोयल के समान मधुर वाणी और स्वर वाली, कमनीय और सबको प्रिय लगने वाली होती है। उनके शरीर पर झुर्रियाँ नहीं पड़ती और बाल सफेद नहीं होते। वे व्यंग्य (विकृति), वर्ण विकार, व्याधि, दौर्भाग्य और शोक से मुक्त होती है वे ऊंचाई में पुरुषों की अपेक्षा कुछ कम ऊंची होती हैं। वे स्वाभाविक श्रृंगार और श्रेष्ठ वेश वाली होती है। वे सुंदर चाल, हास, बोलचाल चेष्टा, विलास, संलाप में चतुर तथा योग्य व्यवहार में कुशल होती है। उनके स्तन, जघन, मुख, हाथ, पांव और नेत्र बहुत सुंदर होते हैं। वे सुन्दर वर्ण वाली, लावण्य वाली, यौवनवाली और विलास युक्त होती है। नंदनवन में विचरण करने वाली अप्सराओं की तरह वे आश्चर्य से दर्शनीय हैं। वे प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप होती हैं।

तासि णं भंते! मणुईणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ?

गोयमा! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन स्त्रियों को कितने काल से आहार की इच्छा होती है?

उत्तर - हे गौतम! उन स्त्रियों को चतुर्थभक्त अर्थात् एक दिन छोड़कर दूसरे दिन आहार की इच्छा होती है।

मनुष्यों का आहार

ते णं भंते! मणुया किमाहारमाहारेंति?

गोयमा! पुढविपुप्फफलाहारा ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो!

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे मनुष्य कैसा आहार करते हैं?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण गौतम! वे मनुष्य पृथ्वी, पुष्प और फलों का आहार करते हैं।

पृथ्वी का स्वाद

तीसे णं भंते! पुढवीए केरिसए आसाए पण्णत्ते?

गोयमा! से जहाणामए गुलेइ वा खंडेइ वा सक्कराइ वा मच्छंडियाइ वा भिसकंदेइ वा पप्पडमोयएइ वा पुप्फउत्तराइ वा पउमुत्तराइ वा अकोसियाइ वा विजयाइ वा महाविजयाइ वा आयंसोवमाइ वा अणोवमाइ वा चाउरक्के गोखीरे चउठाणपरिणए गुडखंडमच्छंडिउवणीए मंदग्गिकडए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं, भवेयारूवे सिया, णो इणट्ठे समट्ठे, तीसे णं पुढवीए एत्तो इट्ठतराए चेव जाव मणामतराए चेव आसाए णं पण्णत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **आसाए** - आस्वाद-रस, **गुलेइ** - गुड इति, **मच्छंडियाइ** - मत्सण्डिका-मिश्री **भिसकंदेइ** - बिसकंदं-कमल कन्द, **पप्पडमोयएइ** - पर्पट मोदक (खाद्य विशेष), **पुप्फउत्तराइ** - पुष्पोत्तरेति-पुष्प विशेष से बनी शक्कर, **आयंसोवमाइ** - आदर्शोपमा, **चाउरक्के** - चार बार, **गोखीरे** - गोक्षीर-गाय का दूध, **चउट्ठाणपरिणए** - चतुःस्थान परिणत, **मंदग्गिकडीए** - मन्दाग्निक्वथितम्-मंद अग्नि पर पकाया हुआ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उस पृथ्वी का स्वाद कैसा है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे गुड़, खांड, शक्कर, मिश्री, कमलकंद, पर्पटमोदक (खाद्य विशेष), पुष्पविशेष से बनी शक्कर, कमल विशेष से बनी शक्कर अकोशिता, विजया, महाविजया, आदर्शोपमा, अनोपमा (ये मीठे द्रव्य विशेष हैं) का स्वाद होता है वैसा उस मिट्टी का स्वाद है अथवा चार बार परिणत एवं चतुःस्थान परिणत गाय का दूध जो गुड़, शक्कर, मिश्री मिलाया हुआ, मंद अग्नि पर पकाया हुआ तथा शुभ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से युक्त हो ऐसे गाय के दूध जैसा वह स्वाद होता है क्या?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उस पृथ्वी का स्वाद इससे भी इष्टतर यावत् मनामतर होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वी का स्वाद बतलाने के लिये उपमाएं दी गई है। पौण्ड इक्षु रस चरने वाली चार गायों का दूध तीन गायों को पिलाना, तीन गायों का दूध दो गायों को पिलाना और दो गायों का दूध एक गाय को पिलाना, इस प्रकार उस गाय का जो दूध है वह चार बार परिणत और चतुःस्थान परिणत कहलाता है।

पुष्पों और फलों का स्वाद

तेसि णं भंते! पुप्फफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते?

गोयमा! से जहाणामए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स कल्लाणे पवरभोयणे सयसहस्सणिप्फण्णे वण्णेणं उववेए गंधेणं उववेए रसेणं उववेए फासेणं उववेए आसायणिज्जे वीसायणिज्जे दीवणिज्जे विंहणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे सव्विंदिय-गायपल्हायणिज्जे, भवेयारूवे सिया, णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं पुप्फफलाणं एत्तो इट्ठतराए चेव जाव आसाए णं पण्णत्ते।

कठिन शब्दार्थ - **कल्लाणे** - कल्याण, **पवरभोयणे** - प्रवर भोजन-विशिष्ट भोजन, **सयसहस्सणिप्फण्णे** - शतसहस्र निष्पन्नम्-लाख गायों से संपादित, **आसाइणिज्जे** - आस्वादनीयं-आस्वादन के योग्य, **वीसाइणिज्जे** - विस्वादनीयं-पुनः पुनः आस्वादन के योग्य, **दीवणिज्जे** - दीपनीयं-जठराग्नि वर्द्धक, **विंहणिज्जे** - बृंहणीयं-धातुवृद्धिकारक, **दप्पणिज्जे** - दर्पणीयं-उत्साह आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बढ़ाने वाला, **मयणिज्जे** - मदनीयं-मस्ती पैदा करने वाला, **सव्विंदियगायपल्हायणिज्जे** - सर्वेन्द्रियगात्र प्रल्हादनीयं-सभी इन्द्रियों और शरीर को आनन्द देने वाला।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वहां के पुष्पों और फलों का आस्वाद कैसा होता है?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार चातुरंत चक्रवर्ती का कल्याणभोजन जो लाख गायों से निष्पन्न होता है, जो श्रेष्ठ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से युक्त है, आस्वादन के योग्य है, बार बार आस्वादन के योग्य है, जठराग्नि वर्धक है, धातुवृद्धिकारक है, उत्साह आदि बढ़ाने वाला है, मस्ती पैदा करने वाला है और सभी इन्द्रियों और शरीर को आनंददायक होता है, क्या ऐसा उन पुष्पों और फलों का स्वाद है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उन पुष्पों और फलों का स्वाद उससे भी अधिक इष्टतर यावत् मनामतर होता है।

विवेचन - शंका - चक्रवर्ती के कल्याणभोजन से क्या आशय है?

समाधान - पुण्ड्र जाति के इक्षु को चरने वाली एक लाख गायों का दूध पचास हजार गायों को पिलाया जाय, उन पचास हजार गायों का दूध पच्चीस हजार गायों को पिलाया जाय, पच्चीस हजार गायों का दूध १२५० गायों को पिलाया जाय, इस प्रकार क्रमशः आधी आधी गायों को पिलाते हुए अंतिम गाय का जो दूध हो, उस दूध से बनाई हुई खीर जिसमें विविध प्रकार के मेवे आदि द्रव्य डाले गये हों, वह चक्रवर्ती का कल्याणभोजन कहलाता है।

ते णं भंते! मणुया तमाहारमाहारित्ता कहिं वसहिं उवेंति?

गोयमा! रुक्ख गेहालया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे मनुष्य उक्त आहार करके किस प्रकार के निवासों में रहते हैं?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण गौतम! वे मनुष्य गेहाकार परिणत वृक्षों में रहते हैं।

वृक्षों का संस्थान

ते णं भंते! रुक्खा किं संठिया पण्णत्ता?

गोयमा! कूडागारसंठिया पेच्छाघरसंठिया सत्तागारसंठिया झयसंठिया थूभसंठिया तोरणसंठिया गोपुरवेइयचोपायालगसंठिया अट्टालगसंठिया पासायसंठिया हम्मतलसंठिया गवक्खसंठिया वालग्गपोत्तियसंठिया वलभीसंठिया अण्णे तत्थ बहवे वरभवणसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिया सुहसीयलच्छाया णं ते दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!॥

कठिन शब्दार्थ - कूडागारसंठिया - कूटाकार संस्थिताः-कूट-पर्वत के शिखर के आकार के, **गोपुरवेइयचोपायालगसंठिया** - गोपुरवेदिका चोप्पालक संस्थिताः-गोपुर-नगर के प्रधान द्वार जैसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेदिका-चबूतरी के जैसे चोप्पाल-मत्त हाथी के जैसे आकार वाले, **वरभवणसयणासण-विसिट्ठसंठाणसंठिया**- वर भवन शयनासन विशिष्टसंस्थान संस्थिताः, **सुहसीयलच्छाया** - शुभ शीतल छाया वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन वृक्षों का आकार कैसा होता है?

उत्तर - हे गौतम! वे वृक्ष पर्वत के शिखर के आकार के, नाट्यशाला के आकार के, छत्र के आकार के, ध्वजा के आकार के, स्तूप के आकार के, तोरण के आकार के, गोपुर जैसे,वैदिका जैसे चोप्पाल (मत्त हाथी) के आकार के, अट्टालिका जैसे, राजमहल जैसे, हवेली जैसे, गवाक्ष जैसे, जल प्रासाद जैसे, छज्जावाले घर के आकार के हैं तथा हे आयुष्मन् श्रमण! और भी वहां वृक्ष हैं जो विविध भवनों, शयनों, आसनों आदि के विशिष्ट आकार वाले और सुखरूप शीतल छाया वाले हैं।

एकोरुक द्वीप में घर आदि

अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे दीवे गेहाणि वा गेहावणाणि वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, रुक्खगेहालया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - **गेहाणि** - गृहा-घर, **गेहावणाणि** - घरों के बीच का मार्ग।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक नामक द्वीप में घर अथवा घरों के बीच का मार्ग है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य गृहाकार बने हुए वृक्षों पर रहते हैं।

एकोरुक द्वीप में ग्राम आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे गामाइ वा णगराइ वा जाव सण्णिवेसाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, जहिच्छियकामगामिणो ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में ग्राम नगर यावत् सन्निवेश है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य इच्छानुसार गमन करने वाले हैं।

एकोरुक द्वीप में असि आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे असीइ वा मसीइ वा कसीइ वा पणीइ वा वणिज्जाइ वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयअसिमसिकिसिपणियवाणिज्जा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - पणीइ - पण्य-किराना आदि, **वणिज्जाइ** - वाणिज्य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में असि (शस्त्र आदि), मषि (लेखन आदि) कृषि, पण्य (किराना आदि) और वाणिज्य-व्यापार है?

उत्तर - यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य असि, मषि, कृषि, पण्य और वाणिज्य से रहित हैं।

एकोरुक द्वीप में हिरण्य आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुय दीवे दीवे हिरण्णेइ वा सुवण्णेइ वा कंसेइ वा दूसेइ वा मणीइ वा मुत्तिएइ वा विउलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालसंत-सारसावएज्जेइ वा?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं तिव्वे ममत्तभावे समुप्पज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में हिरण्य, सुवर्ण, कांसी, वस्त्र, मणि, मोती तथा विपुल धन सोना, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल आदि प्रधान द्रव्य हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! एकोरुक द्वीप में हिरण्य सुवर्ण आदि हैं परन्तु उन मनुष्यों को उनमें तीव्र ममत्वभाव नहीं होता है।

एकोरुक द्वीप में राजा आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे० रायाइ वा जुवरायाइ वा ईसरेइ वा तलवरेइ वा माडंबियाइ वा कोडुंबियाइ वा इब्भाइ वा सेट्ठीइ वा सेणावईइ वा सत्थवाहाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयइड्ढीसक्कारा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - ईसरेइ - ईश्वर, **तलवरेइ** - तलवर-राजा द्वारा दिये गये स्वर्ण पट्ट को धारण करने वाला अधिकारी, **माडंबियाइ** - माण्डम्बिक-उजडी वसति का स्वामी, **इब्भाइ** - इभ्य (धनिक), **सत्थवाहाइ** - सार्थवाह-अनेक व्यापारियों के साथ देशान्तर में व्यापार करने वाला प्रमुख व्यापारी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में राजा, युवराज, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि हैं क्या?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में राजा आदि नहीं हैं। वे मनुष्य ऋद्धि और सत्कार के व्यवहार से रहित हैं अर्थात् वहां सब बराबर है, विषमता नहीं है।

एकोरुक द्वीप में नौकर आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे दासाइ वा पेसाइ वा सिस्साइ वा भयगाइ वा भाइल्लगाइ वा कम्मगरपुरिसाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयआभिओगिया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - **पेसाइ** - प्रेष्य (नौकर), **भयगाइ** - भृत्य (वेतन भोगी), **भाइल्लगाइ** - भागीदार, **कम्मगरपुरिसाइ** - कर्मचारी।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में दास, नौकर, शिष्य, भृत्य, भागीदार और कर्मचारी हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वहां दास नौकर आदि नहीं हैं।

एकोरुक द्वीप में माता आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे मायाइ वा पियाइ वा भायाइ वा भइणीइ वा भज्जाइ वा पुत्ताइ वा धूयाइ वा सुण्हाइ वा?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसि णं मणुयाणं तिव्वे पेमबंधणे समुप्पज्जइ, पयणुपेज्जबंधणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - **भज्जा** - भार्या, **धूयाइ** - पुत्री, **सुण्हाइ** - पुत्रवधू, **पेमबंधणे** - प्रेम बन्धन, **पयणुपेज्ज बंधणा** - प्रतनु प्रेम बंधनाः-अल्प राग (प्रेम) बंधन वाले।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में माता, पिता, भाई, बहिन, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधू हैं क्या?

उत्तर - हाँ गौतम! एकोरुक द्वीप में माता पिता आदि हैं परन्तु उनका तीव्र प्रेमबन्धन नहीं होता है। वे अल्पराग बन्धन वाले हैं।

एकोरुक द्वीप में अरि आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे अरीइ वा वेरिएइ वा घायगाइ वा वहगाइ वा पडिणीयाइ वा पच्चमित्ताइ वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयवेराणुबंधा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में अरि, वैरी, घातक, वधक, प्रत्यनीक (विरोधी) प्रत्यमित्र (पहले मित्र रह कर अमित्र हुआ व्यक्ति या दुश्मन का सहायक) हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में अरि, वैरी आदि नहीं हैं। वे मनुष्य वैरभाव से रहित होते हैं।

एकोरुक द्वीप में मित्र आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे० मित्ताइ वा वयंसाइ वा घडियाइ वा सहीइ वा सुहियाइ वा महाभागाइ वा संगइयाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयपेम्मा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - वयंसाइ - वयस्य-समान वय वाला, **घडियाइ** - घटित-प्रेमी, **सहीइ** - सखा, **सुहियाइ** - सुहृद-निरन्तर साथ रहने वाला, हित का उपदेश दाता, **महाभागाइ** - महाभाग-महान् भाग्यशाली **संगइयाइ** - सांगतिक-साथी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में मित्र, वयस्य (समान वय वाला), प्रेमी, सखा, सुहृद, महाभाग और सांगतिक हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक द्वीप में मित्र आदि नहीं हैं। वे मनुष्य प्रेमानुबन्ध रहित हैं।

एकोरुक द्वीप में विवाह आदि

अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे० आवाहाइ वा वीवाहाइ वा जण्णाइ वा सद्धाइ वा थालिपागाइ वा चोलोवणयणाइ वा सीमंतुण्णयणाइ वा पिइ(मय)पिंडणिवेयणाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयआवाहविवाहजण्णसद्धथालिपागचोलोवण-तणसीमंतुण्णयणपिइपिंडणिवेयणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - आवाहाइ - आबाह (सगाई), **वीवाहाइ** - विवाह (परिणय), **जण्णाइ** - यज्ञ, **सद्धाइ** - श्राद्ध, **थालिपागाइ** - स्थालीपाक (वर-वधू भोज), **चोलोवणयणाइ** - चोलोपनयन-शिखा धारण संस्कार, **सीमंतुण्णयणाइ** - सीमन्तोन्नयन-मुण्डन संस्कार विशेष, **पिइ(मय)पिंडणिवेयणाइ** - पितृ (मृत) पिण्ड निवेदनमिति-पितरों को पिण्डदान आदि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में आबाह, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध, स्थालीपाक, चोलोपनयन, सीमन्तोन्नयन, पितृपिण्डदान आदि संस्कार हैं क्या?

उत्तर - यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण! ये संस्कार वहां नहीं हैं। वे मनुष्य आबाह, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध भोज, चोलोपनयन, सीमन्तोन्नयन, पितृ पिण्डदान आदि व्यवहार से रहित हैं।

एकोरुक द्वीप में महोत्सव

अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे दीवे इंदमहाइ वा खंदमहाइ वा रुद्दमहाइ वा सिवमहाइ वा वेसमणमहाइ वा मुगुंदमहाइ वा णागमहाइ वा जक्खमहाइ वा भूयमहाइ वा कूवमहाइ वा तलायणइमहाइ वा दहमहाइ वा पव्वयमहाइ वा रुक्खरोवणमहाइ वा चेइयमहाइ वा थूभमहाइ वा० ?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयमहमहिमा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - इंदमहाइ - इन्द्र महोत्सव, **थूभमहाइ** - स्तूप महोत्सव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में इन्द्र महोत्सव, स्कंद महोत्सव, रुद्र (यथाधिपति) महोत्सव, शिव महोत्सव, वेश्रमण महोत्सव, मुकुंद महोत्सव, नाग महोत्सव, यक्ष महोत्सव, भूत महोत्सव, तालाब महोत्सव, नदी महोत्सव, द्रह महोत्सव, पर्वत महोत्सव, वृक्षारोपण महोत्सव, चैत्य महोत्सव और स्तूप महोत्सव होते हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! ये महोत्सव वहां नहीं होते हैं। वे मनुष्य महोत्सव की महिमा से रहित होते हैं।

एकोरुक द्वीप में खेल आदि

अत्थि णं भंते! एगोरुय दीवे दीवे णडपेच्छाइ वा णट्टपेच्छाइ वा मल्लपेच्छाइ वा मुट्ठियपेच्छाइ वा विडंबगपेच्छाइ वा कहगपेच्छाइ वा पवगपेच्छाइ वा अक्खायगपेच्छाइ वा लासगपेच्छाइ वा लंखपेच्छाइ वा मंखपेच्छाइ वा तूणइल्लपेच्छाइ वा तुंबवीणपेच्छाइ वा कावपेच्छाइ वा मागहपेच्छाइ जल्लपेच्छाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयकोउहल्ला णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - णडपेच्छाइ - नटप्रेक्षेति-नट का खेल, **विडंबगपेच्छाइ** - विदूषकों को देखने वालों का मेला, **जल्लपेच्छाइ** - स्तुति पाठकों का मेला, **ववगयकोउहल्ला** - कौतूहल से रहित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में नटों का खेल होता है, नृत्यों का आयोजन होता है, डोरी पर खेलने वालों का खेल होता, कुश्तियां होती हैं, मुष्टि प्रहार आदि का प्रदर्शन होता है, विदूषकों, कथाकारों, उछलकूद करने वालों, शुभाशुभ फल कहने वालों, रास गाने वालों, बांस पर चढ कर नाचने वालों, चित्रफलक हाथ में लेकर मांगने वालों, तूणा बजाने वालों, वीणावादकों, कावड लेकर घूमने वालों और स्तुति पाठकों का मेला लगता है क्या?

उत्तर - यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य कौतुहल से रहित कहे गये हैं।

एकोरुक द्वीप में वाहन

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे सगडाइ वा रहाइ वा जाणाइ वा जुग्गाइ वा गिल्लीइ वा थिल्लीइ वा पिपिल्लीइ वा पवहणाणि वा सिवियाइ वा संदमाणियाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, पायचारविहारिणो णं ते मणुस्सगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - सगडाइ - शकट-गाडी, **जाणाइ** - यान (वाहन), **जुग्गाइ** - युग्य-गोल्ल देश प्रसिद्ध चतुष्कोण वेदिका वाली और दो पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली पालखी, **गिल्लीइ** - गिल्ली-हाथी के ऊपर रखा जाने वाला थाली के आकार का आसन, **थिल्लीइ** - थिल्ली-लाट देश में प्रसिद्ध यान, **पवहणाणि** - प्रवहण-जहाज, **सिवियाइ** - शिविका (पालखी), **संदमाणियाइ** - स्यन्दमानिका (छोटी पालखी), **पायचारविहारिणो** - पादचारविहारिणः-पैदल चलने वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में गाड़ी, रथ, यान, युग्य, गिल्ली, थिल्ली, पिपिल्ली, प्रवहण (नौका-जहाज) शिविका और स्यंदमानिका आदि वाहन हैं क्या?

उत्तर - यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण! वहां गाड़ी, रथ आदि वाहन नहीं हैं। वे मनुष्य पैदल चलने वाले होते हैं।

एकोरुक द्वीप में पशु आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे० आसाइ वा हत्थीइ वा उट्टाइ वा गोणाइ वा महिसाइ वा खराइ वा घोडाइ वा अयाइ वा एलाइ वा?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में घोड़ा, हाथी, ऊंट, बैल, भैंस-भैंसा, गधा, टट्टू, बकरा-बकरी और भेड़ होते हैं क्या?

उत्तर - हाँ गौतम! होते तो हैं परन्तु उन मनुष्यों के उपभोग के लिए नहीं होते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे सीहाइ वा वग्घाइ वा विगाइ वा दीवियाइ वा अच्छाइ वा परच्छाइ वा परस्सराइ वा तरच्छाइ वा सियालाइ वा बिडालाइ वा सुणगाइ वा कोलसुणगाइ वा कोकंतियाइ वा ससगाइ वा चित्तलाइ वा चिल्ललगाइ वा?

हंता अत्थि, णो चेव णं ते अण्णमण्णस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा पबाहं वा उप्पायंति वा छविच्छेयं वा करेंति, पगइभद्दगा णं ते सावयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में सिंह, व्याघ्र, भेडिया, चीता, रींछ, गेंडा, तरक्ष (तेंदुआ) बिल्ली, सियाल, कुत्ता, सूअर, लोमड़ी, खरगोश, चित्तल और चिल्लक हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! वहां सिंह आदि पशु हैं परन्तु वे परस्पर या वहां के मनुष्यों को पीड़ा या बाधा नहीं देते हैं और उनके अवयवों का छेदन नहीं करते हैं क्योंकि वे पशु स्वभाव से भद्रिक होते हैं

एकोरुक द्वीप में धान्य

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे सालीइ वा वीहीइ वा गोधूमाइ वा जवाइ वा तिलाइ वा इक्खूइ वा?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में शालि, व्रीहि, गेहूं, जो, तिल और इक्षु होते हैं क्या?

उत्तर - हाँ गौतम! वहां शालि आदि होते हैं, किंतु उन पुरुषों के उपभोग में नहीं आते।

एकोरुक द्वीप में गड्ढे आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे गत्ताइ वा दरीइ वा घंसाइ वा भिगूइ वा उवाएइ वा विसमेइ वा विज्जलेइ वा धूलीइ वा रेणूइ वा पंकेइ वा चलणीइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, एगूरुयदीवे णं दीवे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - **गत्ताइ** - गड्ढे, **दरीइ** - बिल, **घंसाइ** - दरारें, **भिगूइ** - भृगु-पर्वत शिखर आदि ऊंचे स्थान, **उवाएइ** - अवपात (गिरने की संभावना वाले स्थान), **विसमेइ** - विषम स्थान, **विज्जलेइ** - कीचड़, **चलणीइ** - चलनी-पांव में चिपकने वाला कीचड़।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में गड्ढे, बिल, दरारें, पर्वत शिखर आदि ऊंचे स्थान, अवपात-गिरने की संभावना वाले स्थान, विषम स्थान, कीचड़ धूल, रज, पंक-कादव, चलनी-पांव में चिपकने वाला कीचड़ आदि हैं क्या?

उत्तर - यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्मन् श्रमण! वहां ये गड्ढे आदि नहीं हैं। एकोरुक द्वीप का भूमि भाग बहुत समतल और रमणीय है।

एकोरुक द्वीप में कांटे आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे खाणूइ वा कंटएइ वा हीरएइ वा सक्कराइ वा तणकयवराइ वा पत्तकयवराइ वा असुईइ वा पूइयाइ वा दुब्भिगंधाइ वा अचोक्खाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयखाणु-कंटग-हीर-सक्कर-तणकयवर-पत्तकयवर-असुइ-पूइयदुब्भिगंध-मचोक्ख-परिवज्जिए णं एगूरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - खाणूइ - स्थाणु (ठूंठ), **हीरएइ** - हीरक-तीखी लकड़ी का टुकड़ा, **तणकयवराइ** - तृण का कचरा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में स्थाणु, कांटे, हीरक, कंकर, तृण का कचरा, पत्तों का कचरा, अशुचि, सड़ांध, दुर्गन्ध और अपवित्र पदार्थ हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! वहां स्थाणु आदि नहीं हैं। वह द्वीप स्थाणु-कंटक, हीरक, कंकर, तृण कचरा, पत्र कचरा, अशुचि, पूति दुर्गन्ध और अपवित्रता से रहित है।

एकोरुक द्वीप में डांस आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे दंसाइ वा मसगाइ वा पिसुयाइ वा जूयाइ वा लिक्खाइ वा ढंकुणाइं वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयदंसमसग-पिसुयजूय-लिक्ख-ढंकुणपरिवज्जिए णं एगूरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो!

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में डांस, मच्छर, पिस्सू, जूं, लीख, माकण आदि हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वह द्वीप डांस, मच्छर, पिस्सू, जूं, लीख, खटमल (माकण) से रहित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकोरुक द्वीप में सर्प आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे० अहीइ वा अयगराइ वा महोरगाइ वा?

हंता अत्थि, णो चेव णं ते अण्णमण्णस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा पबाहं वा छविच्छेयं वा करेंति, पगइभद्दगा णं ते वालगगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में सर्प, अजगर और महोरग हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! वहां सर्प आदि हैं किंतु वे परस्पर या वहां के लोगों को बाधा पीड़ा नहीं पहुंचाते हैं, नहीं काटते हैं। वे सर्पादि स्वभाव से ही भद्रिक होते हैं।

एकोरुक द्वीप में उपद्रव आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे० गहदंडाइ वा गहमुसलाइ वा गहगज्जियाइ वा गहजुद्धाइ वा गहसंघाडगाइ वा गहअवसव्वाइ वा अब्भाइ वा अब्भरुक्खाइ वा संझाइ वा गंधव्वणगराइ वा गज्जियाइं वा विज्जुयाइ वा उक्कापायाइ वा दिसादाहाइ वा णिग्घायाइ वा पंसुविट्ठीइ वा जुवगाइ वा जक्खालित्ताइ वा धूमियाइ वा महियाइ वा रउग्घायाइ वा चंदोवरागाइ वा सूरोवरागाइ वा चंदपरिवेसाइ वा सूरपरिवेसाइ वा पडिचंदाइ वा पडिसूराइ वा इंदधणूइ वा उदगमच्छाइ वा अमोहाइ वा कविहसियाइ वा पाईणवायाइ वा पडीणवायाइ वा जाव सुद्धवायाइ वा गामदाहाइ वा णगरदाहाइ वा जाव सण्णिवेसदाहाइ वा पाणक्खयजणक्खयकुलक्खयधणक्खयवसण-भूयमणारियाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे।

कठिन शब्दार्थ - गहदंडाइ - दण्डाकार ग्रह समुदाय, **गहगज्जियाइ** - ग्रहगर्जितमिति-ग्रहों के संचार की ध्वनि, **गहजुद्धाइ** - ग्रहयुद्ध-दो ग्रहों का एक स्थान पर होना, **गहसंघाडगाइ** - ग्रह संघाटक-त्रिकोणाकार ग्रह समुदाय, **गहअवसव्वाइ** - ग्रहापसव-ग्रहों का वक्री होना, **अब्भाइ** - अभ्र-मेघों का उत्पन्न होना, **गंधव्व णगराइ** - गन्धर्वनगरं-बादलों का नगर आदि रूप में परिणमन, **गज्जियाइं** - गर्जना **विज्जुयाइ** - विद्युत-बिजली चमकना, **उक्कापायाइ** - उल्कापात-बिजली गिरना, **दिसादाहाइ** - दिग्दाह-किसी एक दिशा का एकदम अग्नि ज्वाला जैसा भयानक दिखना, **णिग्घायाइ** - निर्घात-बिजली का कड़कना, **पंसुविट्ठीइ** - धूलि वर्षा, **जुवगाइ** - यूपक-संध्या प्रभा और चन्द्रप्रभा का मिश्रण होने पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संध्या का पता न चलना, **जक्खालित्ताइ** - यक्षादीप्त-आकाश में अग्नि सहित पिशाच का रूप दिखना, **धूमियाइ** - धूमिका (धूंधर), **महियाइ** - महिका-जल कण युक्त धूंधर, **रउग्घायाइ** - रज-उद्घात-दिशाओं में धूल-भर जाना, **चंदोवरागाइ** - चन्द्रोपराग-चन्द्रग्रहण, **चंदपरिवेसाइ** - चन्द्रपरिवेश-चन्द्र के आसपास मंडल का होना, **पडिचंदाइ** - प्रतिचन्द्र-दो चन्द्रों का दिखना, **उदगमच्छाइ** - उदकमत्स्य-इन्द्र धनुष का टुकड़ा, **अमोहाइ** - अमोघ-सूर्यास्त के बाद सूर्य बिम्ब से निकलने वाली श्याम आदि वर्ण वाली रेखा, **कविहसियाइ** - कपिहसित-आकाश में होने वाला भयंकर शब्द, **पाणक्खयजणक्खय-कुलक्खयधणक्खयवसणभूयमणारियाइ** - प्राणियों का क्षय, जन क्षय, कुल क्षय, धन क्षय, व्यसन-कष्ट आदि अनार्य उत्पात।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में अनिष्ट सूचक दण्डाकार ग्रह समुदाय, मूसलाकार ग्रह समुदाय, ग्रहों के संचार की ध्वनि, दो ग्रहों का एक स्थान पर होना, ग्रहसंघाटक, ग्रहों का वक्री होना, मेघों का उत्पन्न होना, मेघों का वृक्षाकार होना, लाल-नीले बादलों का परिणमन, बादलों का नगर आदि रूप में परिणमन, गर्जना, बिजली चमकना, उल्कापात, दिग्दाह, निर्घात, धूलिवर्षा, यूपक, यक्षादीप्त धूंधर, जलकण युक्त धूंधर, दिशाओं का धूल से भर जाना, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष-चन्द्र के आसपास मण्डल होना, सूर्य परिवेष, प्रतिचन्द्र-दो चन्द्रों का दिखना, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य, अमोघ, कपिहसित, पूर्ववात, पश्चिमवात यावत् शुद्धवात, ग्रामदाह, नगरदाह यावत् सन्निवेशदाह, इनसे होने वाले प्राणियों का क्षय, जनक्षय, कुलक्षय, धनक्षय आदि दुःख और अनार्य उत्पात आदि वहां होते हैं क्या?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है यानी उक्त उपद्रव वहां नहीं होते हैं।

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे डिंबाइ वा डमराइ वा कलहाइ वा बोलाइ वा खाराइ वा वेराइ वा (महावेराइ वा) विरुद्धरज्जाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयडिंबडमरकलहबोलखारवेरविरुद्धरज्जविवज्जिया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - **डिंबाइ** - डिंब-स्वदेश का विप्लव (उपद्रव), **डमराइ** - डमर-अन्य देश द्वारा किया गया उपद्रव, **कलहाइ** - कलह वाक्युद्ध, **बोलाइ** - आर्तनाद-दुःखी जीवों का कलकलाहट, **खाराइ** - मात्सर्य-ईर्ष्याभाव, **विरुद्धरज्जाइ** - विरोधी राज्य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में स्वदेश का उपद्रव, अन्य देश द्वारा किया गया उपद्रव, कलह, आर्तनाद, मात्सर्य, वैर, विरोधी राज्य आदि हैं क्या?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! ये सब वहां नहीं हैं। वे मनुष्य डिंम-डमर-कलह-बोल-क्षार-वैर और विरुद्ध राज्य के उपद्रवों से रहित हैं।

एकोरुक द्वीप में युद्ध रोग आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे महाजुद्धाइ वा महासंगामाइ वा महासत्थपडणाइ वा महापुरिसपडणाइ वा महारुहिरपडणाइ वा णागवाणाइ वा खेणवाणाइ वा तामसवाणाइ वा दुब्भूइयाइ वा कुलरोगाइ वा गामरोगाइ वा णगररोगाइ वा मंडलरोगाइ वा सिरोवेयणाइ वा अच्छिवेयणाइ वा कण्णवेयणाइ वा णक्कवेयणाइ वा दंतवेयणाइ वा णहवेयणाइ वा कासाइ वा सासाइ वा जराइ वा दाहाइ वा कच्छूइ वा खसराइ वा कुद्धाइ वा कुडाइ वा दगराइ वा अरिसाइ वा अजीरगाइ वा भगंदराइ वा इंदग्गहाइ वा खंदग्गहाइ वा कुमारग्गहाइ वा णागग्गहाइ वा जक्खग्गहाइ वा भूयग्गहाइ वा उव्वेयग्गहाइ वा धणुग्गहाइ वा एगाहियाइ वा बेयाहियाइ वा तेयाहियाइ वा चउत्थगाइ वा हिययसूलाइ वा मत्थगसूलाइ वा पाससूलाइ वा कुच्छिसूलाइ वा जोणिसूलाइ वा गाममारीइ वा जाव सण्णिवेसमारीइ वा पाणक्खय जाव वसणभूयमणारियाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयरोगायंका णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - **महासत्थपडणाइ** - महाशस्त्रों का निपात, **महापुरिसपडणाइ** - महापुरुषों-चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव के बाण, **तामसवाणाइ** - तामस बाण-अंधकार कर देने वाले बाण, **दुब्भूइयाइ**- दुर्भूतिक-विभूति नष्ट हो जाय ऐसा अशिव, **सिरोवेयणाइ** - शिरोवेदना, **कासाइ** - खांसी, **सासाइ** - श्वास (दमा), **जराइ** - ज्वर, **दाहाइ** - दाह, **कच्छूइ** - खाज, **खसराइ** - खसरा, **कुट्ठाइ** - कुष्ट-कोढ, **कुडाइ** - कुडा-डमरुवात, **दगोदराइ** - जलोदर, **अरिसाइ** - अर्श (बवासीर), **अजीरगाइ** - अजीर्ण, **भगंदराइ** - भगन्दर, **इंदग्गहाइ** - इन्द्रग्रह-इन्द्र के आवेश से होने वाला रोग, **उव्वेयग्गहाइ** - उद्वेगग्रह, **एगाहियगाहाइ** - एकाहिक ग्रह-एकान्तर ज्वर, **हिययसूलाइ** - हृदय शूल, **गाममारीइ** - ग्राममारी।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में महायुद्ध, महासंग्राम, महाशस्त्रों का निपात (गिरना) महापुरुषों के बाण, महारुधिर बाण नाग बाण, आकाश बाण, तामस बाण आदि हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! ये सब वहां नहीं हैं। क्योंकि वहां के मनुष्य वैरानुबंध से रहित होते हैं अतः वहां महायुद्ध आदि नहीं होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में दुर्भूतिक (अशिव), कुलक्रमागत रोग, ग्राम रोग, नगर रोग,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडल रोग, शिरोवेदना, आंख वेदना, कान वेदना, नाक वेदना, दांत वेदना, नख वेदना, खांसी, श्वास, ज्वर, दाह खुजली, दाद, कोढ, डमरुवात, जलोदर, अर्श (बवासीर) अजीर्ण, भगंदर इन्द्रग्रह-इन्द्र के आवेश से होने वाला रोग, स्कंदग्रह-कार्तिकेय के आवेश से होने वाला रोग, कुमारग्रह, नागग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह, उद्वेग ग्रह, धनुग्रह, (धनुर्वात) एक दिन छोड़कर आने वाला (एकान्तर) ज्वर, दो दिन छोड़कर आने वाला ज्वर, तीन दिन छोड़कर आने वाला ज्वर, चार दिन छोड़कर आने वाला ज्वर, हृदयशूल, मस्तक शूल, पसलियों का दर्द, कुक्षिशूल, योनिशूल, ग्राममारी यावत् सन्निवेशमारी और इनसे होने वाला प्राणों का क्षय यावत् दुःख रूप उपद्रव आदि हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! ये सब उपद्रव-रोगादि वहां नहीं हैं। वे मनुष्य सब तरह की व्याधियों से रहित होते हैं।

एकोरुक द्वीप में जल के उपद्रव

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे अइवासाइ वा मंदवासाइ वा सुवुट्ठीइ वा मंदवुट्ठीइ वा उदगवाहाइ वा उदगपवाहाइ वा दगुब्भेयाइ वा दगुप्पीलाइ वा गामवाहाइ वा जाव सण्णिवेसवाहाइ वा पाणक्खय० जाव वसणभूयमणारियाइ वा?

णो इणट्ठे समट्ठे, ववगयदगोवद्दणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

कठिन शब्दार्थ - **अइवासाइ** - अति वृष्टि, **सुवुट्ठीइ** - सुवृष्टि, **उदगवाहाइ** - उदकवाह-तेजी से जल का बहना, **उदगपवाहाइ** - उदक प्रवाह-जल का पूर आ जाये ऐसी वर्षा, **दगुब्भेयाइ** - उदक भेद-ऊंचाई से जल गिरने से खड्डे पड़ जाना, **दगुप्पीलाइ** - उदक पीड़ा-जल का ऊपर उछलना, **गाम वाहाइ**-ग्रामवाह-गांव को बहा ले जाने वाली वर्षा, **ववगयदगोवद्दवा** - जल के उपद्रवों से रहित।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, उदकवाह, उदकप्रवाह, उदक भेद, उदक पीड़ा, गांव को बहा ले जाने वाली वर्षा यावत् सन्निवेश को बहा ले जाने वाली वर्षा और उससे होने वाला प्राणियों का क्षय यावत् दुःख रूप उपद्रव आदि होते हैं क्या?

उत्तर - हे आयुष्मन् श्रमण! ऐसा नहीं होता है। वे मनुष्य जल से होने वाले उपद्रवों से रहित होते हैं।

एकोरुक में खानें आदि

अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे अयागराइ वा तम्बागराइ वा सीसागराइ वा सुवण्णागराइ वा रयणागराइ वा वइरागराइ वा वसुहाराइ वा हिरण्णवासाइ वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुवण्णवासाइ वा रयणवासाइ वा वइरवासाइ वा आभरणवासाइ वा पत्तवासाइ वा पुप्फवासाइ वा फलवासाइ वा बीयवासाइ वा मल्लवासाइ वा गंधवासाइ वा वण्णवासाइ वा चुण्णवासाइ वा खीरवुट्ठीइ वा रयणवुट्ठीइ वा हिरण्णवुट्ठीइ वा सुवण्णवुट्ठीइ वा तहेव जाव चुण्णवुट्ठीइ वा सुकालाइ वा दुकालाइ वा सुभिक्खाइ वा दुभिक्खाइ वा अप्पग्घाइ वा महग्घाइ वा कयाइ वा महाविक्कयाइ वा (अणिहाइ वा) सण्णिहीइ वा संणिचयाइ वा णिहीइ वा णिहाणाइ वा चिरपोराणाइ वा पहीणस मियाइ वा पहीणसेउयाइ वा पहीणगोत्तागाराइं वा जाइं इमाइं गामागरणगरखेडकब्बडमडंब-दोणमुहपट्टणा-समसंवाहसण्णिवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापहपहेसु णगर-णिद्धमण-गामणिद्धमण-सुसाण-गिरिकंदर-संतिसेलोवट्ठाण-भवणगिहेसु सण्णिक्खित्ताइं चिट्ठंति?

णो इणट्ठे समट्ठे।

कठिन शब्दार्थ - **अयागराइ** - लोहे की खान, **वसुहाराइ** - वसुधारा-धन की धारा, **सुकालाइ** - सुकाल, **सुभिक्खाइ** - सुर्भिक्ष **दुभिक्खाइ** - दुर्भिक्ष, **अप्पग्घाइ** - अल्पार्घ-अल्पमूल्य में वस्तु प्राप्ति, **महाविक्कयाइ** - महा विक्रय, **सण्णिहीइ** - सन्निधी-संग्रह, **संणिचयाइ** - संनिचय, **पहीणसामियाइ**- प्रहीण-नष्ट स्वामी, जिसके स्वामी नष्ट हो गये हों, **पहीणसेउयाइ** - प्रहीणसेवकम्-धन डालने वाला नष्ट हो गया हो, **पहीणगोत्तागाराइ** - प्रहीण गोत्रागार-जिनके गोत्रीजन नष्ट हो चुके हों, **सण्णिक्खित्ताइं**- सन्निक्षिप्त-रखा हुआ, गड़ा हुआ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में लोहे की खान, तांबे की खान, सीसे की खान, सोने की खान, रत्नों की खान, वज्र-हीरों की खान, वसुधारा, सोने की वर्षा, चांदी की वर्षा, रत्नों की वर्षा, वज्रों की वर्षा, आभरणों की वर्षा, पत्र की वर्षा, पुष्प की वर्षा, फल की वर्षा, बीज की वर्षा, माल्य-गंध-वर्ण-चूर्ण की वर्षा, दूध की वर्षा, रत्नों की वर्षा, हिरण्यसुवण्ण यावत् चूर्णों की वर्षा, सुकाल, दुष्काल, सुर्भिक्ष, दुर्भिक्ष, सस्तापन, महंगापन, क्रय, विक्रय, सन्निधि, संनिचय, निधि, निधान, बहुत पुराने निधान जिनके स्वामी नष्ट हो गये, जिनमें नया धन डालने वाला कोई न हो, जिनके गोत्रीजन सब मर चुके हों, ऐसे गांवों में, नगर में, आकर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, संबाह और सन्निवेशों में रखा हुआ, श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महामार्गों पर, नगरों की गटरों में, श्मशान में, पहाड़ की गुफाओं में, ऊंचे पर्वतों के स्थान और भवनगृहों में रखा हुआ-गड़ा हुआ धन है क्या?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! उक्त खान आदि और ऐसा धन वहां नहीं है।

एकोरुक द्वीप में मनुष्य स्थिति

एगूरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं असंखेज्जइभागेण ऊणगं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकोरुक द्वीप में मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! एकोरुक द्वीप के मनुष्यों की स्थिति जघन्य असंख्यातवां भाग कम पल्योपम का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है।

एकोरुक द्वीप के मनुष्यों का उपपात

ते णं भंते! मणुया कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छंति कहिं उववज्जंति?

गोयमा! ते णं मणुया छम्मासावसेसाउया मिहुणयाइं पसवंति अउणासीइं राइंदियाइं मिहुणाइं सारक्खंति संगोविंति य, सारक्खित्ता संगोवित्ता उस्ससित्ता णिस्ससित्ता कासित्ता छीइत्ता अक्किट्ठा अव्वहिया अपरियाविया (पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं परियाविय) सुहंसुहेणं कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, देवलोयपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - **छम्मासावसेसाउया** - छह माह की आयु शेष रहने पर, **मिहुणइं** - मिथुनक-युगलिक को, **पसवंति** - जन्म देते हैं, **सारक्खंति** - संरक्षण करते हैं, **संगोविंति** - संगोपन करते हैं, **अक्किट्ठा** - बिना कष्ट के, **अव्वहिया** - बिना किसी दुःख के, **अपरियाविया** - अपरितापित-बिना किसी परिताप के।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे मनुष्य कालमास में-मृत्यु के समय में काल करके कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे मनुष्य छह माह की आयु शेष रहने पर एक युगलिक को जन्म देते हैं। उन्नयासी (७९) रात्रि दिन तक उसका संरक्षण और संगोपन करते हैं। संरक्षण और संगोपन करके उच्छ्वास लेकर या निश्वास लेकर या खांस कर या छींक कर बिना किसी कष्ट के, बिना किसी दुःख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के, बिना किसी परिताप के (पल्योपम का असंख्यातवां भाग आयुष्य भोग कर) सुखपूर्वक काल के समय काल करके किसी भी देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकोरुक द्वीप के मनुष्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। अब दक्षिण दिशा के मनुष्यों का वर्णन बताते हुए सूत्रकार कहते हैं -

आभाषिक द्वीप के मनुष्य

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं आभासियमणुस्साणं आभासियदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयण० सेसं जहा एगूरुयाणं णिरवसेसं भाणियव्वं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दक्षिण दिशा के आभाषिक मनुष्यों का आभाषिक नाम का द्वीप कहां कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण पूर्व चरमांत से लवण समुद्र में तीन सौ योजन जाने पर वहां आभाषिक मनुष्यों का आभाषिक नामक द्वीप है। शेष सारा वर्णन एकोरुक द्वीप की तरह कह देना चाहिये।

नांगोलिक द्वीप के मनुष्य

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं णंगोलियमणुस्साणं पुच्छा,

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसयाइं सेसं जहा एगूरुयमणुस्साणं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दक्षिण दिशा के नांगोलिक मनुष्यों का नांगोलिक द्वीप कहां है?

उत्तर - हे गौतम! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में और चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के उत्तर पूर्व चरमांत से लवण समुद्र में तीन सौ योजन जाने पर वहां नांगोलिक मनुष्यों का नांगोलिक द्वीप है। शेष वर्णन एकोरुक द्वीप के अनुसार कह देना चाहिये।

वैषाणिक द्वीप के मनुष्य

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं वेसाणियमणुस्साणं पुच्छा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयण० सेसं जहा एगूरुयाणं॥ १११॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दक्षिण दिशा के वैषाणिक मनुष्यों का वैषाणिक द्वीप कहां है?

उत्तर - हे गौतम! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में और चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण पश्चिम के चरमांत से तीन सौ योजन जाने पर वैषाणिक मनुष्यों का वैषाणिक नामक द्वीप है। शेष सारा वर्णन एकोरुक द्वीप की तरह कह देना चाहिये।

हयकर्ण द्वीप के मनुष्य

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?

गोयमा! एगूरुयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, चत्तारि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं बारस जोयणसया पण्णट्ठी किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं, से णं एगाए पउमवरवेइयाए अवसेसं जहा एगूरुयाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दक्षिण दिशा के हयकर्ण मनुष्यों का हयकर्ण नामक द्वीप कहां है?

उत्तर - हे गौतम! एकोरुक द्वीप के उत्तर पूर्व के चरमांत से लवण समुद्र में चार सौ योजन आगे जाने पर वहां दक्षिण दिशा के हयकर्ण मनुष्यों का हयकर्ण नामक द्वीप है। वह चार सौ योजन का लम्बा चौड़ा है और बारह सौ पैंसठ योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है। वह एक पद्मवरवेदिका से घिरा हुआ है शेष सारा वर्णन एकोरुक द्वीप के समान कह देना चाहिये।

गजकर्ण द्वीप के मनुष्य

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं गयकण्णमणुस्साणं पुच्छा,

गोयमा! आभासियदीवस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं सेसं जहा हयकण्णाणं। एवं गोकण्णमणुस्साणं पुच्छा, वेसाणियदीवस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं सेसं जहा हयकण्णाणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दक्षिण दिशा के गजकर्ण मनुष्यों का गजकर्ण द्वीप कहां है?

उत्तर - हे गौतम! आभाषिक द्वीप के दक्षिण पूर्व के चरमांत से लवणसमुद्र में चार सौ योजन आगे जाने पर गजकर्ण द्वीप है। शेष सारा वर्णन हयकर्ण मनुष्यों की तरह समझना चाहिये।

गोकर्ण द्वीप के मनुष्यों की पृच्छा?

हे गौतम! वैषाणिक द्वीप के दक्षिण-पश्चिम के चरमांत से लवणसमुद्र में चार सौ योजन जाने पर गोकर्ण द्वीप है। शेष सारा वर्णन हयकर्ण मनुष्यों की तरह कह देना चाहिये।

शष्कुलि कर्णद्वीप आदि के मनुष्य

सक्कुलिकण्णाणं पुच्छा,

गोयमा! णंगोलियदीवस्स उत्तरपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं सेसं जहा हयकण्णाणं। आयंसमुहाणं पुच्छा, हयकण्णयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ पंच जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं आयंसमुहमणुस्साणं आयंसमुहदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, आसमुहाईणं छ सया, आसकण्णाईणं सत्त, उक्कामुहाईणं अट्ठ, घणदंताईणं जाव णव जोयणसयाइं, गाहा -

एगूरुयपरिक्खेवो णव चेव सयाइं अउणपण्णाइं।
बारसपण्णट्ठाइं हयकण्णाईणं परिक्खेवो॥ १॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शष्कुलिकर्ण मनुष्यों का शष्कुलिकर्ण द्वीप कहां है?

उत्तर - हे गौतम! नांगोलिक द्वीप के उत्तर पश्चिम के चरमांत से लवणसमुद्र में चार सौ योजन जाने पर शष्कुलिकर्ण नामक द्वीप है। शेष सारा वर्णन हयकर्ण मनुष्यों के समान समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! आदर्शमुख द्वीप कहां है आदि पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! हयकर्ण द्वीप के उत्तर पूर्व के चरमांत से पांच सौ योजन जाने पर आदर्शमुख मनुष्यों का आदर्शमुख नामक द्वीप है। वह पांच सौ योजन का लम्बा चौड़ा है। अश्वमुख आदि चार द्वीप छह सौ योजन आगे जाने पर अश्वकर्ण आदि चार द्वीप सात सौ योजन आगे जाने पर, उल्कामुख आदि चार द्वीप आठ सौ योजन आगे जानें पर और घनदंत आदि चार द्वीप नौ सो योजन आगे जाने पर आते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकोरुक द्वीप आदि की परिधि नौ सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक, हयकर्ण आदि की परिधि बारह सौ पैसठ योजन से कुछ अधिक जाननी चाहिये॥ १॥

शेष द्वीपों के मनुष्य

आयंसमुहाईणं पण्णरसेकासीए जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, एवं एएणं कमेणं उवउज्जिऊण णेयव्वा चत्तारि चत्तारि एगपमाणा, णाणत्तं ओगाहे, विक्खंभे परिक्खेवे पढमबीयतइयचउक्काणं उग्गहो विक्खंभो परिक्खेवो भणिओ, चउत्थचउक्के छजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं अट्ठारसत्ताणउए जोयणसए परिक्खेवेणं। पंचमचउक्के सत्त जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं बावीसं तेरसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं। छट्ठ चउक्के अट्ठजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पणवीसं गुणतीसजोयणसए परिक्खेवेणं। सत्तमचउक्के णवयोजणसयाइं आयामविक्खंभेणं दो जोयणसहस्साइं अट्ठ पणयाले जोयणसए परिक्खेवेणं। जस्स य जो विक्खंभो उग्गाहो तस्स तत्तिओ चेव। पढमबीयाण परिरओ ऊणो सेसाण अहिओ उ॥ १॥

सेसा जहा एगूरुयदीवस्स जाव सुद्धदंतदीवे देवलोगपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

भावार्थ - आदर्शमुख आदि की परिधि पन्द्रह सौ इक्यासी (१५८१) योजन से कुछ अधिक है। इस प्रकार इस क्रम से चार चार द्वीप एक समान प्रमाण वाले हैं। अवगाहन, विष्कंभ और परिधि में अन्तर समझना चाहिये। पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे का अवगाहन, विष्कंभ और परिधि का कथन कर दिया गया है। चौथे चतुष्क में छह सौ योजन का आयाम विष्कंभ (लम्बाई चौड़ाई) और १८९७ योजन से कुछ अधिक परिधि है। पांचवें चतुष्क में सात सौ योजन की लम्बाई चौड़ाई और २२१३ योजन से कुछ अधिक की परिधि है। छठे चतुष्क में आठ सौ योजन की लम्बाई चौड़ाई और २५२९ योजन से कुछ अधिक की परिधि है। सातवें चतुष्क में नौ सो योजन की लम्बाई चौड़ाई और २८४५ योजन से कुछ अधिक की परिधि है। जिसकी जो लम्बाई चौड़ाई (आयाम विष्कम्भ) है वही उसका अवगाहन है। प्रथम चतुष्क से द्वितीय चतुष्क की परिधि ३१६ योजन अधिक, इसी क्रम से ३१६-३१६ योजन की परिधि बढ़ाना चाहिये और विशेषाधिक पद सबके साथ कह देना चाहिये।

हे आयुष्मन् श्रमण! शेष सारा वर्णन एकोरुक की तरह शुद्धदंत द्वीप तक समझ लेना चाहिये यावत् वे मनुष्य देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरदिशा के मनुष्य

कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं एगूरुयमणुस्साणं एगूरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एवं जहा दाहिणिल्लाण तहा उत्तरिल्लाण भाणियव्वं, णवरं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स विदिसासु, एवं जाव सुद्धदंतदीवेत्ति जाव सेत्तं अंतरदीवगा॥ ११२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उत्तर दिशा के एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक नामक द्वीप कहां है?

उत्तर - हे गौतम! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के उत्तर पूर्व के चरमांत से लवणसमुद्र में तीन सौ योजन आगे जाने पर वहां उत्तरदिशा के एकोरुक द्वीप के मनुष्यों का एकोरुक नामक द्वीप है। इत्यादि सारा वर्णन दक्षिण दिशा के एकोरुक द्वीप की तरह समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां शिखरी वर्षधर पर्वत की विदिशाओं में ये द्वीप स्थित हैं ऐसा कहना चाहिये। इसी प्रकार शुद्धदंत द्वीप पर्यन्त कथन करना चाहिये। यह अंतरद्वीपक मनुष्यों का कथन हुआ।

विवेचन -

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र और हैमवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला चुल्लहिमवान पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम में लवणसमुद्र को स्पर्श करता है। उस पर्वत के पूर्व और पश्चिम के चरमान्त से चारों विदिशाओं (ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य) में लवण समुद्र में ३००-३०० योजन जाने पर प्रत्येक विदिशा में एकोरुक आदि एक एक द्वीप आता है। ये द्वीप गोल हैं। उनकी लम्बाई चौड़ाई तीन सौ-तीन सौ योजन की है। प्रत्येक की परिधि ९४९ योजन से कुछ कम है। इन द्वीपों से चार सौ चार सौ योजन लवण समुद्र में जाने पर क्रमशः पांचवां, छठा, सातवां और आठवां द्वीप आते हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई चार सौ चार सौ योजन की है। ये भी गोल है। इनकी प्रत्येक की परिधि १२६५ योजन से कुछ कम हैं। इसी प्रकार इनसे आगे क्रमशः ५००, ६००, ७००, ८०० और ९०० योजन जाने पर क्रमशः चार चार द्वीप आते जाते हैं इनकी लम्बाई चौड़ाई पांच सौ से लेकर नौ सौ योजन तक क्रमशः समझनी चाहिये। ये सभी गोल है। तिगुनी से कुछ अधिक इनकी परिधि है। इस प्रकार चुल्लहिमवान पर्वत की चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तरद्वीप हैं।

जिस प्रकार चुल्लहिमवान पर्वत की चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तरद्वीप कहे गये हैं उसी प्रकार शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में भी अट्ठाईस अन्तरद्वीप हैं। इस तरह कुल छप्पन अन्तरद्वीप कहे गये हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	ईशानकोण	आग्नेयकोण	नैऋत्यकोण	वायव्यकोण
१.	एकोरुक	आभासिक	वैषाणिक	नांगोलिक
२.	हयकर्ण	गजकर्ण	गोकर्ण	शष्कुलिकर्ण
३.	आदर्शमुख	मेण्ढमुख	अयोमुख	गोमुख
४.	अश्वमुख	हस्तिमुख	सिंहमुख	व्याघ्रमुख
५.	अश्वकर्ण	हरिकर्ण	अकर्ण	कर्णप्रावरण
६.	उल्कामुख	मेघमुख	विद्युन्मुख	विद्युद्दंत
७.	घनदन्त	लष्टदन्त	गूढदन्त	शुद्धदन्त

दोनों पर्वतों की चारों विदिशाओं में उपरोक्त नाम वाले छप्पन अंतरद्वीप हैं। प्रत्येक अन्तरद्वीप चारों ओर पद्मवर वेदिका से शोभित हैं और पद्मवरवेदिका भी वनखण्ड से घिरी हुई है। इन अंतरद्वीपों में अन्तरद्वीप के नाम वाले ही युगलिक मनुष्य रहते हैं। ये अत्यंत सुंदर होते हैं। इनके तथा इनकी स्त्रियों के वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान होता है। इनकी अवगाहना आठ सौ धनुष की और आयुष्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग परिमाण होती है। इनके शरीर में ६४ पसलियां होती है। छह माह आयुष्य शेष रहने पर ये युगल संतान को जन्म देते हैं। ७९ दिन संतान का पालन करते हैं। ये अल्प कषायी और सरल स्वभावी तथा संतोषी होते हैं। यहां का आयुष्य भोग कर ये देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

आगम (जीवाभिगम, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि) में चुल्लहिमवंत पर्वत के चारों विदिशा (१. ईशान कोण २. नैऋत्य कोण ३. आग्नेय कोण ४. वायव्य कोण) में सात सात अन्तरद्वीप बताये हैं। संग्रहणी, क्षेत्र समास, आदि ग्रंथों में परस्पर दूरी के साथ जगती से भी ४००-५०० आदि की दूरी बताई है। यदि परस्पर टकराने की बाधा नहीं आती तब तो आगम बाधित नहीं होने के कारण उस बात को भी स्वीकार कर लिया जाता। उस प्रकार स्थापना करने से अन्तिम द्वीप टकराने की स्थिति बन जाने के कारण जगती से ४००-५०० आदि योजन दूरी नहीं मान कर द्वीपों से ही विदिशा में ही मानना आगम संगत ध्यान में आता है।

उपर्युक्त आगम पाठ में आये हुए अन्तरद्वीपों के वर्णन को देखते हुए २८ अन्तरद्वीपों की स्थापनाएं निम्नलिखित प्रकार से होना उचित ध्यान में आता है -

'एकोरुक आदि सात अन्तरद्वीप-चुल्ल(क्षुद्र)हिमवन्त पर्वत की बड़ी जीवा (अधिकतम लम्बाई) से लवणसमुद्र में उत्तरपूर्व विदिशा (ईशानकोण) में परस्पर (एक दूसरे से) भी विदिशा में आये हुए हैं।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभाषिक आदि सात अन्तरद्वीप चुल्लहिमवंत पर्वत की छोटी जीवा (न्यूनतम लम्बाई) से दक्षिण पूर्व विदिशा (नैऋत्य कोण) में परस्पर भी विदिशा में आये हुए हैं।

वैषाणिक आदि सात अन्तरद्वीप चुल्लहिमवंत पर्वत की छोटी जीवा से दक्षिण पश्चिम विदिशा (आग्नेय कोण) में परस्पर भी विदिशा में आये हुए हैं।

नांगोलिक (लांगूलिक) आदि सात अन्तरद्वीप चुल्लहिमवंत पर्वत की बड़ी जीवा से उत्तर पश्चिम (वायव्य कोण) में परस्पर भी विदिशा में आये हुए हैं।

इस प्रकार चारों विदिशाओं में क्रमशः सात-सात की चार पंक्तियों के रूप में २८ अन्तरद्वीप आये हुए हैं।

इसी प्रकार शिखरीपर्वत की चार विदिशाओं में भी सात-सात की चार पंक्तियों के रूप में २८ अन्तरद्वीप आये हुए हैं।

इनकी स्थापनाएं इस प्रकार हो सकती है तद्यथा -

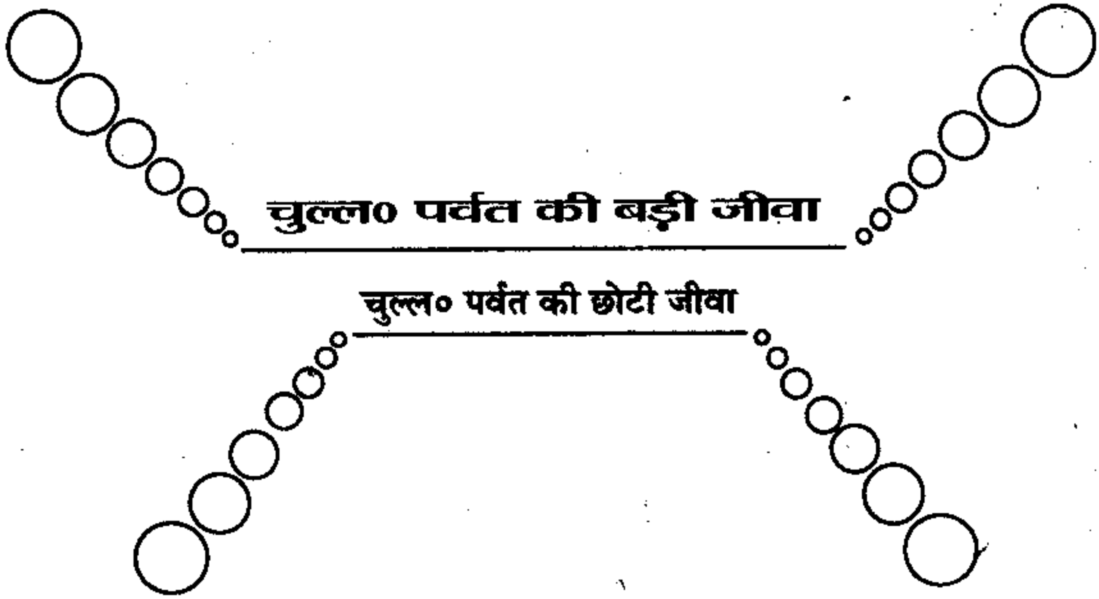

चारों ही पंक्तियों में सात-सात अन्तर्द्वीप ही समझना चाहिये। क्रमशः आगे आगे के बड़े गोले समझने चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अकर्म भूमिज और कर्म भूमिज मनुष्य

से किं तं अकम्मभूमगमणुस्सा? अकम्मभूमगमणुस्सा तीसविहा पण्णत्ता, तं जहा - पंचहिं हेमवएहिं, एवं जहा पण्णवणापए जाव पंचहिं उत्तरकुरूहिं, सेत्तं अकम्मभूमगा।

से किं तं कम्मभूमगा? कम्मभूमगा पण्णरसविहा पण्णत्ता, तं जहा - पंचहिं भरहेहिं पंचहिं एरवएहिं पंचहिं महाविदेहेहिं, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा - आरिया मिलेच्छा, एवं जहा पण्णवणापए जाव सेत्तं आरिया, सेत्तं गब्भवक्कंतिया, सेत्तं मणुस्सा॥ ११३॥

॥ मणुस्सुद्देसो समत्तो॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अकर्मभूमिज मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! अकर्मभूमिज मनुष्य तीस प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - पांच हैमवत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य। इस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिये। यह अकर्मभूमिज मनुष्यों का कथन हुआ।

प्रश्न - हे भगवन्! कर्मभूमिज मनुष्य कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! कर्मभूमिज मनुष्य पन्द्रह प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह के मनुष्य। संक्षेप से वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - आर्य और म्लेच्छ। इस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार कह देना चाहिये यावत् यह आर्यों का कथन हुआ। यह गर्भज मनुष्यों का कथन हुआ। इस प्रकार मनुष्यों का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में वर्णित मनुष्यों के भेदों के अनुसार यहां भी कर्मभूमिज एवं अकर्मभूमिज मनुष्यों का स्वरूप समझ लेना चाहिये।

जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग १

॥ सम्पूर्ण ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य
१.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४.	अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९.	आयारो	८-००
१०.	सूयगडो	६-००
११.	उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	१०-००
१२.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३.	णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य
१४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१६-१८.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १,२,३	४५-००
१९.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२०.	दशवैकालिक सूत्र	१५-००
२१.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ४	१०-००
२५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
२६.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२८.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	१०-००
२९-३१.	तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३२.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३३.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३४-३६.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	६०-००
३७.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३८.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
३९.	आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४०.	नवतत्वों का स्वरूप	१५-००
४१.	अगार-धर्म	१०-००
४२.	Saarth Saamaayik Sootra	अप्राप्य
४३.	तत्व-पृच्छा	१०-००
४४.	तेतली-पुत्र	५०-००
४५.	शिविर व्याख्यान	१२-००
४६.	जैन स्वाध्याय माला	२०-००
४७.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
४८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१८-००
४९.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५०.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००
५१.	जिनागम विरुद्ध मूर्ति पूजा	१५-००
५२.	बड़ी साधु वंदना	१५-००
५३.	तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५४.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५५.	आनुपूर्वी	१-००
५६.	सुखविपाक सूत्र	२-००
५७.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५८.	जैन स्तुति	८-००
५९.	सिद्ध स्तुति	८-००
६०.	संसार तरणिका	१०-००
६१.	आलोचना पंचक	२-००
६२.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६३.	भवनाशिनी भावना	२-००
६४.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६५.	सामायिक सूत्र	१-००
६६.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६७.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६८.	जैन सिद्धांत परिचय	अप्राप्य
६९.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७०.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७१.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७२.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७३.	तीर्थंकरों का लेखा	अप्राप्य
७४.	जीव-धड़ा	२-००
७५.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७६.	लघुदण्डक	३-००
७७.	महादण्डक	१-००
७८.	तेतीस बोल	२-००
७९.	गुणस्थान स्वरूप	३-००
८०.	गति-आगति	१-००
८१.	कर्म-प्रकृति	१-००
८२.	समिति-गुप्ति	२-००
८३.	समकित के ६७ बोल	२-००
८४.	पच्चीस बोल	३-००
८५.	नव-तत्त्व	८-००
८६.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
८७.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८८.	विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
८९.	धर्म का प्राण यतना	२-००
९०.	सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
९१.	मंगल प्रभातिका	१.२५
९२.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	५-००
९३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ५	२०-००
९४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ६	२०-००
९५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ७	२०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं.	नाम आगम	मूल्य
१.	आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२.	सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३.	स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४.	समवायांग सूत्र	४०-००
५.	भगवती सूत्र भाग १-७	४००-००
६.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७.	उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८.	अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९.	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११.	विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१.	उववाइय सुत्त	२५-००
२.	राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४.	प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७.	चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२.	निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका-पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १-२	८०-००
२.	दशवैकालिक सूत्र	३०-००
३.	नंदी सूत्र	२५-००
४.	अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३.	त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४.	निशीथ सूत्र	५०-००
१.	आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं

जो उवमिज्जइ सययं,तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org